हिन्दी अंक 18 : अगस्त, 2018
चौ-मासिक, बेंगलूरु

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी

लर्निंग कर्व

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन



शिक्षा में नवाचार : शासकीय पहल

सम्पादकीय कार्यालय
सम्पादक, अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
पी.ई.एस.कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग कैम्पस,
इलेक्ट्रॉनिक सिटी,बेंगलूरु बेंगलूरु, कर्नाटक - 560 100
Phone : 080-66145136 / 5272
Fax : 080-66145230
Email: publications@apu.edu.in
Website: www.azimpremjiuniversity.edu.in

हिन्दी अनुवाद
नलिनी रावल

कॉपी एडिटर (हिन्दी)
स्वाति भदौरिया, राजेश खर

हिन्दी अंक सम्पादन
राजेश उत्साही

आवरण चित्र सौजन्य
प्रवीण कुमार

डिज़ाइन
Banyan Tree
98458 64765

हिन्दी अंक लेआउट
आदर्श प्रा.लि. भोपाल
+91-755-2555442

कृपया ध्यान दें :
इस अंक में प्रकाशित लेख मूलत: अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व (अँग्रेज़ी) अंक 30, अगस्त, 2018 के लेखों के हिन्दी अनुवाद हैं। यह अनुवाद जनवरी, 2024 में ई-कॉपी के रूप में तैयार एवं ऑनलाइन प्रकाशित हुआ है। लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

'' अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की क़लम से



दुनिया भर की सरकारें, शैक्षिक पहलों को अपनाती हैं जो कि भली-भाँति सोचे-विचारे गए सिद्धान्तों से निर्देशित होती हैं। देश के लक्ष्यों को प्राप्त करने में लाभदायक, पूर्व-निर्धारित परिणामों को प्राप्त करने के उद्देश्य से लिए जाने वाले निर्णय भी इनसे प्रभावित होते हैं।

किसी भी पहल का निर्माण गहन विचार विमर्श के बाद किया जाता है; यह हमारे इरादों को व्यक्त करता है और इनके क्रियान्वयन का कार्य बहुत ही जटिल होता है। इतना ही नहीं, शिक्षा के क्षेत्र की नवाचारी पहलक़दमियों पर भावी पीढ़ी का निर्माण करने और उसे आकार देने की एक अतिरिक्त और बड़ी ज़िम्मेदारी भी होती है और यह नई पीढ़ी ही किसी देश का भविष्य है।

सुधारात्मक परिवर्तनों के लिए वातावरण बनाते समय, देश के सांस्कृतिक और सामाजिक मानदण्डों को ध्यान में रखकर नवाचारी क़दम उठाने होंगे। शैक्षिक और सामाजिक स्तरों में जो कमी है उसे दूर करने के लिए उठाए जा रहे क़दमों, उदाहरण के लिए सकारात्मक विभेद (Affirmative action), पुरानी पद्धतियाँ जैसे बच्चे को फ़ेल करना या शारीरिक दण्ड देना, परीक्षण और मूल्यांकन के ऐसे तरीक़े जो अधिगम और शिक्षार्थी का एकांगी व असंतुलित चित्रण प्रस्तुत करते हैं, उनको सम्बोधित करना होगा और उन्हें बदलना होगा। इनमें से कई क्षेत्रों में बदलाव हुए हैं ताकि बच्चा पुरातन व्यवस्था द्वारा निर्धारित मानकों पर ख़रा उतरने की कोशिश करने के बजाय अपनी क्षमता के अनुसार विकास कर सके और आगे बढ़ सके।

शिक्षा में अभिनव सरकारी पहलों को आकार देते समय एक और पहलू को ध्यान में रखना चाहिए – वह है स्थानीय और वैश्विक स्तर पर समाज और उसकी माँगों में परिवर्तन। और साथ ही सरकार को अपनी रणनीतियों पर पुनर्विचार करना चाहिए, जिससे एक नए और समकालीन परिदृश्य को लाभ पहुँचे, जिसमें बच्चे वर्तमान समय की चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हो सकें और उनसे निपट सकें।

हमारी अपनी सरकारी पहलक़दमियाँ भी इससे अलग नहीं हैं। कुछ मुख्य सरोकार जो सामने रहे हैं वे इस प्रकार हैं - शिक्षा को सार्वभौमिक रूप से उपलब्ध कराना और बाल-मैत्रीपूर्ण वातावरण का निर्माण करना जो बच्चों को भली प्रकार से फलने-फूलने दें ताकि वे एक समझदार व संतुलित वयस्क बनें और आत्मविश्वास की भावना से भरपूर हों। पिछले पचास वर्षों में कई चीज़ें बदली हैं जैसे शिक्षण और मूल्यांकन विधियाँ जो अब विद्यार्थियों को अपनी प्रगति का आकलन करने में मदद करती हैं, साथ ही शिक्षकों को सुगमकर्ताओं के रूप में देखने और सहयोगपूर्ण वातावरण के निर्माण को भी प्रोत्साहन मिला है।

तो क्या जिन लक्ष्यों की परिकल्पना की गई थी और जिनकी अपेक्षा थी वे हमें प्राप्त हो गई हैं? शायद कुछ मामलों में ऐसा नहीं हो पाया है। इस अंक में जो लेख हैं उनमें इस बात का प्रयास किया गया है कि अब तक के प्रयत्नों, सफलताओं और असफलताओं पर एक समग्र दृष्टि डाली जाए। पूरे देश में वर्तमान और पिछली

सरकारों ने जो पहल कीं उनका विश्लेषण इसमें है। कुछ लेख उन कार्यक्रमों की भी पड़ताल करते हैं जो विशेष आवश्यकता वाले बच्चों को प्रभावित करते हैं। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन और सर्व शिक्षा अभियान के साथ-साथ लोक जुम्बिश (राजस्थान) और गुरु चेतना (कर्नाटक) का मूल्यांकन भी किया गया है।

इस अंक में यह कुछ लेख हैं और हमें आशा है कि पाठक उनका आनन्द लेंगे। आपकी प्रतिक्रिया और राय का स्वागत है, उन्हें आप नीचे दिए गए ईमेल आईडी पर भेज सकते हैं।

प्रेमा रघुनाथ

मुख्य सम्पादक, लर्निंग कर्व
Prema.raghunath@azimpremjifoundation.org

अनुवाद : नलिनी रावल

इस अंक में

नीतियों और अभ्यासों के बीच का अनवरत अन्तराल

विमला रामचन्द्रन



यदि हम 1950 से सरकारी नीतियों और महत्त्वपूर्ण शिक्षा कमीशन की रिपोर्टों का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमारा ध्यान नीतियों की उन सिफ़ारिशों पर जाता है जिन्हें बार-बार इनमें दोहराया गया है। यहाँ ऐसी ही कुछ सिफ़ारिशों की सूची दी जा रही है जिन्हें नीति के हर वक्तव्य में दोहराया गया है :

- स्कूल परिसर के भीतर बच्चों की देखभाल की सुविधाएँ/क्रेश उपलब्ध कराए जाएँ (कोठारी आयोग 1968 एनपीई 1986);
- स्कूलों के लिए लचीले समय और क्षेत्र-विशिष्ट कैलेण्डर की पेशकश की जाए - ख़ासकर जनजातीय क्षेत्रों में। जनजातीय समुदायों से शिक्षकों का एक निकाय बनाया जाए तथा अधिकाधिक लोगों को शिक्षक बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाए...(कोठारी आयोग 1968 एनपीई 1986, जनजातीय क्षेत्रों पर भूरिया[1] और धेबर आयोग[2]); जनजातीय आयोगों ने ख़ासतौर पर यह माँग की कि सरकार "जनजातीय शिक्षा के शैक्षिक और भाषायी पहलुओं और जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षकों के विकास और प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान दे, मध्याह्न भोजन, कपड़े और किताबें मुहैया कराए और सबसे ज़रूरी बात यह कि स्कूल के कैलेण्डर को जनजातीय सामाजिक जीवन के अनुरूप बनाए..."(जनजातीय आयोग 1961);
- शिक्षक-शिक्षा को अधिक लचीला और स्थानीय दृष्टि से विशिष्ट बनाया जाए तथा सिद्धान्त और अभ्यास में सन्तुलन लाया जाए (विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1953, चट्टोपाध्याय समिति 1985 और राममूर्ति समिति 1990);
- शैक्षिक नियोजन और प्रशासन को विकेन्द्रीकृत किया जाए। इसे लोगों के क़रीब लाया जाए ताकि यह समाज की विशिष्ट आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को प्रतिबिम्बित करे ; विकेन्द्रीकृत और संयोजित कार्यनीतियों को मज़बूत किया जाए और सन्दर्भ विशिष्ट शैक्षिक ज़रूरतों को पूरा किया जाए – विशेष रूप से लड़कियों और अन्य फोकस समूहों की ज़रूरतों को (1968 का कोठारी आयोग, एनपीई 1986, डीपीईपी व एसएसए कार्यक्रमों और आरटीई विधेयक 2009 में भी इस पर बल दिया गया);
- समान स्कूल प्रणाली – "पड़ोस का स्कूल बच्चों को

भूरिया आयोग 2002-04 की सिफ़ारिशें

जनजातीय लोगों की समग्र प्रगति के लिए शिक्षा के क्षेत्र को एक प्रमुख क्षेत्र माना जाना चाहिए। हालाँकि 1961 में साक्षरता प्रतिशत 8.53% था जो 1991 में बढ़कर 29.60% हो गया है, लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि अनुसूचित जनजाति के लोग वास्तव में शिक्षित हो गए हैं। वे बाक़ी के समाज तक पहुँचने में सक्षम नहीं हो पाए हैं; सच पूछा जाए तो अनुसूचित जनजाति और ग़ैर-अनुसूचित जनजाति के बीच की साक्षरता प्रतिशतता का अन्तर बढ़ता जा रहा है।

जनजातीय नीति का लक्ष्य होगा :

I. शिक्षण को जनजातीय जीवन और परिवेश के उपयुक्त बनाना।

II. पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम को जनजातीय जीवन और संस्कृति के अनुकूल बनाना।

III. कम-से-कम प्राथमिक स्तर तक जनजातीय बच्चे की मातृभाषा में शिक्षा देना।

IV. सर्व शिक्षा अभियान जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रमों को जनजातीय आबादी पर केन्द्रित करना क्योंकि यह समाज के सबसे अशिक्षित वर्ग का गठन करता है।

---

[1] भूरिया समिति 1991 और भूरिया आयोग 04-2002

[2] 61-1960 का जनजातीय आयोग, श्री यू.एन.धेबर की अध्यक्षता में

V. मैट्रिक स्तर तक छात्रवृत्ति, छात्रावास के रखरखाव का ख़र्चा, मुफ़्त स्कूल वर्दी आदि प्रदान करना।

VI. सबसे पहले तो अनुसूचित क्षेत्रों और जनजातीय क्षेत्रों में निर्धारित मानदण्डों के अनुसार शैक्षिक संस्थानों की स्थापना करना। इसके अलावा, बिखरी हुई जनजातीय आबादी को देखते हुए मानदण्डों को कम करना।

VII. स्कूल और छात्रावासों की जीर्ण इमारतों की मरम्मत और पुनरुद्धार। सभी स्कूलों और छात्रावासों में शौचालय की सुविधा का प्रावधान, विशेष रूप से उनमें जो छात्राओं के लिए हैं।

VIII. प्रत्येक विकासखण्ड में लड़कों और लड़कियों के लिए कम-से-कम एक-एक आवासीय विद्यालय की स्थापना।

IX. प्रत्येक जनजातीय खण्ड में एक नवोदय विद्यालय की स्थापना।

X. आईटीडीपी/आईटीडीए में जनजातीय कार्य मंत्रालय द्वारा विकसित नमूने पर एक आदर्श आवासीय स्कूल की स्थापना।

XI. माध्यमिक स्तर तक आदिवासी क्षेत्रों में बच्चों के लिए पूरक पोषण और मध्याह्न भोजन का प्रावधान।

XII. व्यावसायिक शिक्षा और पेशेवर शिक्षा पर बल देना, कृषि, वानिकी, बागवानी, डेयरी, पशु विज्ञान जैसे विषयों में अध्ययन के लिए पॉलिटेक्निक स्थापित करना। इन अध्ययनों का स्व-रोज़गार की ओर उन्मुखीकरण।

XIII. शिक्षकों की अनुपस्थिति की समस्या (विशेष रूप से दूरदराज़ के इलाकों में) से निपटने के उपाय करना जैसे ग्राम शिक्षा समितियों का गठन, अनुबन्धित रोज़गार, अनुसूचित जनजातीय शिक्षकों की नियुक्ति।

अच्छी शिक्षा प्रदान करेगा क्योंकि आम लोगों के साथ जीवन साझा करना अच्छी शिक्षा का आवश्यक घटक है। दूसरे, ऐसे स्कूलों की स्थापना समृद्ध, विशेष सुविधा प्राप्त और शक्तिशाली वर्गों को सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में रुचि लेने के लिए मजबूर करेगी और इस तरह इसमें जल्दी सुधार होगा।" (अनु. 10.18 कोठारी आयोग रिपोर्ट 1968);

राजनीतिक तंत्र द्वारा नीति की सिफ़ारिशों को गम्भीरता से न लेने की अक्षमता को ध्यान में रखते हुए 1985 के एक दस्तावेज़ 'चैलेंज ऑफ़ एजुकेशन : ए पॉलिसी पर्स्पेक्टिव' में कहा गया है कि "1968 की नीति के क्रियान्वयन के लिए विशिष्ट ज़िम्मेदारियों का निर्धारण और वित्तीय व संगठनात्मक समर्थन के माध्यम से विस्तृत कार्यनीति नहीं बनाई गई। नतीजतन पहुँच, गुणवत्ता, मात्रा, उपयोगिता और वित्तीय परिव्यय की सीमाएँ जैसी समस्याएँ अब इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि उन्हें तत्काल निपटाया जाना चाहिए..." नीति और अभ्यास के बीच की इसी असम्बद्धता की वजह से ही शिक्षा का संकट एक विशाल रूप धारण कर चुका है जिसका सामना हम आज कर रहे हैं।

दूसरी और पिछले तीन दशकों (विशेष रूप से 1990) से सरकार द्वारा ऐसे कई कार्य किए गए जिन्हें नीति के स्तर पर कोई मंज़ूरी नहीं मिली थी। अनुबन्धित शिक्षकों और पैरा शिक्षकों का मामला ही लें। नीति के किसी भी दस्तावेज़ में आवश्यक शैक्षिक योग्यता के बिना शिक्षकों की नियुक्ति की सिफ़ारिश नहीं की गई और न ही किसी नीति में कम मानदेय पर शिक्षकों को काम पर रखने की सलाह दी गई। पैरा-शिक्षक या शिक्षा कर्मी/विद्या स्वेच्छाकर्मी/गुरु जी (कोई भी नाम दे लें) की धारणा शैक्षिक परिदृश्य का हिस्सा नहीं थी। 1987 में तत्कालीन शिक्षा सचिव अनिल बोर्डिया ने राजस्थान के लिए एक परियोजना तैयार की। इसे शिक्षाकर्मी परियोजना के रूप में जाना जाता है। इसमें स्थानीय युवाओं को शिक्षकों के रूप में नियुक्त करके ग्रामीण/दूरस्थ क्षेत्रों में शिक्षकों की कमी को कम करने की बात कही गई।

ऐसे क्षेत्रों में शैक्षिक स्थिति को देखते हुए, दसवीं कक्षा उत्तीर्ण युवकों को नियुक्त किया गया। यह परियोजना दूरदराज़ के इलाकों के स्कूलों में एक विशिष्ट स्थिति को सम्बोधित करने के लिए थी, जहाँ या तो शिक्षक नहीं थे या नियुक्त किए गए शिक्षक वहाँ जाते नहीं थे। जल्दी ही, कम वेतन (सामान्यतया नियमित शिक्षकों के वेतन का लगभग दसवाँ भाग) पर स्थानीय युवाओं की नियुक्ति (कम शैक्षिक योग्यता के बावजूद) के विचार में नौकरशाही, कई अन्तर्राष्ट्रीय फंडिंग एजेंसियों और ज़ाहिर है, भारत में शिक्षा समुदाय के मुखर हिस्से की दिलचस्पी बढ़ी। देखते-ही-देखते ओडिशा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और राजस्थान (ये केवल कुछ नाम हैं) ने इस मॉडल को व्यापक पैमाने पर अपनाया। 1990 की शुरुआत तक इस प्रकार के शिक्षकों को 'पैरा-शिक्षक' के रूप

में जाना जाने लगा। कई राज्य सरकारों को लगा कि शिक्षकों की कमी को दूर करने का यह एक अच्छा तरीक़ा है जिसमें बार-बार वेतन देने का उत्तरदायित्व भी नहीं रहेगा। 1990 के उत्तरार्ध में 5वें वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के क्रियान्वयन के चलते वेतन में जो भारी वृद्धि हुई, उसके कारण सरकार पर पड़ा आर्थिक बोझ बहुत बढ़ गया। दूरदराज़ के इलाक़ों में समस्याओं को विशेष रूप से सम्बोधित करने की रणनीति के रूप में हुई शुरुआत का व्यापक और शीघ्र प्रभाव पड़ा तथा सर्व शिक्षा अभियान और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान में यह एक स्वीकृत अभ्यास बन गया। 2003-04 में 7.1% 'पैरा' या 'अनुबन्धित शिक्षक' थे, यह प्रतिशतता 2011-12 में 12.2% हो गई और फिर 2014 में घटकर 7.3% हो गई। निरपेक्ष संख्या में, इन प्रतिशतताओं का अर्थ है 2012-13 में 6.8 मिलियन नियमित शिक्षकों की तुलना में 0.5 मिलियन पैरा/अनुबन्धित शिक्षकों का होना। झारखण्ड में 2012-13 में पैरा/ अनुबन्धित शिक्षकों की प्रतिशतता 49% पर सबसे अधिक थी, मिज़ोरम में (26%) और उत्तर प्रदेश में (19%)। (रामचन्द्रन व अन्य, 2018[3])

समानान्तर प्रशासनिक संरचनाओं का निर्माण करना भारत सरकार द्वारा अपनाई गई एक और महत्त्वपूर्ण रणनीति थी। 1987 में भारत सरकार और राजस्थान सरकार शिक्षाकर्मी परियोजना को लागू करने के लिए शिक्षाकर्मी बोर्ड को एक पंजीकृत संस्था के रूप में स्थापित करने पर सहमत हुई। भारत में अधिकांश अन्य ग़ैर-सरकारी संगठनों की तरह यह भी संस्था पंजीकरण अधिनियम 1860 के तहत पंजीकृत थी, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण अन्तर था। इस संस्था के औपचारिक प्रमुख राज्य के शिक्षा सचिव थे। यह आशा की गई थी कि यह संरचना सरकार की पहुँच, वैधता और अधिकार के साथ ग़ैर-सरकारी संगठन का लचीलापन और स्पष्टता प्रदान करेगी। इससे विकास प्रशासन में महत्त्वपूर्ण बदलाव आया- जिसमें मुख्यधारा के शैक्षिक प्रशासन को छोड़कर "बाहरी सहायता प्राप्त परियोजना" चलाने के लिए समानान्तर संरचना बनाई गई। जब शिक्षा के क्षेत्र में दाता-सहायता परियोजनाओं ने इस मॉडल को अपनाया तो जल्द ही यह 'नवपद्धति' मुख्यधारा बन गई। भारत सरकार की शिक्षा परियोजना महिला समाख्या के अलावा विश्व बैंक द्वारा सहायता प्राप्त ज़िला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डीपीईपी) ने 1994 में इस मॉडल को अपनाया और बाद में सर्व शिक्षा अभियान को भी इसी तरह के तंत्र के माध्यम से लागू किया गया। एक बार फिर, यह एक ऐसा तंत्र था जिसमें नीति स्तर की मंज़ूरी नहीं थी और इसे विशेष परियोजनाओं में अपनाया गया तथा धीरे-धीरे विस्तारित किया गया। यह उस संघीय सिद्धान्त के ख़िलाफ़ भी था जिसके तहत 1950 में संसाधन साझा करने पर सहमति हुई थी। यहाँ यह कहना समीचीन होगा कि 2014 में राज्य सरकारों ने भारत सरकार के वित्त मंत्रालय को इस बात के लिए मनाने की कोशिश की थी कि राज्य सरकार के खज़ाने की उपेक्षा करके पंजीकृत संस्थाओं को सीधे ही फंड देने की प्रथा बन्द की जाए। भारत सरकार और कई राज्य सरकारों के बीच में यह बात कई वर्षों तक विवाद का विषय रही और भारत सरकार की राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों में भी यह मुद्दा उठाया जाता रहा। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजनाओं पर बी. के. चतुर्वेदी (2014)[4] की रिपोर्ट में इसे पुनः दोहराया गया।

ऐसा क्यों है कि भारत में नीतियों और अभ्यासों के बीच हमेशा एक बड़ा अन्तर रहता है? क्या यह बात सामाजिक क्षेत्रों में ही है?

वैश्विक स्तर पर नीतियों को कार्रवाई के लिए एक सहमत रूपरेखा के रूप में देखा जाता है। यह सरकार की मंशा को बताता है। परिणामस्वरूप नीतियों को बनाने, प्रभाव डालने और बदलने में बहुत शक्ति लगती है। साथ ही यह भी मान लिया जाता है कि जब संसद द्वारा नीति को अमल में लाया जाता है तो पर्याप्त संसाधन (प्रशासनिक और वित्तीय) आवंटित किए जाएँगे। दिलचस्प बात यह है कि भारत में ऐसा नहीं है। नीतियाँ लागू की जाती हैं लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं है जो इन्हें पूर्ण रूप से लागू करने के लिए सरकार को मजबूर करे। भारत में शिक्षा, स्वास्थ्य, बाल विकास, लिंग समानता, आवास, खाद्य सुरक्षा आदि से सम्बन्धित अद्भुत नीतियाँ बनी हैं। लेकिन इनके लिए संसाधनों का आवंटन और क्रियान्वयन की समय सीमा निर्धारित नहीं की जाती। परिणामस्वरूप सम्बन्धित मंत्रालय नीतियों के कुछ हिस्से ही क्रियान्वयन के लिए चुनते हैं। 1990 के दशक से, विशेष रूप से 1986 की शिक्षा नीति और 1992 के कार्रवाई के कार्यक्रम के बाद मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने विशिष्ट सिफ़ारिशों के क्रियान्वयन के लिए परियोजनाएँ तैयार की हैं।

उदाहरण के लिए महिलाओं की समानता के लिए शिक्षा पर 1986 की नीति के अध्याय 4 के परिणामस्वरूप महिला समाख्या परियोजना बनी। लेकिन जेंडर सम्बन्धों में संचित 'अतीत की विकृतियों' को बेअसर करने के लिए शिक्षा का उपयोग एक साधन के रूप में करने की मुख्य सिफ़ारिश को शिक्षा की रणनीति में नहीं गूँथा गया। इसी प्रकार से शिक्षक

[3]Ramachandran, Vimala; Béteille, Tara; Linden, Toby; Dey, Sangeeta; Goyal, Sangeeta; Goel Chatterjee, Prerna. 2018. Getting the Right Teachers into the Right Schools: Managing India's Teacher Workforce. World Bank Studies;. Washington, DC: World Bank. © World Bank. https://openknowledge.worldbank.org/handle/10986/28618

[4]MHRD, GOI. 2014. Restructuring of Centrally Sponsored Schemes, Draft Executive Summary

प्रशिक्षण या ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के लिए विशिष्ट कार्यक्रमों ने शिक्षक-शिक्षा की विषयवस्तु और प्रक्रिया में जेंडर सम्बन्धी मुद्दों को स्थान दिए बिना ही डायट और बाद में बीआरसी और सीआरसी जैसे संस्थानों की स्थापना पर ध्यान केन्द्रित किया। सर्व शिक्षा अभियान के बाद के राष्ट्रीय कार्यक्रमों में नामांकन बढ़ाने के लिए नए स्कूल खोलने, भवनों के निर्माण और शिक्षक प्रशिक्षण व्यवस्था पर ध्यान केन्द्रित किया गया।

परियोजना के दृष्टिकोण के हानिकारक प्रभावों में से एक यह था कि शिक्षा प्रशासन का मुख्य ढाँचा कमज़ोर हो गया और भारत सरकार द्वारा शुरू की गई योजनाओं या परियोजनाओं को लागू करने के लिए समानान्तर संरचनाएँ बनाई जाने लगीं। सभी राज्यों में नई 'स्वायत्त संस्थाएँ' प्रतिस्पर्धी संरचनाओं के रूप में उभरीं जिनके पास अधिक संसाधन (वित्तीय और मानव) तो थे ही, लचीलापन भी था। भारत सरकार से प्राप्त निधि सीधे इन संस्थाओं को दे दी जाती और संसाधन विशिष्ट गतिविधियों के लिए नियत होते थे। आइए, हम शिक्षक प्रबन्धन का उदाहरण लें। मुख्य शिक्षा प्रशासन द्वारा नियमित शिक्षकों की नियुक्ति जारी रही और उन्हें राज्य के संवर्ग के रूप में प्रबन्धित किया गया। अनुबन्धित शिक्षकों का भुगतान परियोजना निधि से किया गया। इससे कई समस्याएँ पैदा हुईं- (i) परियोजना से वेतन प्राप्त शिक्षकों को अलग-अलग वेतन मिलता था और उनके लिए नियम भी अलग थे, (ii) नियमित शिक्षकों को शैक्षिक सहायता और प्रशिक्षण तो परियोजना के माध्यम से दिया गया, लेकिन वे अपने कार्य की प्रगति की सूचना शिक्षा प्रशासन के मुख्य ढाँचे को ही देते (परियोजना निदेशालय को नहीं)। नतीजतन शिक्षकों और परियोजना संचालकों दोनों के दिमाग़ में भ्रम पैदा होने लगे। शिक्षक नहीं समझ पा रहे थे कि उनका नियंत्रण प्राधिकारी कौन है और परियोजना संचालकों के पास शिक्षक प्रबन्धन (शिक्षकों का स्थानान्तरण और तैनाती, वेतन आदि) का कोई अधिकार नहीं था, (iii) प्रशिक्षण या आधिकारिक बैठकों और कार्यशालाओं के लिए यात्रा भत्ते आदि का भुगतान परियोजनाओं के माध्यम से-और (iv) एक ही जैसा काम करने पर भी शिक्षकों को अलग-अलग वेतन मिलने की बात को लेकर स्कूलों में उभरता आपसी विरोध।

कई राज्यों में अनुबन्धित शिक्षकों के वेतन का अनियमित भुगतान एक बड़े मुद्दे के रूप में उभरा। उदाहरण के लिए झारखण्ड और पंजाब में उन शिक्षकों का वेतन, जो किसी परियोजना (आमतौर पर एसएसए या आरएमएसए) के लिए काम पर रखे जाते हैं या जिन्हें स्थानीय रूप से ज़िला परिषदों द्वारा काम पर रखा जाता है, परियोजना की निधि पर निर्भर होता है (रामचन्द्रन व अन्य, 2018)।

परिणामस्वरूप, हमने देश भर में शैक्षिक प्रशासन को धीरे-धीरे कमज़ोर होते देखा। मुख्य प्रशासनिक तंत्र वित्तीय साधनों की कमी, उचित प्रशिक्षित कर्मचारियों की कमी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि आवश्यकता पड़ने पर परिवर्तन लाने की शक्ति न होने की वज़ह से लाचार है। स्कूल निरीक्षकों और फील्ड स्तर के अन्य कर्मचारियों का वर्ग कमज़ोर होता जा रहा है। यहाँ तक कि पारम्परिक स्कूल स्तर के आँकड़ा अभिग्रहण तंत्र ने भी डाइस (DISE) के लिए रास्ता छोड़ दिया। मुख्य शिक्षा नौकरशाही इस प्रयास में है कि वह क्या कर सकती है। दूसरी तरफ शिक्षा परियोजनाओं के लिए बनाई गई स्वायत्त संस्थाओं को न केवल अधिक संसाधन मिलते हैं (कम-से-कम 2014-15 तक तो) बल्कि उन्हें अधिक स्वायत्तता भी मिलती है। अब इस तंत्र की समीक्षा की जा रही है, लेकिन हानि तो हो चुकी है। इसे वापस पटरी पर लाने के लिए बहुत सारा समय और राजनीतिक/प्रशासनिक इच्छा की आवश्यकता होगी।

पिछले 15 वर्षों में मैंने 10 से भी अधिक गुणात्मक शोध अध्ययन किए और उनसे जो अन्तर्दृष्टि मिली, वह बताती है कि प्रशासक और राजनीतिक नेता नीतियों को गम्भीरता से नहीं लेते। इसे बस उद्देश्यों का व्यापक विवरण और अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए एक राजनीतिक वक्तव्य के रूप में देखा जाता है- जिसे लागू करने की कोई 'बाध्यता' नहीं होती। पिछले कई दशकों से भारत सरकार की नीतियों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए सार्वभौमिक लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं लेकिन इनके मानदण्ड लगातार बदले जाते रहे हैं। हमने काग़ज़ पर तो सार्वभौमिक प्राथमिक विद्यालय नामांकन हासिल कर लिया है, लेकिन कक्षा 8 (प्रारम्भिक) तक सार्वभौमिक भागीदारी प्राप्त करने के लिए बहुत लम्बा रास्ता तय करना है। सभी बच्चों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का सपना सच नहीं हो पाया है। सच्चाई तो यह है कि जब तक सरकार नीतियों को विधायी जनादेश के रूप में नहीं देखती- एक ऐसा विधायी जनादेश जिसे उन्हें पूरी तरह से और निर्धारित समय में लागू करना है- तब तक तो चुनिन्दा क्रियान्वयन ही होगा।

पिछले दो-तीन दशकों से एक और महत्त्वपूर्ण अन्तर्दृष्टि मिली है- हमारे प्रशासक और राजनीतिक नेता शिक्षा नीतियों में साम्यता और निष्पक्षता के लिए प्रतिबद्ध नहीं हैं। अतः निजी स्कूलों की लगातार वृद्धि हुई है और जो कोई भी आर्थिक रूप से इन स्कूलों का ख़र्चा उठा सके, वह अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से निकालकर इन निजी स्कूलों में डाल देता है। इसी तरह सरकार भी सरकारी स्कूली शिक्षा प्रणाली के भीतर कई परतें बनाने में माहिर रही है- प्रणाली में महत्त्वपूर्ण लोगों को विशेषाधिकार देना। आज केन्द्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय और अन्य आवासीय विद्यालयों को अधिक वित्तीय

और मानव संसाधन मुहैया कराए जाते हैं। दिल्ली जैसे कुछ राज्य तो एक क़दम आगे बढ़ गए हैं – सरकारी स्कूलों को तीव्र बुद्धि वाले विद्यार्थियों (प्रतिभा विद्यालय) का ध्यान रखने वाले विद्यालयों के रूप में वर्गीकृत किया गया है और इन स्कूलों को सामान्य सरकारी स्कूलों की तुलना में कहीं अधिक संसाधन मिलते हैं। स्कूल के भीतर भी "होनहार" बच्चों के लिए अलग विभाग बनाए जाते हैं। परिणामस्वरूप सामान्य सरकारी स्कूलों को बहुत नीचे धकेल दिया गया है जिन्हें बहुत कम संसाधन और बेहद कम प्रबन्धन समय मिलता है।

भारत में हमारी यह हालत क्यों हो गई है? ऐसा क्यों है कि समानता, सामाजिक न्याय और ग़ैर-भेदभाव के लिए प्रतिबद्ध नीतियाँ अनदेखी रह जाती हैं?

रश्मि शर्मा (शर्मा और रामचन्द्रन 2009)[5] का तर्क है : 'सच्चाई तो यह है कि कोई भी नीति या योजना जो मौजूदा वास्तविकता के लिए अनजान हो, वह केवल एक इच्छा सूची बनकर रह जाती है...भारतीय सन्दर्भ में "नीति" को पुनः परिभाषित करना बेहद ज़रूरी है। सबसे पहले तो नीति को वे प्रमुख मुद्दे हल करने चाहिए जो आज सरकार के सामने हैं...।' हमने देखा है कि जब नीति के क्रियान्वयन के लिए ज़िम्मेदार संस्थाएँ खुद नियंत्रण में नहीं होतीं तो नीति सम्बन्धी घोषणाओं को उतना फ़ायदा नहीं मिल पाता। उन पर अधिकार क्षेत्र या लाभ के उद्देश्य हावी हो जाते हैं, या ये ऐसे नौकरशाहों द्वारा संचालित होते हैं जिन्हें शैक्षिक प्रक्रियाओं की कम समझ होती है। विभिन्न संस्थानों के बीच, विभिन्न परतों के बीच और नीतियों व अभ्यास के बीच, क्षैतिज और लम्बवत दोनों रूपों से जुड़ाव का अभाव साफ नज़र आता है और इसका कारण है शैक्षिक विकास के लिए एकीकृत दृष्टि का न होना।

अन्ततः इस मुद्दे का कारण है साम्यता और ग़ैर-भेदभाव के लिए संवैधानिक रूप से स्थापित लक्ष्यों के लिए प्रतिबद्धता की कमी होना। लगता है कि इसके अलावा कोई और स्पष्टीकरण नहीं है।

---

[5]*Sharma, Rashmi and Vimala Ramachandran. 2009. The Elementary Education System in India: Exploring Institutional Structures, Processes and Dynamics. Routledge. New Delhi*

विमला रामचन्द्रन एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट, दिल्ली की, महिला समाख्या (महिला समानता के लिए शिक्षा) की संकल्पना में शामिल थीं। उन्होंने 1988-93 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत में प्रथम राष्ट्रीय परियोजना निदेशक के रूप में कार्य किया। उन्होंने 1998 में शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे शोधकर्ताओं और अभ्यासकर्ताओं के समूह के रूप में एजुकेशनल रिसोर्स यूनिट की स्थापना की जिसे अब ईआरयू कंसल्टेंट्स प्राइवेट लिमिटेड के रूप में जाना जाता है। वे एक राष्ट्रीय फेलो और NUEPA में शिक्षक प्रबन्धन और विकास की प्रोफ़ेसर थीं। वे प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में शोध में रत हैं जिसमें उनका फ़ोकस जेंडर और समानता के मुद्दों, शिक्षक की स्थिति और प्रेरणा, राष्ट्रीय नीतियों व साम्यता के लक्ष्यों और प्रारम्भिक शिक्षा के कार्यक्रमों को समझने के लिए तंत्र सम्बन्धी बाधाओं, वयस्क साक्षरता तथा निरन्तर शिक्षा आदि पर है। सम्प्रति वे स्कूल न जाने वाले युवाओं (विशेष रूप से लड़कियों की) शैक्षिक आवश्यकताओं पर शोध करने में जुटी हुई हैं। उनसे *vimalar.ramachandran@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

भारत में शिक्षा नीति का विकास और सरकारी पहलों पर इसका प्रभाव

हृदय कान्त दीवान



परिचय

औपचारिक शिक्षा ने मौजूदा समाजों की चेतना में एक महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल किया है। अब यह बात स्पष्ट रूप से मान ली गई है कि समुदाय में उपलब्ध शिक्षा से परे भी शिक्षा की आवश्यकता है और इस उद्देश्य के मद्देनज़र व्यवस्थाएँ भी की गई हैं। सभी को शिक्षित करने का अभियान और प्रतिबद्धता स्वतंत्रता आन्दोलन की राजनीतिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ सामाजिक सुधारकों और कार्यकर्ताओं के प्रमुख एजेंडा का हिस्सा भी रही है। इसे उपलब्ध कराने की प्रकृति और तरीक़े ने कई प्रारूप और फ़ोकस क्षेत्रों को देखा है। आज़ादी से पहले नीति और प्राथमिकताओं का निर्णय लेने और उन पर काम करने की संरचनाएँ अपने आप में दिलचस्प हैं, लेकिन यहाँ हम दो प्रमुख नीति वक्तव्यों, 1968 की नीति और 1986 की नीति, उनकी भावना और उनके द्वारा उत्पन्न क्रियाकलापों के कार्यक्रमों को देखेंगे। इसके बाद हम एक नए नीति वक्तव्य को तैयार करने के हाल में किए गए प्रयासों को संक्षेप में देखेंगे। नीति के इस शोध और विश्लेषण में प्रचुर सम्भावनाएँ हैं, लेकिन इस लेख का मूल उद्देश्य 90 के दशक से किए गए सार्वजनिक (पढ़ें सरकार) प्रयासों, योजनाओं और कार्रवाई की पृष्ठभूमि प्रदान करना है। 1992 में की गई कार्रवाई के प्रथम व्यापक कार्यक्रम के बाद गहन सरकारी हस्तक्षेप और इससे पहले अर्ध-सरकारी हस्तक्षेपों ने लोगों का ध्यान खींचा और शिक्षा की संरचना और परिवर्तन के लिए रूपरेखा बनाई।

हम 1966 की कोठारी कमीशन रिपोर्ट से शुरुआत करते हैं जिसमें से 1968 में राष्ट्रीय नीति का वक्तव्य उभरा। इस रिपोर्ट को भारत में शिक्षा का पहला व्यापक विवरण माना जाता है और यह एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसका हवाला सभी नीतियों और कार्यक्रमों ने दिया है। हम इस दस्तावेज़ पर आधारित कार्रवाई की रूपरेखाओं के माध्यम से इसमें बताए गए कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं का पता लगाएँगे। शुरुआत हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 से करेंगे, (जिसे 1992 में संशोधित किया गया था) और एक नई शिक्षा नीति के गठन की वर्तमान प्रक्रिया तक जाएँगे। नई शिक्षा नीति का गठन लगभग तीन साल से हो रहा है, बीच-बीच में सार्वजनिक प्रक्षेत्र में इनपुट की माँग की जाती है और दस्तावेज़ व फ़ोकस के चयन जारी किए जाते हैं, लेकिन नीति अभी भी निर्माणाधीन है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्व, 1992 में संशोधित

एक शिक्षित नागरिक वर्ग बनाने के प्रयास के लिए एक बहु-आयामी जटिल दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, इस बात को ध्यान में रखते हुए हम कुछ ऐसे पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे जिन्हें एक न्यायसंगत, साम्यतापूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की संवैधानिक प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता था। 1968/1992 का पहला व्यापक नीति वक्तव्य कोठारी आयोग की रिपोर्ट पर आधारित था और उस समय की भावना को प्रतिबिम्बित करता था। यह बच्चों और वयस्कों को शिक्षित करने और लोकतांत्रिक देश के नागरिकों के रूप में विकसित करने में उनकी मदद करने पर केन्द्रित था। हम ऐसे चार पहलुओं को लेंगे जो हमारे विचार में इस प्रतिबद्धता को पूरा करने के इरादे का आधारभूत ढाँचा प्रदान करते हैं और देखेंगे कि सरकार द्वारा की गई बाद की पहलों में उनका प्रबन्धन कैसे किया गया है और उन्हें किस तरीक़े से दर्शाया गया है। जिन क्षेत्रों पर हम विचार करेंगे वे इस प्रकार हैं :

1. शिक्षा का उद्देश्य और मानव और नागरिक की धारणा
2. शिक्षक - उनकी भूमिका, स्वायत्तता, सम्मान और पहचान
3. मानव विकास और उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार के साधन के रूप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी बनाम औद्योगिक और बाज़ार के उपयोग के लिए अपने आप में एक लक्ष्य
4. सार्वजनिक ज़िम्मेदारी के साथ समान स्कूल और साम्यता और, इन विचारों के अन्तर्गत, घर की असमानताओं की भरपाई करने वाली स्कूल की नीति की आवश्यकता।

यह समीक्षा नीति के आलेख में वर्णित कुछ बुनियादी तत्वों की परिभाषाओं पर भी चर्चा करेगी जैसे स्कूल, शिक्षक और ज़िम्मेदारियों की धारणा। इस चर्चा में अभिशासन की प्रकृति, प्रबन्धन और शिक्षा की व्यवस्था के साथ जवाबदेही के सिद्धान्त भी सन्निहित हैं। इसके अलावा इन मुद्दों पर भी बात की गई है कि व्यापक और विशिष्ट पाठ्यचर्या के बारे में किसे निर्णय लेना चाहिए और शिक्षकों का मार्गदर्शन कौन करे। कार्य योजनाओं का निर्धारण और कार्यान्वयन कैसे

किया जाता है? यह चर्चा सरकार द्वारा शुरू किए गए मिशन, योजनाओं और अन्य घोषणाओं का विवरण देगी।

शिक्षा का उद्देश्य

1992 में संशोधित 1968 की नीति में शिक्षा को परिवर्तन का एक ऐसा साधन माना गया जो हर किसी तक पहुँच सकता है और बिना किसी हिंसा के दूसरों के लिए सरोकार रखते हुए समाजवादी भावना का सूत्रपात करने में मदद कर सकता है। इसमें लक्ष्यों का उल्लेख करते हुए विशेष रूप से कहा गया है कि एक लोकतांत्रिक समाज में, सामाजिक परिप्रेक्ष्य के माध्यम से, आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए शिक्षा एक ज़रूरी लक्ष्य है। व्यक्ति को एक नागरिक के रूप में देखा जाता है, जो देश का एक संविधानी तत्व है।

हम उद्धरण देते हैं :

'लोकतंत्र में व्यक्ति अपने आप में लक्ष्य होता है और शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य उसे अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूप से विकसित करने का अति व्यापक अवसर प्रदान करना है। लेकिन इस लक्ष्य का मार्ग सामाजिक पुनर्गठन और सामाजिक दृष्टिकोण से होकर गुज़रता है।'

इस बात को आगे बढ़ाने के लिए तर्क दिया गया कि व्यक्तिगत संतृप्ति तक सामूहिक भावना के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता है न कि व्यक्तिगत या सामूहिक हितों की संकीर्ण तलाश के माध्यम से। इसमें आगाह किया गया है कि यह एक दीर्घकालिक प्रयास है जिसमें कड़ी मेहनत और धैर्य की आवश्यकता है। इरादा स्पष्ट रूप से यही है कि प्रत्येक नागरिक की प्राथमिकता को तो मान्यता देनी ही है और साथ ही सामूहिक भावना के लाभों की आवश्यकता को भी स्वीकार करना है।

1992 में संशोधित 1986 की नीति में 1966 की रिपोर्ट के अधिकांश मूलभूत वक्तव्यों को दोहराया गया लेकिन अभिव्यक्तियों और प्रमुखता की बारीक़ियों ने महत्त्वपूर्ण बदलावों के साथ न्याय नहीं किया। हालाँकि इसमें सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के महत्त्व को पहचाना गया पर यह सीमित था और इसके उद्देश्य कुछ हद तक संकीर्ण थे। नागरिकगण अमूर्त राष्ट्र के विकास के लिए संसाधन बन गए थे, इसलिए अपने आप में कम महत्त्वपूर्ण होते जा रहे थे। ऐसा ध्वनित हो रहा था कि एक समृद्ध स्वायत्त व्यक्ति का विकास करने के माध्यम से पेशों की तैयारी की बात हो रही है, एक बँधी-बँधाई दिनचर्या का पालन करने के लिए ऐसे व्यक्तियों को तैयार करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था जो एक कुशल उत्पादन मशीनरी का हिस्सा बनें। यह विचार संकल्पनात्मक विकास और जीवन के समृद्ध तरीक़े से दूर था और छोटी नौकरियों व विषयों में कुशलता पा लेने को पर्याप्त माना जा रहा था। दूसरे शब्दों में एक बड़े पहिए का दांता बनकर सन्तुष्ट होने की बात की जा रही थी। प्रतिभा आधारित शिक्षा और प्रतिभा के अनुपात में व्यय की धारणा स्वीकार्य हो गई...इस प्रकार किया गया बदलाव एक समान न्यायोचित पहुँच के उद्देश्य और लोकतांत्रिक लोगों के लिए शिक्षा पर ध्यान केन्द्रण से दूर था। शैक्षिक उपक्रम में सभी को शामिल करने के प्रयास को तेज़ कर दिया गया था, साथ ही इसे स्तरीकृत करने का आग्रह और अधिक स्पष्ट हो गया। फ़ोकस स्पष्ट रूप से एक 'कुशल व सक्षम' कार्यबल और एक उपभोक्ता विकसित करने पर था ताकि बाज़ार के विज्ञापन उन तक पहुँचकर उन्हें आकर्षित कर सकें और वे विकास के लिए संसाधन और बाज़ार के लिए उपभोक्ता बन जाएँ।

इसके साथ अन्तर्निहित दृष्टिकोण के कारण बाद के प्रयास भी शिक्षित करने के बजाय कुशलता के विकास की ओर अधिक-से-अधिक प्रवृत्त होने लगे। हालाँकि पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं ने शैक्षिक प्रक्रिया और समानता पर ज़ोर देना जारी रखा लेकिन बजट और योजनाओं में यह बात देखने को नहीं मिली। 1988 में व्यावसायिक शिक्षा माध्यमिक पाठ्यक्रम का एक मान्यता प्राप्त हिस्सा बन गई और स्कूलों में विभेदित शिक्षा को उचित लक्ष्य माना गया। अर्थव्यवस्था के लिए बच्चों की तैयारी के बारे में बातचीत हाशिए से केन्द्र में जाने लगी। ये प्रयास उद्देश्यपूर्ण नहीं बने क्योंकि व्यावसायिक शिक्षा केवल एक ऐसी बदली हुई अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के साथ काम कर सकती है जो क्षमता और कौशल को पहचानने में विश्वास करती हो। इसे ऐसे समाज की आवश्यकता थी जो मज़दूरों को उचित मज़दूरी दे और सभी को इस बात के उचित अवसर दे कि वे जो बनना चाहें वही बन सकें। व्यावसायिक शिक्षा को सार्थक और प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक संरचनाओं, प्रक्रियाओं और प्रयासों को कभी चालू नहीं किया गया क्योंकि ग़रीबों और वंचितों की शिक्षा पर खर्च करने की इच्छा का अभाव था। इसलिए हमने कौशल्य और व्यवसायों के बारे में बात तो की लेकिन इसका अर्थ स्तरीकृत धाराओं को वैध बनाना लिया गया।

नई शिक्षा नीति विकसित करने के ताज़ा प्रयास केवल इस प्रवृत्ति पर ज़ोर देते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में नीति सम्बन्धी विवरण शिक्षा को मापने योग्य परिणामों तक ही सीमित रखते हैं और व्यावसायिक शिक्षा को मज़बूत करने को एक महत्त्वपूर्ण घटक मानते हैं। जब तक शैक्षिक प्रक्रिया अधिक महत्वाकांक्षी नहीं होगी, अधिगम सम्भव नहीं होगा। एनपीई 2016 के निर्माण में सुझाव देने के लिए दिए गए कुछ प्रश्नों में अधिगम को मापने और शिक्षकों को बदलने के तरीक़ों को तलाशने पर ध्यान दिया गया। इन प्रश्नों में स्पष्ट रूप से, लेकिन कुछ हद तक अप्रत्यक्ष रूप से, शिक्षक की धारणा परीक्षण के घेरे में आ जाती है।

शिक्षक की धारणा

1968 के दस्तावेज़ ने शिक्षक के बारे में बात करते समय कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को व्यक्त किया। इसमें कहा गया कि शिक्षकगण शैक्षिक उपक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं और उन्हें समाज में सम्मानित स्थान की आवश्यकता है। उन्हें सीखने, विकसित होने और विस्तार करने की अकादमिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। उनमें शैक्षिक योग्यता और कार्यक्षमता होनी चाहिए। यह और मुआवज़े और समानता पर लम्बा अनुभाग बताता है कि समझ यह थी कि शिक्षक एक स्वायत्त शिक्षक और शिक्षाशास्त्री के रूप में विकसित होगा और अपनी प्रक्रियाओं और रणनीतियों को खुद विकसित करेगा। यह तंत्र उसे यह सब कुछ करने के लिए प्रोत्साहित करेगा और सशक्त करेगा। लेकिन बाद में जो निरूपण हुआ वह क्षमता निर्माण पर किए गए विचार और वास्तव में शिक्षक पर चर्चा की भावना से उभरने वाले शिक्षक की धारणा के बिलकुल विपरीत है।

1986 की नीति में शिक्षक को महत्त्वपूर्ण बताया गया और शिक्षकों वाले अनुभाग में यह उद्धरण दिया गया था '...ऐसा कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं बढ़ सकता है।' लेकिन उसी अनुच्छेद में यह कड़वी सच्चाई भी है : 'शिक्षक की स्थिति समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक आचार को दर्शाती है।'

और इसी सामाजिक-सांस्कृतिक आचार में तेज़ी से गिरावट देखी गई है। इसलिए, विपरीत बयानों के बावजूद शिक्षक की धारणा गम्भीर दबाव से ग्रसित रही है, विशेष रूप से नव-उदारीकरण और 1986 की शिक्षा नीति के बाद से पिछले तीन दशकों में।

नीति में गर्व के साथ कहा गया कि 'सरकार और समुदाय को ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करने का प्रयास करना चाहिए जो शिक्षकों को रचनात्मक और सृजनात्मक बिन्दुओं पर प्रोत्साहित और अभिप्रेरित करने में मदद करें।' इसमें योग्यता पर आधारित व वस्तुनिष्ठ चयन के साथ एक ऐसी प्रणाली की बात की गई जो उचित वेतन और पारिश्रमिक निर्धारित करे और जिसमें खुली भागीदारी मूल्यांकन प्रणाली हो। इसमें वेतन और सेवा की स्थिति का वादा किया गया और कहा गया कि, 'वेतन उनकी सामाजिक व व्यावसायिक ज़िम्मेदारियों और पेशे में प्रतिभाओं को आकर्षित करने की आवश्यकता के अनुरूप होगा। पूरे देश में शिक्षकों के लिए समान आय, सेवा की स्थिति और शिकायत निवारण प्रणाली के वांछनीय उद्देश्यों तक पहुँचने के प्रयास किए जाएँगे।' नीति में पदोन्नति के लिए उचित अवसरों के साथ-साथ पुरस्कार और दण्ड के आचरण के लिए सुझाए गए मानदण्डों के बारे में भी बात की गई। तो शिक्षक राज्य का कर्मचारी बनने के रास्ते पर चल निकला लेकिन एक चेतावनी के साथ। 'शिक्षक शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहेंगे।'

यहाँ एक उल्लेखनीय बदलाव है : कई वादे किए गए हैं लेकिन उन्हें निभाया नहीं जाता। इसके साथ ही केवल एक कर्मचारी रूप में शिक्षक का विचार आकार लेता है ; 'बेहतर सौदा' और 'जवाबदेही' जैसे शब्द, बिना यह स्पष्ट किए कि जवाबदेही किसके लिए, प्रस्तुत किए जाते हैं। और फिर व्यापक समुदाय के लिए शिक्षा मुहैया कराने के लिए परियोजनाएँ आती हैं। भौतिक परिस्थितियों के कारण बाहर के शिक्षक गाँव में रहना पसन्द नहीं करते और उन परिस्थितियों को ठीक करने का प्रयास नहीं किया जाता तो इस विकल्प को बढ़ावा दिया गया कि उसी गाँव से किसी निवासी को शिक्षक बना दिया जाए। यह बात भी अच्छी लगी क्योंकि यह विकल्प सस्ता था, उस व्यक्ति को भाषा और बच्चों की संस्कृति का ज्ञान था और वह उनका क़रीबी हो सकता था।

लेकिन जैसा कि हम देख रहे हैं, राज्य को ऐसे विकल्प बहुत पसन्द हैं जो नियंत्रणकर्ताओं के अनुकूल हों। विचार और उनकी अभिव्यक्तियाँ, अनिवार्यता से दूर हटकर कुछ और ही बन जाती हैं क्योंकि उन्हें सुविधा के अनुसार परिवर्तित किया जाता है। इस नव-उदार वाली अवधि में गुणवत्ता में सुधार के लिए प्राथमिक और प्रारम्भिक शिक्षा के लिए निधि के उपयोग से शिक्षक का विचार बुरी तरह से प्रभावित हुआ। प्रयास गुणवत्ता पर आधारित था क्योंकि विश्वास यह था कि पहुँच के लिए तो बहुत कुछ किया गया है और जब तक गुणवत्ता बेहतर नहीं हो जाती तब तक भागीदारी में सुधार नहीं होगा क्योंकि अब यह ठहराव का सवाल है। राज्य प्रणाली को ग़ैर-कार्यात्मक, कठोर और तंत्र की दृष्टि से ग़ैर-सुधारणीय कहकर परिभाषित किया गया और समानान्तर संरचनाएँ स्थापित की गईं। शुरुआत में इन्होंने सार्वजनिक प्रणाली के सुधार में तेज़ी लाने का प्रयास किया लेकिन बाद में इसे बन्द करने की माँग हुई और सब कुछ समानान्तर निजी प्रणाली को सौंप दिया। वास्तव में इन्हें आरम्भ बिन्दु भी कहा जाता है क्योंकि वे तंत्र चलाने वालों को यह कहने की अनुमति देते हैं कि हमने सब कुछ किया, सब कुछ करने की कोशिश की है और कुछ भी काम नहीं करता है। यह बात भुला दी गई है कि चुने गए कार्यक्रमों और उनके कार्यान्वयन में उन लोगों को शामिल नहीं किया जाता है जिन्हें उन्हें चलाना है। प्रस्तावित चरण क्या हैं, उन्हें कैसे लागू करना है – इन सबके बारे में निर्णय लेने के लिए ज़मीनी स्तर पर उनसे कार्य नहीं करवाया जाता। विकेन्द्रीकरण और भागीदारी का विचार क़रीबी निगरानी और मज़बूत केन्द्रीकरण के रूप में सिमट कर रह गया है क्योंकि ज़मीनी स्तर पर काम करने वाले कार्यकर्ताओं से यह

अपेक्षा नहीं की जाती कि वे बेहतर समाधान खोजने के लिए परिदृश्य का विश्लेषण करने में मदद करने के लिए विचार दें और वास्तविक स्थिति के बारे में बताएँ। इसके विपरीत उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे केन्द्रीय आदेशों को समर्थन दें और उनका पालन सुनिश्चित करें तथा केन्द्रीय समेकन के लिए 'अर्थहीन' आँकड़े इकट्ठा करें।

हम विपथ हुए हैं, लेकिन केवल इस बात पर ज़ोर देने के लिए कि शैक्षिक सुधार में एक प्रतिभागी के रूप में मान्यता प्राप्त शिक्षक केवल एक गौण व्यक्ति था। शैक्षिक उपक्रम में उनकी स्थिति और हिस्सेदारी धीरे-धीरे घटती गई क्योंकि शिक्षकों की श्रेणी में विभाजन या स्तरण में वृद्धि हुई। मिशन प्रणाली में पहुँच का विस्तार करने के स्पष्ट प्रयास में और आर्थिक कारणों से शिक्षक कम वेतन पाने वाला, अधिक असुरक्षित, स्तरीकृत और कमज़ोर हो गया। विभाजन या स्तरण के कारण नियमित शिक्षक की वैधता और उस पर होने वाले व्यय पर विवाद खड़ा हुआ। इससे एक अवांछित दबाव पड़ा, अक्सर अनचाही आलोचना हुई। सभी शिक्षकों को काम न करने वालों की संज्ञा दे दी गई और यह सब हुआ कुछ ऐसे लोगों की छवि के कारण जिनका प्रयोग अधिकारियों ने अन्य लोगों के प्रबन्धन के लिए और अन्य शिक्षकों से अपने लाभ के लिए किया। राजनेता कोई भी हो और राजनीतिक पदानुक्रम में उनका कोई भी स्तर हो, शिक्षक उनकी कृपा पर आश्रित थे और हैं। निष्पक्ष नियुक्तियों और क्षमता निर्माण के वादे के बावजूद, सरकारों ने शिक्षकों को राजनीतिक लाभ के लिए बेतरतीब रूप से नियुक्त किया या करने की इजाज़त दी। कुछ सरकारों ने शिक्षक तैयारी की सुविधाओं को बन्द कर दिया या इस बात का दावा करते हुए उनकी प्रभाविता कम कर दी कि शिक्षकों को प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) ने सेवाकालीन क्षमता निर्माण का कार्य शुरू किया लेकिन जल्द ही डीपीईपी एक मिशन (अभियान)- सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) बन गया। ऐसा नहीं है कि डीपीईपी के सभी प्रयास बेहतर थे, लेकिन एसएसए के तहत किए गए प्रयासों ने गहरी सनकवाद और बोरियत को बढ़ावा दिया। इसने शिक्षण समुदाय को निराश कर दिया क्योंकि इसके साथ में ये सारी बातें भी हुई- शिक्षकों का विभाजन या स्तरण, उन्हें कम वेतन प्राप्त कर्मचारी समझना, कामचोर और मूर्ख समझना जिन्हें किसी के भी द्वारा इस स्थिति तक प्रशिक्षित (या प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता था क्योंकि वे बदलने और सीखने के लिए तैयार नहीं थे) किया जा सकता था जहाँ राज्य खुद प्रशिक्षण के बारे में बात करने में हिचकिचाता है। शिक्षक शिक्षा में सुधार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) का निर्माण बहुत अधिक धूमधाम के साथ किया गया। लगभग दो दशकों में इसने शिक्षक-शिक्षा को प्रमाण पत्र देने का स्वांग बना दिया है। प्रशिक्षण की डिग्री की अनिवार्यता और शिक्षक-शिक्षा के कॉलेजों को बेरोकटोक लाइसेंस देने के अभ्यास ने पूरी शिक्षक-शिक्षा प्रणाली का गहरा अनादर किया है।

न्यायमूर्ति वर्मा आयोग के साथ-साथ कई अन्य समितियों, नए पाठ्यक्रम और बीएड और एमएड कार्यक्रमों की अवधि में वृद्धि के बावजूद शिक्षक-शिक्षा को ठीक करने का कार्य असम्भव लगता है। डायट, एससीईआरटी, सीटीई, आईएएसई और एनसीटीई (या एनसीईआरटी इत्यादि) पर भी कई चर्चाएँ हुई हैं। इन सभी में एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु उभरकर आया है। और वह बिन्दु यह है कि इन्हें नौकरशाही नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए और इनका नेतृत्व ऐसे अच्छे शिक्षाविदों और प्रशासकों को करना चाहिए जिनके पास थोड़ी स्वतंत्रता हो। उनके पास पर्याप्त व्यक्ति और बजट होना चाहिए जिससे वे अपनी भूमिकाओं को निभाने में सक्षम हो सकें। विडम्बना यह है कि जब हम इन संस्थानों का उपयोग करके शैक्षिक सुधारों और शैक्षिक प्रक्रिया को शक्तिशाली बनाने की बात करते हैं, तो देखते हैं कि उनमें व्यक्ति, पर्याप्त धन और स्वायत्तता का अभाव है।

नई शिक्षा नीति के ताज़ा प्रयास स्पष्ट रूप से मानते हैं कि शिक्षा कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे सार्वजनिक धन से पाया जा सके और इसलिए निजी क्षेत्र और कॉरपोरेट का प्रवेश होता है। अतः यह प्रयास किया जाता है कि कॉरपोरेट शिक्षा पर नीतिगत सुझाव दें। नौकरशाहों की तरह बिज़नेस करने वाले पूँजीपति ऐसे नए विशेषज्ञ हैं जो शिक्षा की समस्या के समाधान के बारे में सभी कुछ जानते हैं। जहाँ तक शिक्षकों की बात है तो उनके बारे में पक्षपातपूर्ण विचार हैं कि पुरस्कार और दण्ड के माध्यम से शिक्षकों पर नज़र रखनी चाहिए, उनका मूल्यांकन और निगरानी करना चाहिए और उन्हें नियंत्रित करना चाहिए- यानी शिक्षक क्षमता और स्वायत्तता के बिना शिक्षक की जवाबदेही के विचार को स्वीकृति मिल जाती है। नियंत्रण और निगरानी के बेहतर तरीक़ों की ओर अधिक झुकाव है और प्रेरक कारकों से सम्बन्धित कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है। न ही निरुत्साहित होने के वैकल्पिक कारणों पर विचार किया गया है। तो इस प्रश्न को हल करने के लिए एक अलग विश्लेषण के आधार पर मॉडल अभी तक विकसित नहीं हुए हैं। दावा यह है कि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए शिक्षकों की क्षमता और उनकी प्रेरणा महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं इस बाते के दावे भी किए जाते हैं कि शिक्षकों को प्रेरित करने के लिए शिक्षक की कमी को सम्बोधित करने, सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सुधार करने और पेशे के रूप में शिक्षण की स्थिति का संवर्धन करने के लिए पहल की जा रही हैं। केवल जिस बाधक कारक को मान्यता प्राप्त है वह

है, स्थानान्तरण और यह माँग की जाती है कि इसका उपाय भी बिना किसी विकल्प या मानवीय अन्तःक्रिया द्वारा किया जाए। यानी कि प्रबन्धन स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से यांत्रिक और वस्तुनिष्ठ होना चाहिए! ऐसा कोई अन्य सुझाव या मुद्दा नहीं है जिसे विचारणीय या बेहतर तरीक़े से प्रबन्धित करने योग्य माना जाए।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

1968 की नीति ने समाज में सन्निहित कुछ पुरातन मान्यताओं को छोड़कर आगे बढ़ने के लिए एक वैकल्पिक विश्व दृष्टिकोण और समझ बनाने के परिप्रेक्ष्य के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर ज़ोर दिया। इसने आर्थिक विकास के उद्देश्य से भी इनके बारे में बात की। इसमें ज़ाहिरा तौर पर तर्कसंगत और वैज्ञानिक सोच के सिद्धान्तों पर भारत के निर्माण की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया था। विज्ञान और समझ पर ज़ोर अधिक था। यह विचार धीरे-धीरे 1986 की नीति में भी पहुँचा जिसमें विज्ञान का सामाजिक तत्व कम हो गया था। अब फ़ोकस क्षमताओं और मूल्यों जैसे कि जाँच-पड़ताल की भावना, रचनात्मकता, वस्तुनिष्ठता, प्रश्न पूछने का साहस, सौन्दर्य संवेदना के साथ-साथ विज्ञान को स्वास्थ्य, कृषि और दैनिक जीवन से जोड़ने के लिए विकसित करने पर था। इसलिए जहाँ एक ओर यह एक व्यापक क्षेत्र प्रतीत हो सकता है वहीं दूसरी ओर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सामाजिक और तर्कसंगत दृष्टिकोण को छोड़ दिया गया जिस पर पहले ज़ोर दिया गया था।

1992 की कार्य योजना में भी प्रौद्योगिकी पर ज़ोर दिया गया और यह बात और भी स्पष्ट रूप देखने में आई क्योंकि इसमें इस पहलू पर एक पूरा अनुभाग था। परिवर्तन स्पष्ट है, अब ज़ोर विज्ञान और विज्ञान से जुड़ी विधि, हालाँकि यह अन्य विषयों में भी समान रूप से मौजूद है, से हटकर प्रौद्योगिकी और आर्थिक विकास के लिए इसके उपयोग पर दिया गया। शिक्षा और संवेदनशीलता को सम्बोधित करने के बजाय, अब फ़ोकस इस बात पर है कि यह अन्य विचारों के शीघ्र प्रसार के लिए एक उपकरण है।

नई नीति के निरूपण में चर्चा और इनपुट के लिए उचित क्षेत्र के रूप में विज्ञान या किसी अन्य विषय का उल्लेख तक नहीं है। इसमें तकनीकी उपकरणों और संचार प्रणालियों के अलावा केवल शिक्षण कला महत्त्वपूर्ण है। 2015 के निरूपण में बदलाव स्पष्ट है- यह मानता है कि हमें व्यावसायिक शिक्षा की ओर आगे बढ़ना चाहिए और चर्चा का एकमात्र विषय यही है कि किस हद तक आगे बढ़ें। केवल एक प्रश्न की अनुमति है कि क्या इसे एक विषय के रूप में रखा जाए या मुख्य विषयों के हिस्से के रूप में एवं हम इसे और अधिक रोचक कैसे बना सकते हैं। यह स्पष्ट रूप से कहता है कि शिक्षा को चाहिए कि वह लोगों को व्यवसाय के लिए तैयार करे। संवैधानिक नागरिक से देश और नियोक्ता के लिए भी आर्थिक संसाधन बनने की बात स्पष्ट रूप से कही गई है। तो जिस बात को महत्त्व दिया गया वह स्पष्ट है – हर किसी को अधिगम के न्यूनतम स्तर तक पहुँचने दें ताकि विकास और प्रगति के लाभों का सबसे अच्छा उपयोग किया जा सके। और अब लोग लोकतांत्रिक राष्ट्र के संविधानी नागरिक नहीं हैं बल्कि विकास के इंजन के लिए कारखानों और भट्टियों में उपयोग की जाने वाली कच्ची सामग्री की तरह संसाधन हैं। नागरिक की धारणा और शिक्षा की रूपरेखा तथा इसके साथ जुड़ी हर चीज़ समय के साथ ही स्पष्ट रूप बदल गई, न केवल नीति और इसके प्रकाशन में बल्कि अभिव्यक्ति की प्रभाविता में भी ताकि आज अमूर्त राष्ट्र और नियोक्ता संविधानी नागरिक से उच्च स्तरीय बना दिए जाएँ। उन्हें दिए प्रस्ताव खाँचों के अनुरूप होना चाहिए और जब-जब खाँचे बदलें तो उसके अनुसार खुद को बदलने के लिए पर्याप्त कुशल होना चाहिए।

समान स्कूल प्रणाली

1968 के दस्तावेज़ में लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए समान स्कूल प्रणाली को आवश्यक बताते हुए इस पर ज़ोर दिया गया था। इसने इंगित किया कि जिस शिक्षा प्रणाली में निजी स्कूल भी चलाए जाते हों वह असाम्यपूर्ण ही होगी। इसमें कहा गया है कि अमीर लोग तो अपने बच्चों के लिए सर्वश्रेष्ठ शिक्षा खरीदने में सक्षम हैं जबकि ग़रीबों को निम्न गुणवत्ता वाले स्कूलों में जाना पड़ता है। इस प्रकार की स्थिति एक समानतावादी समाज के आदर्श के लिए अलोकतांत्रिक और असंगत है। यह योग्यता पर आधारित चयन के विचारों पर भी सवाल उठाता है। 1968 की नीति इसे गम्भीरता से उजागर करती है: 'कभी-कभी उनमें (ग़रीबों में) से सर्वाधिक योग्य बच्चे भी इन अच्छे स्कूलों में नहीं जा पाते, जबकि आर्थिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त माता-पिता अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा 'खरीद' सकते हैं। यह बात न केवल ग़रीबों के बच्चों के लिए बल्कि अमीर और विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के बच्चों के लिए भी ख़राब है। इस प्रकार इसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया कि स्कूल ऐसे होने चाहिए कि जो सभी बच्चों को अपने यहाँ पढ़ने की अनुमति दें भले ही उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उनके आर्थिक साधन कुछ भी हों।

1986 की नीति और 1992 की कार्य योजना में समान स्कूल का कोई उल्लेख नहीं था और समानता के लिए भी सरोकार नहीं था। इसके बजाय इसमें अधिकांश लोगों के लिए न्यूनतम संरचना और सुविधाओं को उपलब्ध कराने की योजना थी। जो ग़रीब लोग सिस्टम को हराकर तथाकथित 'प्रतिभा खोज' में चुने जाते, उनके लिए नवोदय विद्यालय थे। नीति के लिए न्यायपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए हम यह कह सकते हैं कि

हालाँकि इसमें समान स्कूल के प्रयासों को अव्यावहारिक कहकर छोड़ दिया गया लेकिन इसमें कुछ ठोस योजनाएँ बनाई गईं जिसके तहत बच्चों को कुछ हद तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की बात कही गई और इसके लिए सार्वजनिक प्रतिबद्धता का वचन दिया गया। इस कार्य योजना के लिए बिना किसी दृढ़ विश्वास के कभी-कभार छिटपुट प्रयास हुए। जो लोग इसे करने के लिए ज़िम्मेदार थे उन्हें न तो इसकी व्यावहारिकता पर भरोसा था और न ही उन्होंने इसे करना महत्त्वपूर्ण समझा। इन कार्यों में न तो उनकी भागीदारी थी और न ही उन्हें कोई रुचि थी क्योंकि मिशन प्रणाली में किए गए इन प्रयासों में उन्हें शामिल नहीं किया गया था और उनसे यह उम्मीद भी नहीं की गई कि जिन लोगों के लिए यह काम किया जाना है उनसे वे निकटता के साथ बातचीत करें। सभी बच्चों की शिक्षा पर सार्वजनिक हित की बजाय व्यक्तिगत हित के रूप में विचार करने के दबाव के साथ पब्लिक स्कूल और निजी प्रणाली को समानता देने का दबाव भी था और वह भी एक ऐसे लेंस के माध्यम से जो हमेशा सार्वजनिक विद्यालय को कमतर दिखाता है। इन सब बातों ने स्कूल प्रणाली को काफ़ी हानि पहुँचाई। इसलिए नई शिक्षा नीति विकसित करने की प्रक्रिया ने समझदारी से स्कूल प्रबन्धन पर प्रतिक्रिया माँगी। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वंचित वर्गों की शिक्षा का उल्लेख उन्हें शिक्षा में शामिल करने के अर्थ में है। साम्यता का सिद्धान्त भुला दिया गया है और साम्यता के साथ सभी को शिक्षित करने में दृढ़ विश्वास की कमी साफ़ दिखाई देती है।

वर्तमान रुझान और सीसीई

कार्रवाई के क़दम आगे बढ़ रहे हैं। केन्द्रीय मंत्री ने एकदम से फैसला किया कि एनसीईआरटी का पाठ्यक्रम बहुत अधिक है और इसे 50% तक कम कर देना चाहिए। उन्होंने किसी से यह पूछने की ज़रूरत ही नहीं समझी कि पाठ्यक्रम ऐसा क्यों था और इसे वर्तमान स्तर तक कम करने के लिए कौन-सी लड़ाई लड़ी गई थी। उन्होंने यह नहीं पूछा कि एनसीईआरटी की किताबों की तुलना में राज्य सरकार की किताबों और निजी स्कूल की किताबों और पाठ्यक्रम में इतनी अधिक सामग्री क्यों थी और क्या पहले उन्हें सम्बोधित नहीं किया जाना चाहिए?

दिल्ली सरकार ने फैसला किया कि सफलता सुनिश्चित करने का सबसे अच्छा तरीक़ा बच्चों को अधिक सीखने वालों और कम सीखने वालों में विभाजित कर देना है। ऐसा करने के औचित्य को साझा नहीं किया गया और ऐसा करने के सम्भावित प्रभावों के बारे में भी पूरी तरह से सोचा नहीं गया। सरकार ने जो दस्तावेज़ निकाला उसमें आयु, स्तर, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के साथ इसके सम्बन्ध, संविधान और यहाँ तक कि शिक्षण कला जैसे अकादमिक मुद्दे थे ही नहीं। जो औचित्य बताया गया वह बहुत कमज़ोर और परेशान करने वाला था। इन सवालों के बारे में सोचना बहुत महत्त्वपूर्ण है और फिर उसके बाद ही निर्णय लेना चाहिए। किसी भी प्रणाली के लिए यह बात अच्छी नहीं है कि चीज़ों को ठीक से लागू करने, समझने और अनुकूलित करने से पहले ही उन्हें लागू कर दिया जाए और फिर हटा दिया जाए। सतत और व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) इसका एक उदाहरण है।

आकलन और सीसीई से सम्बन्धित बहस परिष्करण, तुलना और रैंकिंग पर केन्द्रित है। मुद्दा यह नहीं कि बच्चा या कोई भी व्यक्ति जो कुछ कर रहा है उसे समझकर सीखे कि वह जो कुछ कर रहा है वह ठीक है या नहीं या उसने कहाँ गलती की; मुद्दा तो यह है कि सीसीई कारगर क्यों नहीं हुई। सीसीई पर उठाए गए सवाल पहले से ही यह मानकर चलते हैं कि यह पहल पूरी तरह विफल रही है और इससे कोई लाभ नहीं हुआ है। इस प्रकार की आलोचना में इन प्रश्नों के उत्तर शामिल नहीं हैं कि उनके विचार में सीसीई से कैसे मदद मिल सकती है और सीसीई के लाभ क्या हैं। ज़मीनी स्तर पर कार्यरत लोगों के विचार पूछने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि आकलन प्रणाली किस तरह से और अधिक सूक्ष्म बारीक़ियों की अभिव्यक्ति कर सकती है तथा बच्चों को उनकी सोच और नवाचार के लिए पुरस्कृत कर सकती है। इस प्रकार के बहिष्करण से न केवल मौजूदा शिक्षार्थियों पर बल्कि हमारे समाज के ताने-बाने पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है।

सारांश

जैसा कि स्पष्ट है सरकारी पहल में प्रवृत्ति हमेशा कमज़ोर रही है और कभी-कभी तो इनमें साम्यता और समावेशन के कुछ महत्त्वपूर्ण विचारों को छोड़ भी दिया जाता है। इन पहल में संवैधानिक मूल्यों के साथ शिक्षा की व्यापक और सुसंगत दृष्टि की सतत कमी-सी दिखाई देती है और सबको दी जा सकने वाली न्यायसंगत शिक्षा के महत्त्व और सम्भावना में भी इनका कोई भरोसा नहीं दिखाई देता ; यहाँ तक कि नीति के दस्तावेज़ भी धीरे-धीरे इन विचारों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। ज़मीनी स्तर पर कार्यान्वयन के समय नीति में बताए गए मुद्दों को सम्बोधित नहीं किया जाता और जितने बजट का वादा किया गया था, उसका केवल एक छोटा-सा हिस्सा ही दिया जाता है। हस्तक्षेपों के अनियमित शीर्षों का डिज़ाइन एक अव्यवस्थित और असन्तोषजनक कल्पना का परिणाम लगता है जिसमें शिक्षा प्रणाली की उस स्पष्ट और सुसंगत दृष्टि की कमी है जिसे स्कूल प्रणाली में रहने वाले लोग समझते हैं।

इन गतिविधियों में तुरत-फुरत समाधान पर ध्यान दिया गया जो संक्षिप्त अवधि के लिए प्रणाली के छोटे घटकों पर लक्षित थे। ये गतिविधियाँ, जिनमें से कुछ विरोधाभासी सिद्धान्तों पर

आधारित थीं, एक ही स्कूल में समानान्तर रेखाओं पर चल सकती थीं, उसी तत्व पर ध्यान केन्द्रित कर सकती थीं, और उसी शिक्षक से विपरीत दिशाओं में जाने का आग्रह कर सकती थीं। इस खण्डित दृष्टिकोण में, प्रणाली को सभी हस्तक्षेपों के बारे में पता तक नहीं था और जिन शिक्षकों व स्कूलों को इन्हें लागू करना था उन्हें पक्के तौर पर यह नहीं मालूम था कि उनसे जो कुछ करने के लिए कहा जा रहा है वे वैसा क्यों करें। इनमें से बहुत-सी पहल स्वतंत्र निजी लोगों द्वारा बिना एक-दूसरे से बात किए की जा रही थीं और राज्य के भीतर स्वतंत्र विभागों द्वारा सम्भाली जा रही थीं।

आकलन और निगरानी की माँग बढ़ती है और विफलता की ज़िम्मेदारी शिक्षक पर ही रहती है। शैक्षणिक व पाठ्यचर्या एजेंसी और स्कूल व शिक्षक की स्वायत्तता को शामिल न करने के साथ शिक्षा की बढ़ती हुई संकीर्ण अभिव्यक्ति भी जुड़ी हुई है। प्रणाली के प्रशासकों और खण्डशः लक्ष्यों के लिए नई विधियों और तकनीकों के अधिवक्ताओं ने फैसला कर लिया है कि शिक्षक काम नहीं करते हैं और वे नहीं सोच सकते, इसलिए उन्हें निर्देशों का पालन करना होगा। शिक्षक के काम को समझने और चुनौतियों को समझने के लिए कोई सरोकार और प्रयास नहीं किया गया है क्योंकि प्रणाली असफल विचारों और विशेषज्ञों के एक समूह से दूसरे समूह पर जाती है, यह स्वीकारे बिना कि गुणवत्तापूर्ण सार्वभौमिक शिक्षा पाने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि शिक्षकगण सशक्तता और 'स्वायत्तता' (स्वेच्छाचारिता नहीं) के साथ कार्य करें और उन्हें प्रशासन और व्यवस्था के सक्षम परितंत्र का अनुसमर्थन मिले।

Resources:

1 Kothari Commission report 1966 and the National Policy Of Education 1968

2 National Policy Of Education 1986 and the Programme of action 1992

3 National framework for Elementary and Secondary education 1988 - National Council of Educational Research and Training (NCERT)

4 Dewan Hriday Kant, New education policy fails to address issues of equity https://www.villagesquare.in/2016/12/05/new-education-policy-fails-address-issues-equity/

5 Some terms used

DPEP- District Primary School Program

NCTE- National council of Teacher Education

NCERT- National Council of Educational Research and Training

SCERT -National Council of Educational Research and Training

DIET – District Institute of Education and Training

CTE – College of Teacher Education

IASE- Institute of advanced studies in education

SSA – Sarva Shiksha abhiyan

NPE – National Policy of Education

NCF – National Curricular Framework

I am thankful to Nimrat Kaur of the Azim Premji Foundation for the inputs of ideas and organisation of this article

हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के अनुवाद पहल में कार्यरत हैं। वे एकलव्य के संस्थापक समूह के सदस्य और विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार रहे हैं। वे 40 से अधिक वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार से और विभिन्न पहलुओं पर कार्य करते रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षिक नवाचार और राज्य शैक्षिक संरचनाओं में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे *hardy.dewan@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

भारत में सतत तथा व्यापक मूल्यांकन और फ़ेल न करने की नीति का भविष्य क्या होना चाहिए?

आँचल चोमल



भारत में आकलन में सुधार के बारे में बड़े पैमाने पर विचार-विमर्श किया गया है। स्वतंत्रता से पहले की राष्ट्रीय नीतियों और आयोगों जैसे हार्टाग समिति (1929) और सार्जेंट योजना (1944) के साथ-साथ स्वतंत्रता के बाद मुदलियार आयोग (1953), कोठारी आयोग (1964), शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति (एनपीई) 1968 और 1986, बिना बोझ के सीखना (1993) और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ़) 2000 और 2005 ने परीक्षा प्रणाली में बदलाव की सिफ़ारिश की है। कुछ महत्त्वपूर्ण विचार इस प्रकार हैं- परीक्षाओं को *व्यापक* बनाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों का आकलन करना, *रटन्त प्रणाली पर आधारित प्रश्नों के स्थान पर* समझ, अनुप्रयोग और उच्च संज्ञानात्मक कौशल का परीक्षण करने वाले प्रश्न पूछना, *आकलन के विविध तरीक़ों का उपयोग करना*, विद्यार्थी के कार्य का रिकॉर्ड रखना, *अंक की बजाय ग्रेड का प्रयोग* करना और हाल ही में अधिगम की सुगमता के लिए रचनात्मक आकलन का उपयोग करने का विचार भी प्रस्तुत किया गया।

इन परिवर्तनों को दर्शाते हुए परीक्षा प्रणाली में सुधार पर राष्ट्रीय फ़ोकस समूह के आधार पत्र (एनसीईआरटी 2006) में वर्तमान परीक्षा प्रणाली में *संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक परिवर्तन* की आवश्यकता पर चर्चा की गई है। इसमें कई आयामों में परिवर्तन की सिफ़ारिश की गई है जैसे परीक्षाओं के उद्देश्य से लगाकर इसकी गुणवत्ता, प्रक्रिया, उपयोग और प्रभाव तक। यह सतत और व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) के रूप में आकलन की एक वैकल्पिक प्रणाली या और अधिक उचित रूप से कहें तो *पूरक प्रणाली* का समर्थन करता है। *यह सीसीई को स्कूल आधारित मूल्यांकन की प्रणाली के रूप में परिभाषित करता है जो सतत या आवधिक (शिक्षण से पहले और उसके दौरान) है और मूल्यांकन के कई तरीक़ों का उपयोग करने के कारण व्यापक (शैक्षिक और सह-शैक्षिक दोनों क्षेत्रों में) है।*

वैसे तो नीतियों और आयोगों ने प्रणाली को अक्सर इस बात के लिए मनवाने की कोशिश की है कि वे आकलन सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को बदलें लेकिन कोई ख़ास फ़ायदा नहीं हुआ। फिर निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 (आरटीई) आया जिसमें स्कूलों के लिए पारम्परिक परीक्षाओं के बदले सतत और व्यापक मूल्यांकन प्रणाली को अपनाना अनिवार्य कर दिया गया। 2010 में आरटीई अधिनियम के लागू होने के बाद से फ़ेल न करने की नीति प्रभाव में आ गई है। आरटीई अधिनियम की धारा 30 (1) में यह प्रावधान है कि *''प्राथमिक शिक्षा के पूरा होने तक किसी भी बच्चे को किसी भी बोर्ड परीक्षा में उत्तीर्ण होने की आवश्यकता नहीं होगी।''* इस नीति के तहत कहा गया है कि किसी भी बच्चे को कक्षा 8 के अन्त तक, जब तक वह 14 वर्ष का नहीं हो जाता और आरटीई अधिनियम के दायरे से बाहर नहीं निकलता, कक्षा में रोका या स्कूल से निकाला नहीं जाएगा।

जब से सीसीई और फ़ेल न करने की नीति (एनडीपी) शुरू हुई, तभी से वह सूक्ष्म परीक्षण का मुद्दा बनी हुई है। इस क़दम को लेकर शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं, शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत लोगों, माता-पिता और विद्यार्थियों की मिश्रित प्रतिक्रियाएँ हैं। कुछ विचार नीति के पक्ष में हैं जबकि कई अन्य लोगों ने इसके ख़िलाफ़ ज़ोरदार तर्क दिए हैं। ज़मीनी स्तर पर सीसीई और एनडीपी के अनुचित और अक्सर ग़लत क्रियान्वयन के बारे में सरोकार व्यक्त किए गए हैं। आकलन के विभिन्न नए तरीक़ों जैसे निर्माणात्मक और योगात्मक आकलन को महत्त्व देना, लघु परीक्षणों की शृंखला, विद्यार्थियों की ग्रेडिंग के लिए प्रारूप, परियोजनाओं और पोर्टफ़ोलियो का उपयोग इत्यादि सीसीई की शुरूआत के साथ उभरे हैं। इनमें से कुछ तरीक़ों की वज़ह से बार-बार टेस्ट लिए जाते हैं जिससे शिक्षकों, माता-पिता और विद्यार्थियों को तनाव और चिन्ता होती है, आँकड़ों सम्बन्धी ढेर सारा काम करना पड़ता है, कभी-कभी प्रारूप भरते समय ग़लत डेटा प्रविष्टियाँ मिलती हैं, 'रेडीमेड प्रोजेक्ट' उद्योग पनपते हैं, विद्यार्थी उत्तीर्ण होकर अगली कक्षा में चले जाते हैं भले ही उन्होंने आयु के उपयुक्त योग्यताएँ हासिल न की हों, सह-शैक्षिक क्षेत्रों का अनौपचारिक आकलन होता है आदि।

इसलिए अधिकतर लोगों ने महसूस किया कि सीसीई ने परीक्षाओं के तनाव को कम करने के बजाय बढ़ा दिया है। एनडीपी की भी इतनी ही आलोचना हुई है और लोगों का मानना है कि इसके कारण विद्यार्थियों के सीखने और शिक्षकों

के सिखाने की प्रक्रिया प्रभावित हुई है, उनके अभिप्रेरण में कमी आई है। इन सबकी वज़ह से कई लोग इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि अपने देश में हम अभी भी इस तरह के मूल्यांकन के लिए तैयार नहीं हैं।

इन सभी सरोकारों और धारणाओं के बीच इस बात पर पर्याप्त चर्चा नहीं हुई कि वास्तव में सतत और व्यापक मूल्यांकन क्या है? यह ज़रूरी क्यों है? यह हमारे देश के शिक्षा के लक्ष्यों और आदर्शों के साथ कैसे जुड़ा है? क्रियान्वयन के उत्साह में हम यह समझने से पूरी तरह से चूक गए कि वास्तव में सीसीई का क्या अर्थ है?

सीसीई बच्चों की शिक्षा, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, आकलन के उद्देश्य और शिक्षक की भूमिका के बारे में कुछ धारणाओं पर निर्भर है।

1. सीसीई की सबसे बड़ी धारणाओं में से एक यह है कि सीखना लगातार होता ही रहता है- कक्षा के अन्दर, कक्षा के बाहर, विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रयोग करते समय, गणित की समस्या को हल करते समय, अपने विचारों को एक कविता, गीत या चित्र के रूप में काग़ज़ पर व्यक्त करते समय। पूरे दिन स्कूल में, बच्चे लगातार विभिन्न रूपों और तरीक़ों से अपने अधिगम का प्रदर्शन करते हैं।

2. चूँकि अधिगम की प्रक्रिया लगातार होती रहती है इसलिए उसे सुगम बनाने के लिए स्कूल में शिक्षण के तरीक़े ऊर्जस्वी और जीवन्त होने चाहिए। शिक्षार्थियों को विभिन्न क्षमताएँ विकसित करने, सीखने के विविध अनुभवों से जुड़ने, संकल्पनात्मक ज्ञान प्राप्त करने और सहपाठियों के साथ सहयोगपूर्ण ढंग से कार्य करने के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए।

3. जब शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया जीवन्त हो तो आकलन की प्रकृति को भी जीवन्त होना चाहिए। ऐसे आकलनों का उद्देश्य, जिसे निर्माणात्मक आकलन भी कहा जाता है, यह है कि विद्यार्थी के अधिगम को समझने और अधिगम के अनुभव की प्रभाविता का मूल्यांकन करने में शिक्षकों की सहायता हो सके। अब तक के अधिकांश आकलनों की प्रकृति ‘मूल्यांकनात्मक’ रही है यानी मानदण्ड तय किए बिना अंक या ग्रेड प्रदान किए जाते थे। इस तरह के मूल्यांकनों ने विद्यार्थियों को ऐसा उपयुक्त और प्रामाणिक फीडबैक प्रदान नहीं किया जो उन्हें बता सके कि उन्हें अपनी योग्यता को आगे बढ़ाने के लिए किन क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करना है।

अ. हमारे अधिकांश स्कूलों में आकलन का जो रूप आजकल है, उसकी तुलना में निर्माणात्मक आकलन मूलतः अलग है। इसका अर्थ है भली-प्रकार सोची हुई आकलन पद्धतियों के माध्यम से हर बच्चे के सीखने के मार्ग पर व्यवस्थित रूप से नज़र रखना। इनमें से कई आकलन तो अनौपचारिक और शिक्षक की पाठ योजना में बड़ी बारीक़ी के साथ समेकित हो सकते हैं। इन आकलनों से जो आँकड़े या डेटा मिलें शिक्षक को उनकी जाँच और विश्लेषण करना चाहिए ताकि वे प्रत्येक बच्चे के अधिगम में सहायता देने के लिए उपयुक्त रणनीति तैयार कर सकें। किस चीज़ का आकलन करना चाहिए- इसके लिए विषय/ अवधारणा के अधिगम के उद्देश्यों के बारे में गहरी स्पष्टता होनी चाहिए और इसका आकलन कैसे किया जाना चाहिए- यह इस पर निर्भर करता है कि शिक्षक दिए गए प्रश्न के ज्ञान/ कौशल/मनोवृत्ति के आकलन के लिए सबसे उपयुक्त उपकरण किसे मानते हैं और शिक्षार्थी का स्तर क्या है।

4. आख़िरी और सबसे महत्त्वपूर्ण धारणा शिक्षक की भूमिका के बारे में है। शिक्षक स्कूल के औपचारिक वातावरण में विद्यार्थी-अधिगम को सुगम करने में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उस भूमिका को निभाने में बच्चों के बारे में उनकी धारणाएँ और वे कैसे सीखते हैं- ये दोनों बातें बेहद महत्त्वपूर्ण होती हैं। बच्चों के सीखने की क्षमता के विरुद्ध किसी भी प्रकार का पूर्वाग्रह सीखने की प्रक्रिया को विफल कर सकता है। साथ ही कक्षा में अपनी भूमिका के बारे में शिक्षक की धारणा भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। जो शिक्षक बच्चों के अनुभवों को महत्त्व देते हैं, कक्षा में उन्हें अपनी बात रखने के अवसर प्रदान करते हैं, सहयोगी होते हैं, बच्चे की अकादमिक और ग़ैर-अकादमिक दोनों प्रकार की ज़रूरतों और सरोकारों को समझते हैं- वे अपने विद्यार्थियों की शिक्षा को सुगम बनाने में सफल होते हैं।

उपर्युक्त मान्यताएँ और धारणाएँ सीसीई के अन्तर्निहित आधार का निर्माण करती हैं।

आइए, अब हम स्कूलों के अभ्यासों और सीसीई के नीतिगत दिशानिर्देशों में दिए गए निर्देशों पर ध्यान दें-

1. अधिकांश राज्यों ने मैनुअल या हैंडबुक में सीसीई दिशानिर्देशों को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया। इनमें नए आकलन प्रतिमान या पैटर्न का विस्तार किया गया, उदाहरण के लिए कितनी बार टेस्ट लिए जाएँ, निर्माणात्मक और योगात्मक टेस्ट को कितना महत्त्व दिया जाए, कितने प्रकार के आकलन किए जा सकते हैं आदि।

2. अधिकांश राज्यों ने अपने रिपोर्ट कार्ड बदल दिए ताकि पूरे अकादमिक वर्ष में बच्चे के बारे में विभिन्न रिपोर्टिंग की जा सके; अधिकतर मामलों में अंकों के स्थान पर ग्रेडों का

प्रयोग किया गया था।

3. रिपोर्ट कार्ड में नए क्षेत्र जोड़े गए – उदाहरण के लिए, व्यक्तिगत और सामाजिक गुण। कभी-कभी ग्रेड इन पहलुओं पर दिए जाते तो कभी गुणात्मक टिप्पणियाँ दी जातीं।
4. नए प्रारूप पेश किए गए और शिक्षक से यह अपेक्षा की गई कि वे आवधिक अन्तराल पर विवरण भरें। प्रारूपों को भरने की प्रक्रिया में उन्हें प्रशिक्षण दिया गया।

इन सबके बीच कई ऐसी चीज़ें हैं जो नहीं बदलीं-

1. कक्षा अध्यापन की प्रकृति आज भी शिक्षक-निर्देशित है जो पाठ्यपुस्तक पढ़ा देने तक सीमित है और संकल्पनात्मक स्पष्टता तथा पाठ्यचर्या के लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान नहीं दिया जाता।
2. सेवा-पूर्व और सेवा-कालीन स्तर पर आयोजित किए जाने वाले शिक्षक-पेशेवर-विकास कार्यक्रमों में शिक्षण कला और आकलन की अवधारणाओं को अपर्याप्त रूप से सम्बोधित किया जाता है।
3. आकलन के बारे में अभी भी यही नज़रिया है कि बच्चों पर धीमी, औसत या तेज़ गति से सीखने वाले शिक्षार्थियों का ठप्पा लगा दिया जाए। सीखने का दायित्व अभी भी बच्चों पर है, न कि स्कूल के वातावरण और शिक्षक की तैयारी पर।
4. जिन प्रशासकों और शिक्षक-समर्थन प्रणाली का काम शिक्षकों को कक्षा सम्बन्धी कार्यों में सलाह देना है, वे अभी भी उनके रिकॉर्ड और प्रारूपों का निरीक्षण करते हैं।

आकलन के बारे में किसी भी परिप्रेक्ष्य निर्माण कार्यशाला का आयोजन नहीं किया गया। इसलिए शिक्षकों से यह अपेक्षा करना कि वे इसे अपने आप समझ लेंगे, थोड़ा अनुचित था। प्रारूपों और आकलन समय-सारणी की निश्चित योजना भी सतत रचनात्मक आकलन के उद्देश्य को असफल कर देती है क्योंकि वे आवश्यकता पर आधारित हैं और हर कक्षा की आवश्यकता के अनुसार बदलते हैं। ज़मीनी स्तर पर कार्य के अभाव में क्या सीसीई कभी सफल हो सकता था?

स्पष्ट उत्तर है 'नहीं' या फिर यह कह सकते हैं कि अगर सफल हुआ भी तो बहुत सीमित सीमा तक, शायद उन कुछ शिक्षकों की कक्षाओं में जो पहले से ही अच्छी शिक्षण-कला के बारे में जानते हैं। ऐसी स्थिति में आकलन विषयक आवश्यक सुधारों का असफल होना लाज़मी था।

स्कूलों में अपने विद्यार्थियों के सीखने के स्तर को बेहतर बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि आकलन के ऐसे तरीक़ों पर पूरा ध्यान दिया जाए जिनकी प्रकृति रचनात्मक है। इसे केवल सीसीई की प्रणाली के माध्यम से सुनिश्चित किया जा सकता है। इसे प्राप्त करने के लिए इन बातों को प्राथमिकता दी जा सकती है :

1. यह बात मान लें कि ऐसा करना मुश्किल है और इसके लिए थोड़े समय की आवश्यकता होगी। मूल्यांकन के बारे में अपनी सोच को बदलना आसान नहीं है। लेकिन यह आवश्यक है और इसलिए हमें इसे समय देना होगा।
2. शिक्षकों के लिए आकलन के परिप्रेक्ष्य-निर्माण सम्बन्धी कार्यशालाओं का आयोजन करना चाहिए। सीसीई को एक ऐसी तकनीक या नीति के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए जिसे समय-सारणी और कुछ प्रारूपों के माध्यम से सम्बोधित किया जा सके।
3. शिक्षकों को परामर्श देने के लिए एक मज़बूत प्रणाली की आवश्यकता है जो उन्हें आकलनों को डिज़ाइन करने, दस्तावेज़ों को संश्लेषित करने और गुणात्मक रिपोर्ट लिखने में सहायता प्रदान करे। इसके लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों, नागरिक समाज संगठनों और विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों की सहायता ली जा सकती है जो दुनिया भर के सर्वोत्तम तरीक़ों से परिचित हो सकते हैं।
4. विद्यालयों का निरीक्षण करने वाले शिक्षा कार्यकर्ताओं को कक्षा के शिक्षण का प्रेक्षण करना होगा, केवल विद्यार्थियों के प्रारूप और रिपोर्ट कार्ड का नहीं। यदि कोई शिक्षक सीसीई के अनुसार कार्य कर रहा है तो उसके विश्वसनीय प्रमाण उसकी कक्षा में दिखाई देंगे न कि स्टाफरूम में।
5. शिक्षक-प्रशिक्षकों को ऐसे आकलनों के 'क्रियान्वयन' के बारे में बेहतर जानकारी देने के लिए शिक्षक तैयारी के कार्यक्रमों में सीसीई का अभ्यास किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थी-शिक्षक सीसीई को बारीक़ी से देख सकें और सीख सकें कि अपनी कक्षाओं में इसे कैसे करना चाहिए।
6. माता-पिता को स्कूलों से गुणात्मक रिपोर्ट की माँग करनी चाहिए जिससे वे यह समझ सकें कि वास्तव में बच्चा स्कूल में विभिन्न पहलुओं के बारे में क्या सीख रहा है।

सीसीई के साथ यह भी महत्त्वपूर्ण है कि फ़ेल न करने की नीति बनी रहे। हालाँकि फ़ेल न करने की नीति के बारे में पक्ष और विपक्ष में कई विचार हैं, लेकिन यह भी ठीक नहीं होगा कि सीसीई के अपर्याप्त अवधारण और क्रियान्वयन के कारण विद्यार्थियों को फ़ेल कर दिया जाए। भले ही सीसीई और एनडीपी का भविष्य अभी भी अनिश्चित है, लेकिन हम यह जानते हैं कि एक देश के रूप में हमने इन दोनों पहल को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए पर्याप्त कोशिश नहीं

की है। एक देश के रूप में हमने सीसीई को प्रभावी बनाने के पर्याप्त प्रयास किए बिना ही एनडीपी को लागू करने की सोची। यह बात भी स्वीकृत की जा चुकी है कि जो आकलन शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के साथ समेकित होते हैं, वे विद्यार्थी के सीखने पर बहुत अधिक प्रभाव डालते हैं।

अब यह तय करना हमारे हाथ में है कि हम एक देश के रूप में पहल के दोषपूर्ण क्रियान्वयन और निराधार विफलता की आलोचना करना जारी रखना चाहते हैं या अपनी ग़लतियों से सीखकर इसे अपने स्कूलों में एक वास्तविकता बनाना चाहते हैं।

आँचल चौमल पिछले 12 वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के साथ हैं। वे अज़ीम प्रेमजी स्कूल ऑफ़ कंटिन्यूइंग एजुकेशन एंड यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर में इंस्टीट्यूट ऑफ़ अस्समेंट एंड एक्रेडियेश्न की प्रमुख हैं। वे विद्यार्थियों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों और शैक्षिक संस्थानों के आकलन के लिए रूपरेखाएँ, उपकरण, प्रक्रियाएँ और परिप्रेक्ष्य विकसित करती हैं। वे भारत के विभिन्न राज्यों में आकलन और मूल्यांकन पर क्षमता निर्माण कार्यक्रम आयोजित करती हैं। उन्होंने क्षेत्रीय विकास अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय से भूगोल में स्नातकोत्तर की उपाधि और कलकत्ता के प्रेसीडेंसी कॉलेज से भूगोल में स्नातक की उपाधि प्राप्त की है। उनसे *aanchal@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

शिक्षा में आईसीटी : स्कूलों में सार्थक एकीकरण के संकेतक

अमीना चरनिया



भारतीय स्कूली शिक्षा में सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की यात्रा भारत की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के माध्यम से 1984-1986 में शुरू हुई। फिर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए स्कूली शिक्षा में प्रौद्योगिकी शामिल करने की आवश्यकता पर ज़ोर देते हुए 1992 में इसमें संशोधन किया गया। इस नीति के कारण 2004 में आईसीटी और शिक्षा के लिए दो केन्द्रीय योजनाएँ बनीं। इसे भी 2010 में संशोधित किया गया और इसमें मुख्य रूप से कम्प्यूटर साक्षरता और कम्प्यूटर की सहायता से अधिगम (कम्प्यूटर एडेड लर्निंग) पर ध्यान केन्द्रित किया गया। 2012 में स्कूली शिक्षा में आईसीटी की नीति अस्तित्व में आई। इसका लक्ष्य था आईसीटी और आईसीटी-सक्षम गतिविधियों और प्रक्रियाओं को विकसित करना, बढ़ाना, समर्थन करना और बनाए रखना जिससे कि स्कूल तंत्र में पहुँच, गुणवत्ता और दक्षता में सुधार हो सके।

समय के साथ शिक्षा योजनाओं और नीति में आईसीटी को प्रमुखता मिलने लगी और इसका अर्थ केवल कम्प्यूटर साक्षरता तक सीमित नहीं रहा। अब यह कोशिश की जाने लगी कि आईसीटी को स्कूल में पढ़ाए जाने वाले विषयों से जोड़ा जाए ताकि अधिगम में सुधार हो सके। जबकि वस्तुस्थिति यह है कि गुणवत्तापूर्ण अधिगम के साथ आईसीटी के उपयोग, उसकी भूमिका और उसका सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है। पूरे विश्व में सम्बन्ध की यह अस्पष्टता देखी जा सकती है। ओईसीडी रिपोर्ट (2015) ने कक्षा में अधिगम को प्रभावित करने में आईसीटी के महत्त्व को चुनौती दी। इन्फोडेव (2010) ने बताया कि हालाँकि भारत और अन्य दक्षिण एशियाई देशों में स्कूलों में आईसीटी के उपकरणों और साधनों को काम में लेने में रुचि अधिक है, लेकिन वास्तव में इसका प्रयोग कम है।

भारत के सरकारी स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं की चुनौती बहुत बड़ी है : बिजली आपूर्ति और कनेक्टिविटी की अनियमित उपलब्धता के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में आईसीटी का उपयोग और बदतर हो जाता है। यही नहीं, केवल बुनियादी सुविधाएँ और कनेक्टिविटी इसके उपयोग को सुनिश्चित नहीं करती। अन्दरूनी ग्रामीण इलाकों में मोबाइल फ़ोन की पहुँच बहुत अधिक है, लेकिन स्कूलों में उनका उपयोग अस्वीकार्य है।

दूसरी तरफ़, जिन स्कूलों में पर्याप्त बुनियादी सुविधाएँ हैं, वे विद्यालयी विषयों के अधिगम में सुधार लाने के लिए आईसीटी का उपयोग नहीं करते हैं। 2011-2013 में मैंने लगभग आठ राज्यों का व्यापक दौरा किया और यह पाया कि सरकारी और सहायता प्राप्त स्कूलों ने मुख्य रूप से कम्प्यूटर प्रयोगशालाओं में डिजिटल साक्षरता या कम्प्यूटर विज्ञान की कक्षाओं के लिए आईसीटी का उपयोग किया और या फिर किसी ग़ैर सरकारी संगठन (एनजीओ) द्वारा संचालित हस्तक्षेप के लिए सीडी, डीवीडी, सर्वर-बॉक्स आधारित कम्प्यूटर एडेड लर्निंग के लिए आईसीटी का उपयोग किया। कुछ राज्यों ने बाहरी विशेषज्ञों द्वारा ऑडियो और वीडियो आधारित पाठ आयोजित करने के लिए रेडियो और उपग्रह कनेक्शन का उपयोग भी किया। इस तरह से कई अर्द्ध-शहरी और कनेक्टेड ग्रामीण क्षेत्रों में आईसीटी का उपयोग डिजिटल साक्षरता तक सीमित न रहकर एक साधन के माध्यम से कम्प्यूटर एडेड लर्निंग (सीएएल) और ऑडियो-विज़ुअल अधिगम तक बढ़ गया। सीएएल को अधिकतर एनजीओ के सुगमकर्ताओं या कम्प्यूटर प्रशिक्षकों द्वारा चलाया जाता था और आज भी इसे प्राथमिक विद्यालय स्तर पर गणित और भाषाओं में बुनियादी शिक्षा कौशल को मज़बूत करने और माध्यमिक विद्यालय स्तर पर डीवीडी और सीडी आधारित सामग्री के माध्यम से उपचारात्मक अधिगम के रूप में देखा जाता है।

मैंने यह देखा है कि 2014 के बाद से स्मार्ट कक्षाओं के रूप में आईसीटी का प्रयोग कक्षाओं में अधिक हो रहा है, जिसमें विक्रेताओं द्वारा कक्षा में शिक्षकों के उपयोग के लिए तैयार मल्टीमीडिया और पाठ योजनाएँ वितरित की जाती हैं। इन्हें पाठ्यपुस्तक के अध्यायों के साथ मैप किया जाता है और जिनका उद्देश्य शिक्षकों को मीडिया समृद्ध संसाधनों के साथ अध्यापन करने में सहायता देना है। कक्षा के उपयोग के लिए तैयार और पैक की गई इस प्रकार की शिक्षक केन्द्रित सामग्री के वितरण को कभी-कभी 'स्मार्ट क्लासरूम' की संज्ञा भी दी जाती है। यहाँ मुझे स्कूलों में आईसीटी के उपयोग के कार्यक्रमों के बीच एक स्पष्ट विरोधाभास नज़र आता है- एक तरफ तो कम्प्यूटर प्रयोगशालाएँ हैं जहाँ आईसीटी के साधन विद्यार्थियों के हाथों में हैं, लेकिन प्रयोगशालाओं की गतिविधियाँ मुख्यधारा के विषयों के साथ जुड़ी हुई नहीं हैं।

दूसरी तरफ कक्षा एक ऐसा स्थान है जहाँ आईसीटी के साधन शिक्षक के हाथों में हैं न कि विद्यार्थियों के हाथों में, और यही वह जगह है जहाँ साधन मुख्यधारा के विषयों से सम्बन्धित सामग्री प्रदान करते हैं। ऐसा लगता है कि विषय के शिक्षकों और कम्प्यूटर के शिक्षकों ने अपने-अपने अधिकार क्षेत्र तय कर लिए हैं और वे स्थान, भूमिका और विशेषज्ञता की इन सीमाओं को पार करना ही नहीं चाहते।

हालाँकि कर्नाटक ओपन एजुकेशन रिसोर्सेज (केओईआर) बहुत पहले (2013 में) शुरू हो गया था, जहाँ विषय-शिक्षक, मुख्य रूप से गणित और विज्ञान के शिक्षक, शिक्षण संसाधनों को बनाते और अपलोड करते हैं, ओईआर हाल ही में राज्यों के सरकारी स्कूलों में एक नया और चर्चित शब्द बन गया है, निशुल्क लेकिन जो अनिवार्य रूप से सार्वजनिक नहीं है। (कोई भी कानूनी और स्वतंत्र रूप से प्रतिलिपि बना सकता है, उपयोग कर सकता है, अनुकूलित कर सकता है और उन्हें फिर से साझा कर सकता है, यूनेस्को) कई वीडियो-आधारित ट्यूटोरियल तेज़ी से बढ़ते जा रहे हैं जो डिजिटल मीडिया की शक्ति के माध्यम से अवधारणात्मक समझ में सुधार करने में योगदान देने का दावा करते हैं और सम्भवतः ट्यूशन कक्षाओं की जगह लेते जा रहे हैं।

ई-पाठशाला और राष्ट्रीय शिक्षक मंच जैसे राष्ट्रीय मंच तथा ओईआर हेतु शिक्षकों के लिए आयोजित की जाने वाली कार्यशालाएँ तेज़ी से लोकप्रिय हो गई हैं। ओईआर के विभिन्न रूप व्यापक श्रेणी पर चलते हैं और क्विज़ जैसे प्रश्नों (निचले स्तर के अधिगम लक्ष्य) के साथ बेहतर तरीक़े से याद रखने और समझने के लिए ट्यूटोरियल की तरह के वीडियो पेश करने से भिन्न हो सकते हैं। वे कभी-कभी उच्च स्तरीय चिन्तन कौशल भी प्रदान करते हैं और यदा-कदा विद्यार्थियों को बढ़ावा देने के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं। एक अच्छा उदाहरण है प्रथम बुक्स का स्टोरीवीवर, जहाँ बच्चे अपनी स्थानीय भाषा और सन्दर्भ में डिजिटल कहानियाँ पढ़ सकते हैं और इसी तरह क्रिएटिव कॉमन लाइसेंस विद्यार्थियों, शिक्षकों और शिक्षा विशारदों को अपनी स्थानीय भाषा/बोली और परिवेश में कहानियों को प्रासंगिक रूप देने या पुनः लिखने की अनुमति देता है। डिजिटल प्लेटफार्म स्थानीय सन्दर्भ और सुलभ व लचीली भाषा में उच्च गुणवत्ता वाली भाषा सामग्री को जोड़ने का प्रयास करता है।

ओईआर का एक और अच्छा उदाहरण कनेक्टेड लर्निंग इनिशिएटिव (सीएलआईएक्स या क्लिक्स) है जिसके साथ मैं काफ़ी निकटता से जुड़ी हुई हूँ। यह उच्चतर विद्यालय के विद्यार्थियों के लिए विज्ञान, गणित और अँग्रेज़ी में उच्च स्तरीय चिन्तन के कौशल के लिए अकादमिक सन्दर्भ के भीतर डिज़ाइन किया गया है। यहाँ बनाए गए ओपन एजुकेशनल रिसोर्सेज विद्यार्थियों के भीतर सहयोग बढ़ाने के तीन शैक्षणिक स्तम्भों पर आधारित हैं, जिससे विद्यार्थियों को अपनी ग़लतियों से सीखने का मौका मिलता है और जो प्रामाणिक अधिगम को बढ़ावा देते हैं। क्लिक्स विद्यार्थी ओईआर का एक उदाहरण है पुलिस क्वाड नामक एक खेल, जो ज्यामितीय तर्क पर व्यवहारिक ज्ञान निर्माण प्रदान करता है। इसमें विद्यार्थी पुलिस की भूमिका निभाते हैं और 'चोर' को खोजने का प्रयास करते हैं जो एक आकृति है। पुलिस को ज्यामितीय गुणधर्मों का उपयोग करके 'संदिग्ध' को ख़त्म करना होता है और 'चोर' की पहचान करनी होती है। विकल्प चुनने से पहले प्रत्येक आकृति के गुणधर्मों को समझने के लिए सहायता प्रदान की जाती है। विद्यार्थी प्रयत्न-त्रुटि विधि से सीखते हैं और धीरे-धीरे अवधारणाओं और आकृतियों के गुणों के बारे में अपनी समझ का निर्माण करना शुरू करते हैं।

अँग्रेज़ी संसाधन संवादात्मक अँग्रेज़ी के लिए कहानी-आधारित अधिगम पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। स्थानीय संस्कृति के अनुरूप प्रसंगानुकूलित ये कहानियाँ विद्यार्थियों को सुनकर समझने, बोलने और तब तक अपनी आवाज़ रिकॉर्ड करने का अवसर देती हैं जब तक कि वे अपनी इन ऑडियो रचनाओं से संतुष्ट न हो जाएँ। इसके अलावा मॉड्यूल में ओपन स्टोरी टूल भी है जिसकी सहायता से वे गैलरी से चित्रों को चुनकर अपनी आवाज़ रिकॉर्ड करके कहानी की रचना कर सकते हैं।

क्लिक्स के सभी विद्यार्थी मॉड्यूल में टेक्नॉलाजी विद्यार्थियों के हाथों में होती है और वे सीधे इसके साथ जुड़े होते हैं, कुशलतापूर्वक इसका प्रयोग करते हैं और अधिगम के अनुभवों का पुनर्निर्माण करते हैं। इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका यह है कि वे इन अनुभवों को सुगम बनाएँ और यह निर्णय लें कि उन्हें अपने पाठों में क्लिक्स के संसाधनों या इसके कुछ हिस्सों को कब और कैसे एकीकृत करना है। इसका उद्देश्य यह नहीं है कि पाठ्यपुस्तक के प्रत्येक अध्याय के लिए ओईआर बनाया जाए, बल्कि यह है कि कुछ मॉड्यूलर उदाहरण दिए जाएँ और शिक्षकों को इस योग्य बनाया जाए कि वे अन्य स्थानों में उपलब्ध ओईआर का उपयोग कर सकें।

क्लिक्स चार राज्यों के लगभग 478 सरकारी स्कूलों में लगभग 33,000 विद्यार्थियों और 2500 शिक्षकों के साथ काम करता है। इसके मॉड्यूल एमआईटी (यूएसए) के डिज़ाइन इनपुट के साथ टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज (टीआईएसएस) के संकाय और कर्मचारियों, राज्य के पाठ्यक्रम विशेषज्ञों और शिक्षकों द्वारा डिज़ाइन किए गए हैं। इस कार्यक्रम को टीआईएसएस की टीमों की मदद के साथ राज्य सरकार के विभागों या स्थानीय संगठनों या राज्य के विश्वविद्यालयों द्वारा लागू किया जाता है।

इस हस्तक्षेप के कार्यान्वयन और स्थायित्व के लिए शिक्षकों की क्षमता निर्माण एक महत्त्वपूर्ण घटक है और अब इसे आईसीटी के साथ चिन्तनशील शिक्षण में 17 क्रेडिट प्रमाणपत्र कार्यक्रम के रूप में पेश किया जाता है। यह पेशकश एक मिश्रित प्रणाली में है, जहाँ ऑनलाइन अन्तःक्रिया, अभ्यास-आधारित प्रदत्त कार्य और एफ2एफ मीट-अप और कार्यशालाएँ अध्यापन का हिस्सा हैं। प्रशिक्षण के संचालन और उसमें भाग लेने वाले शिक्षकों के लिए यात्रा-भत्ते और महँगाई-भत्ते का खर्चा राज्य सरकार उठाती है। क्लिक्स के सामने जो प्रमुख चुनौतियाँ हैं वे इस प्रकार हैं- प्रयोगशालाएँ तैयार करवाना और क्लिक्स की विषय-सामग्री के प्रयोग के लिए उन्हें क्रियाशील रखना, प्रौद्योगिकी प्लेटफार्मों को लगातार अनुकूलित करना, मॉड्यूल को प्रसंगानुकूल बनाना और सभी विविध राज्यों के लिए प्रमाणन। पाठ्यक्रमों को पूरा करने के लिए दूरस्थ प्रणाली में कार्यशालाओं से परे शिक्षकों की रुचि को बनाए रखने के लिए प्रसारण को तीन भाषाओं तक सीमित रखा गया है।

टाटा ट्रस्ट में 2012 में मुझे एक और कार्यक्रम को शुरू करने का अवसर मिला, जो था शिक्षा में प्रौद्योगिकी का एकीकृत दृष्टिकोण (इंटीग्रेटेड अप्रोच टु टेक्नॉलॉजी इन एजुकेशन या आईटीई)। ओईआर और सीएएल की तुलना में आईटीई इस अर्थ में भिन्न है कि यह विद्यार्थियों द्वारा अधिगम की कृतियाँ बनाने और शिक्षकों द्वारा स्वयं आईसीटी को एकीकृत करने वाली अधिगम की गतिविधियों को डिज़ाइन करने पर केन्द्रित है। इस प्रकार यहाँ पर शिक्षक खुद यह निर्णय लेते हैं कि आईसीटी का अनुप्रयोग कैसे हो, विद्यार्थी कैसे रचनात्मक रूप से अधिगम की कृतियों की रचना करेंगे और वे अपने शिक्षण में ओईआर के अनुप्रयोगों और अन्य आईसीटी उपकरणों को कब और कैसे एकीकृत करेंगे। इस प्रकार इस हस्तक्षेप की केन्द्रीय अध्यापन विधि यह है कि पाठ्यपुस्तकों की अवधारणाओं के आधार पर शिक्षक डिज़ाइन बनाते हैं और विद्यार्थी अधिगम की कृतियों की रचना करते हैं। इस दृष्टिकोण को उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए डिज़ाइन किया गया था जिसमें मुख्य रूप से अन्दरूनी ग्रामीण जनजातीय क्षेत्रों, झोपड़पट्टी और ग्रामीण क्षेत्रों में मुस्लिम अल्पसंख्यक समुदायों सहित सबसे अधिक हाशिए वाले वर्गों को लक्षित किया गया। जो स्थान चुने गए उनमें समुदाय शिक्षण केन्द्र, सरकारी स्कूल और मदरसे हैं। विद्यार्थी आईसीटी उपकरणों और अनुप्रयोगों का उपयोग जानकारी पाने के लिए, अपने अधिगम का निर्माण और उसे व्यवस्थित करने के लिए और कम्प्यूटर अनुप्रयोगों के माध्यम से इसका निरूपण करने के लिए करते हैं। यह परियोजना आधारित अधिगम उन्हें स्थानीय सन्दर्भ में सीखने और अनुकूलित करने की अनुमति देता है। विद्यार्थियों द्वारा की गई रचना के कुछ उदाहरण हैं – मौसम और जलवायु के पाठ के गहन और सम्बद्ध अधिगम के लिए एक स्प्रेडशीट के रूप में मौसम चार्ट का निर्माण, पर्यावरण विज्ञान में ध्वनि प्रदूषण पर एक वीडियो जिसमें विद्यार्थियों ने अपने पर्यावरण से ध्वनि प्रदूषण के क्लिप एकत्र किए, पर्यावरण से एकत्र की गई ध्वनि तरंगों को मापने के लिए *ऑडैसिटी* एप्लिकेशन का उपयोग करके निर्मित चार्ट, एक आहार चार्ट जिसमें अपने सहपाठियों के कैलोरी सेवन और बीएमआई के साथ उसके सम्बन्ध की तुलना की गई, *स्क्रैच* एप्लिकेशन का उपयोग करके सड़क पार करने और ऐसे ही कई अन्य प्रासंगिक विषयों पर खेल का निर्माण आदि। यह तरीक़ा पिछले कुछ वर्षों में लोकप्रिय हो गया है क्योंकि इसमें विद्यार्थियों को पाठ्यपुस्तक में वर्णित विषय की अवधारणाओं के साथ गहराई से जुड़ने के लिए मज़ेदार और दिलचस्प अवसर मिलते हैं, साथ ही इसमें रचनात्मकता, स्थानीय सन्दर्भ और भाषा की अभिव्यक्ति को भी पर्याप्त अवसर मिलते हैं। जनजातीय क्षेत्र के विद्यार्थी भी स्थानीय बोली का उपयोग करते हैं और राज्य भाषा के साथ एकीकृत करते हैं। चूँकि कोई बनी बनाई विषय-सामग्री प्रदान नहीं की जाती है, इसलिए शिक्षकों को पाठ तैयार करने, अन्य वेब संसाधनों का उपयोग करने और इस बात का निर्णय लेने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं कि विद्यार्थी किन परियोजनाओं व अधिगम कृतियों को बनाएँ और कैसे बनाएँ।

हालाँकि प्रारम्भिक वर्षों में अधिगम केन्द्रों और निजी मदरसों में शुरुआत हुई, लेकिन अब ये स्थान पड़ोसी सरकारी स्कूलों के लिए उत्कृष्ट स्थान बन गए हैं जहाँ इस हस्तक्षेप को बढ़ाया गया है। यह विस्तार स्थानीय ग़ैर-सरकारी संगठनों, राज्य व जिला शिक्षा प्रशासन, टाटा ट्रस्ट और टीआईएसएस कार्यक्रम और संसाधन टीम के बीच बहु-हितधारकों की साझेदारी का परिणाम है। आईटीई आठ राज्यों, लगभग 29000 विद्यार्थियों, लगभग 600 सरकारी स्कूलों और 1500 सरकारी शिक्षकों तक पहुँचता है।

आईटीई में शिक्षक पेशेवर विकास महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह हस्तक्षेप आईसीटी की गतिविधि तैयार करने और विद्यार्थियों को अधिगम की कृतियाँ बनाने में सुविधा प्रदान करने के लिए शिक्षकों की क्षमता पर निर्भर करता है। सेंटर फॉर एजुकेशन इनोवेशन एंड एक्शन रिसर्च में स्थित आईटीई शिक्षक क्षमता निर्माण कार्यक्रम आईसीटी और शिक्षा में चार क्रेडिट प्रमाणपत्र कोर्स भी प्रदान करता है। चूँकि यह एक स्वचलित कोर्स है, इसलिए इसे पूरा करने की दर 90 प्रतिशत तक है। यहाँ शिक्षक आईटीई पाठ योजनाओं के अभ्यास और कार्यान्वयन, आईसीटी और शिक्षा में समकालीन साहित्य पर ऑनलाइन प्रश्नोत्तरी या क्विज़ और ऑनलाइन प्लेटफ़ॉर्म का उपयोग करके अभ्यास समूहों के समुदाय में भागीदारी के माध्यम से सीखते हैं, और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात है खण्ड या ब्लॉक स्तर पर आईटीई की पद्धति के अनुसार पन्द्रह और

शिक्षकों का अभिमुखीकरण करना। आईटीई के सामने कुछ बड़ी चुनौतियाँ इस प्रकार हैं : स्कूलों में बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच और उपयोग, ज़िलों और राज्यों के साथ ब्लॉक स्तर पर प्रशिक्षण का आयोजन करना, प्रमाण पत्र कोर्स के बाद अनुवर्ती प्रशिक्षण आयोजित करने के लिए राज्यों को तैयार करना, विद्यार्थियों की अधिगम-कृतियों के बढ़ते डेटाबेस को सुव्यवस्थित करना।

क्लिक्स का हिस्सा होने और आईटीई की शुरुआत और नेतृत्व करने के अलावा आईसीटी में अकादमिक कार्यक्रमों और विभिन्न ज्ञान समूहों के सम्पर्क में आने से इस क्षेत्र के बारे में मेरी समझ को एक आकार मिला है। इंचन घोषणा में शिक्षा 2030 लक्ष्यों के बारे में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शिक्षा प्रणाली, ज्ञान प्रसार, जानकारी प्राप्ति, गुणवत्ता और प्रभावी अधिगम के साथ और अधिक प्रभावी सेवा प्रावधान को मज़बूत करने के लिए सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (आईसीटी) का उपयोग किया जाना चाहिए। शिक्षा और आईसीटी में विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय रूपरेखाओं जैसे 21 वीं शताब्दी के कौशल के लिए रूपरेखाओं की तुलना करना (डेडे, 2010), आईएसटीई (2016), टीपीएसीके (कोहलर एंड मिश्रा, 2008), एनसीएफ (2005), और आईसीटी नीति (2012) में यह बात दोहराई गई है कि आईसीटी का प्रयोग प्रभावी रूप से किया जाना चाहिए ताकि शिक्षण-अधिगम गहन, प्रामाणिक और प्रासंगिक बन सके।

यद्यपि भारत में आईसीटी के माध्यम से अधिगम में हुए सुधार को मापने की कोई मानक रूपरेखा नहीं है, लेकिन एक संगत सवाल यह है कि आईसीटी किस प्रकार का अधिगम प्रदान कर सकता है? आईसीटी और शिक्षा पर टीआईएसएस के मास्टर्स कोर्स में, विद्यार्थियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विभिन्न प्रकार का साहित्य पढ़ें तथा व्यावहारिक अभ्यास का अवलोकन करें। साथ ही आईसीटी अभ्यास का आकलन करने के लिए एक रूपरेखा विकसित करें। रूपरेखा के केन्द्रीय कारक सीखने पर ज़ोर देते हैं, जबकि अन्य कारक अभिग्रहण डिज़ाइन, डिजिटल इक्विटी (सबके लिए डिजिटल साधनों की समान पहुँच और अवसर) और बुनियादी सुविधाओं की जवाबदेही के बारे में बात करते हैं। आईसीटी से बहुत उम्मीद की जा रही है, और यह भी सही है कि भारत में हम विद्यार्थियों के अधिगम के सुधार पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं। हालाँकि प्राप्त परिणाम प्रायः शिक्षकों, स्कूल के वातावरण और नेतृत्व, पाठ्यक्रम, घर के वातावरण, स्कूली शिक्षा प्रणाली और नीतियों सहित अनेक कारकों से प्रभावित होने के कारण परिवर्तनशील होता है।

मेरी समझ के अनुसार यहाँ प्रश्नों और चर्चाओं के रूप में कुछ मानदण्ड दिए गए हैं जिनका उपयोग भारत में सरकारी स्कूलों में आईसीटी के हस्तक्षेप को समझने या उसका आकलन करने के लिए संकेतक या रूपरेखा के रूप में किया जा सकता है। इन्हें अधिगम डिज़ाइन और प्रणालीगत अभिग्रहण के तहत वर्गीकृत किया गया है।

अधिगम डिज़ाइन

अधिगम का प्रकार : क्या आईसीटी की सहायता से सीखना विषय-सामग्री को याद रखने और उपचारात्मक अभ्यास की ओर लक्षित या सीमित है? या क्या यह विषय को गहराई के साथ सीखने, उच्च अभिकलनात्मक सोच, प्रामाणिक अधिगम (अधिगम को व्यक्तिगत या वास्तविक जीवन के लिए प्रासंगिक बनाना या वैश्विक जुड़ाव और संचार हेतु उच्च क्षमता के लिए सम्बद्ध अधिगम आवश्यक है?) की ओर लक्षित है?

शिक्षक की भूमिका : क्या शिक्षक की भूमिका किसी बाहरी एजेंसी द्वारा तैयार और पैक की गई विषय-सामग्री को वितरित करने पर केन्द्रित है? या क्या शिक्षक विषय-सामग्री, मीडिया और अध्यापन के डिज़ाइन में शामिल हैं? क्या शिक्षक आईसीटी के उपयोग और विषय की सम्बद्धता और शिक्षाशास्त्र पर निर्णय लेने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं? या क्या यह ऐसा डिजिटल हस्तक्षेप है जो अपने प्रतिपादन को निर्धारित करता है?

विद्यार्थी की भूमिका : क्या विद्यार्थी केवल डिजिटल सामग्री के प्राप्तकर्ता हैं? क्या तकनीक उनके हाथों में है और क्या वे सक्रिय रूप से इसमें शामिल हैं? क्या वे केवल डिजिटल मीडिया और सामग्री के प्रति अनुक्रिया कर रहे हैं या अपनी खुद की अधिगम-सामग्री बना रहे हैं?

मुक्त : क्या आईसीटी साधन और संसाधन सुलभ, निशुल्क व मुक्त एवं अनुकूलन के लिए स्वतंत्र हैं और क्या उन्हें पुनरूपयोग में लाया जा सकता है? यद्यपि अधिकांश वीडियो-आधारित ओईआर सुलभ हैं, लेकिन हो सकता है कि वे उपयोगकर्ताओं को अनुकूलन, परिवर्तन और पुनरूपयोग की अनुमति न देते हों। यह स्थिति तब और महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब संसाधनों को स्थानीय भाषाओं और सन्दर्भ में अनुकूलित करने की आवश्यकता होती है। इसके अलावा अगर हस्तक्षेप के लिए तीव्र गति वाले इंटरनेट और अन्य उपकरणों की आवश्यकता हो और कम पहुँच वाले उपयोगकर्ताओं के लिए कोई विकल्प उपलब्ध न कराया जाए तो डिजिटल संसाधन अधिगम और अवसरों के बीच की खाई को और बढ़ा देते हैं।

प्रासंगिक : क्या आईसीटी हस्तक्षेप में स्थानीय सन्दर्भ का ध्यान रखा गया है और उसे तदनुसार अनुकूलित किया गया है? जैसे स्थानीय भाषा का उपयोग, स्थानीय संस्कृति और उसके संसाधनों को दर्शाना, विद्यार्थियों को स्थानीय संस्कृति

को व्यक्त करने की अनुमति देना और अवधारणाओं से जुड़ने में मदद करना ताकि विद्यार्थी अपने स्वयं के अर्थ और ज्ञान का निर्माण कर सकें।

मेरा मानना है कि देश में आईसीटी नवाचारों की कोई कमी नहीं है लेकिन वास्तव में नवाचार वह है जो लक्षित दर्शकों के लिए कारगर हो, बड़े पैमाने पर लागू करने पर भी प्रभावी साबित होता हो और इसमें प्रणालीगत और टिकाऊ परिवर्तन की सम्भावना हो। इनमें से कुछ नवाचार अपने डिज़ाइन में स्थित हैं, तो कुछ कार्यान्वयन की रणनीतियों जैसे बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच, सहयोग की प्रकृति, शिक्षक-पेशेवर विकास और प्रणालीगत ताने-बाने के भीतर हस्तक्षेप लागू करने में। अन्यथा अगर ब्लैकबोर्ड से स्मार्टबोर्ड तक, प्रिंट से डिजिटल विषय-सामग्री तक आईसीटी के साधन या हस्तक्षेप शिक्षण और अधिगम के तरीक़ों को बदल नहीं सकते या जहाँ शिक्षक या आईसीटी अभी भी ऊँचे आसन पर बैठे हुए ज्ञानी महात्मा माने जाते हैं तो यह हर तरह से संसाधनों और प्रयासों की बर्बादी है।

प्रणालीगत अभिग्रहण (Systemic Adoption)

बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच : इसका अर्थ विद्यार्थी और कम्प्यूटर का 1:1 का आदर्श अनुपात नहीं है, लेकिन एक ऐसी स्थिति है जो आईसीटी की बुनियादी सुविधाओं के साथ सार्थक जुड़ाव को बढ़ावा देती हो। आईसीटी हस्तक्षेप को कारगर बनाने और अपने उपयोगकर्ताओं को अधिगम में ध्यान केन्द्रित रखने हेतु प्रेरित करने के लिए उपकरणों, बिजली और इंटरनेट कनेक्टिविटी जैसी पर्याप्त बुनियादी सुविधाओं तक पहुँच ज़रूरी है। इस प्रकार प्रणाली को उन मॉडलों को मज़बूत करना होगा जिन्होंने इस बुनियादी सुविधा की खाई को पाटने के लिए जानकारी प्राप्त करके सही निर्णय लिए हैं। बाहरी विक्रेताओं से सेवाएँ प्राप्त करने से अतीत में समस्याएँ पैदा हुई हैं, जहाँ विक्रेताओं ने स्कूल के भीतर अपनी अलग जगह बना ली थी ताकि पहुँच और उपयोग पर एकतरफा निर्णय लिया जा सके। इन योजनाओं और सेवाओं के वितरण की सावधानीपूर्वक जाँच की जानी चाहिए।

सहयोग की प्रकृति : सरकारी स्कूलों की शिक्षा में आईसीटी के सार्थक एकीकरण के लिए सार्वजनिक-निजी साझेदारी महत्त्वपूर्ण है। साथ ही सरकारी स्कूलों में निजी साझेदारी के हितों और योगदानों का मूल्यांकन करने की भी आवश्यकता है जिसे अधिगम के डिज़ाइन के तहत ऊपर चर्चित संकेतकों के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। नागरिक समाज सभी हितधारकों को एक साथ लाने और ज़मीनी स्तर पर सामूहिक रूप से आईसीटी हस्तक्षेप को लागू करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। लेकिन इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि हस्तक्षेप उन परियोजनाओं के जैसे बनकर न रह जाएँ जो वित्तीय सहायता के साथ आते-जाते रहते हैं। एक तरीक़ा यह हो सकता है कि प्रणालीगत और टिकाऊ जुड़ाव के लिए सेवाकालीन और सेवा-पूर्व शिक्षक पेशेवर विकास के अन्तर्गत हस्तक्षेप के लिए अकादमिक सहयोग की तलाश की जाए।

शिक्षक पेशेवर विकास : आईसीटी प्रशिक्षण सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास का हिस्सा हैं। ये या तो डिजिटल साक्षरता पर केन्द्रित होते हैं या किसी विशेष उपकरण, हस्तक्षेप या स्कूलों के स्तरित मंच के लिए बहुत विशिष्ट होते हैं। यहाँ अकादमिक संस्थानों के साथ सम्बद्ध होना अच्छा रहेगा क्योंकि शिक्षा में आईसीटी को किसी विशेष हस्तक्षेप या उपकरण से परे जाना है। आईटीई और क्लिक्स दोनों ने सेवाकालीन शिक्षक पेशेवर विकास के लिए प्रमाणन (सर्टिफिकेशन) का मार्ग अपनाया है। सर्टीफिकेट कोर्स का लक्ष्य शिक्षकों में आईसीटी के अनुप्रयोगों और संसाधनों का चयन, उपयोग और मूल्यांकन करने के लिए महत्त्वपूर्ण समझ और क्षमता विकसित करना है जो अधिगम के अनुभवों को बढ़ाते हैं और पाठ्यक्रम के लक्ष्यों को पुष्ट करते हैं। प्रमाणन के द्वारा अधिगम के मिश्रित तरीक़ों (एफ2एफ, अभ्यास और ऑनलाइन प्लेटफॉर्म) के माध्यम से निरन्तर व्यावसायिक विकास में शामिल होने का अवसर मिलता है और शिक्षकों के अभ्यास समूहों के बड़े और टिकाऊ समुदाय को विकसित करता है।

अन्त में, कोई भी हस्तक्षेप जो मौजूदा प्रणाली में खुद को एकीकृत करने में विफल हो तो वह समुद्र में सिर्फ छींटा मारने जैसा है। उदाहरण के लिए प्रणालीगत एकीकरण इन बातों को इंगित करेगा – कक्षा के विषयों में आईसीटी के हस्तक्षेप की जगह तय करना, मौजूदा बुनियादी सुविधाओं को बनाए रखने और प्रयोगशाला के रखरखाव के लिए स्कूल के स्टाफ को सक्षम करना, स्कूल के मुख्याध्यापकों का अभिमुखीकरण करना तथा उनके साथ निगरानी की ज़िम्मेदारी व साधनों को साझा करना और प्रणाली के भीतर हस्तक्षेप को एकीकृत करने के लिए आकलन के आवंटन और पाठ्यचर्या के समायोजन की व्यवस्था करना। अन्तिम कार्य सबसे कठिन है। उदाहरण के लिए आईटीई परियोजना के लिए 9वीं और 10वीं कक्षा में व्यावहारिक परीक्षाओं के लिए 20 अंकों की व्यवस्था करना मुश्किल है क्योंकि राज्य के सभी स्कूल आईटीई का उपयोग नहीं करते। पाठ्यचर्या की पाठ्यपुस्तकों द्वारा वैकल्पिक गतिविधियों के रूप में क्लिक्स, ओईआर या आईटीई परियोजनाओं का उपयोग करना एक बहुत बड़ा परिवर्तन होगा लेकिन प्रणाली में शैक्षणिक परिवर्तन को बनाए रखने के लिए उपयोगी होगा।

References:

1 Charania, A. & Davis, N. (July 2016). A Smart Partnership: Integrating Educational Technology for Underserved Children in India. Journal of Educational technology and Society.

2 Charania, A. An integrated approach to technology in K-12 classrooms. National seminar on information communication technology in education, department of education, NEHU, Shillong. (2011).

3 Charania, A., Stump, G. & Ramanathan, A. (2017). Using SAM for designing a blended learning experience with ICT for government teachers. Transforming Education for Humanity (Tech 2017), Vizag

4 Connected Learning Initiative. Retrieved 2018 from clix.tiss.edu

5 Dede, C. (2010). Comparing Frameworks for 21st Century skills. 21st Century skills: Rethinking how students learn. Edited by, James Bellanca, Ron Brandt.

6 ISTE standards. Retrieved 2018 from http://www.iste.org/standards/iste-standards

7 Koehler, M. J., & Mishra, P. (2008). Introducing TPACK. In AACTE Committee on Innovation & Technology (Eds.), Handbook of technological pedagogical content knowledge for educators (pp. 3–29). New York: Routledge.
Karnataka Education. Retrieved from http://karnatakaeducation.org.in/

8 MHRD National Curriculum Framework: Curricula for ICT in Education (2012). Retrieved 2016 from http://www.ncert.nic.in/announcements/notices/pdf_files/ICT%20Curriculuma.pdf

9 National Policy on Information and Communication Technology (ICT) In School Education. Retrieved 2018 from http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/upload_document/revised_policy%20document%20ofICT.pdf

10 New approach needed to deliver on technology's potential in schools. OECD. http://www.oecd.org/education/new-approach-needed-to-deliver-on-technologys-potential-in-schools.htm

अमीना चरनिया टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज (टीआईएसएस), मुम्बई में सेंटर फॉर एजुकेशन इनोवेशन एंड एक्शन रिसर्च में एसोसिएट प्रोफ़ेसर हैं। वे टीआईएसएस में कनेक्टेड लर्निंग इनिशिएटिव से जुड़ी हुई हैं और उन्होंने टाटा ट्रस्ट में शिक्षा में प्रौद्योगिकी के लिए एकीकृत दृष्टिकोण की स्थापना की है। उनसे *amina.charania@tiss.edu* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

नीति से अभ्यास तक : एक कहानी उत्तराखण्ड से

अनन्त गंगोला और कैलाश चन्द्र काण्डपाल



आज हमारी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की बिगड़ती हुई हालत के बारे में हर जगह चर्चा होती ही रहती है और वह भी गहराई से विश्लेषण किए बिना। शिक्षा की स्थिति हर किसी को प्रभावित करती है अतः हर कोई इसके बारे में अपनी कोई-न-कोई राय रखता है। हमारे निर्णय अक्सर सतही होते हैं और हम इस बात पर ध्यान नहीं देते कि कक्षा से लगाकर शैक्षिक नीतियों तक हमारी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली कितनी जटिल है।

इस प्रणाली के एक छोर पर कक्षा है, जो एक ऐसा स्थान है जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी अपने साथ कई विविधताएँ लाता है जैसे अपनी सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि, अपना भावनात्मक और बौद्धिक स्वभाव, सीखने की अनुक्रिया और विभिन्न प्रकार की रुचियाँ, क्षमताएँ और सीमाएँ। यदि हम देश की शिक्षा प्रणाली पर विचार करें तो पाएँगे कि इसकी जटिलताएँ अति विशाल हैं जैसे राज्य और केन्द्रीय स्तर पर सचिवालयों, निदेशकों, परीक्षा बोर्डों की एक विशाल प्रणाली का निर्माण और प्रशासन; ज़िला और उप-ज़िला स्तर पर बुनियादी कार्यात्मक संरचनाओं का निर्माण; और स्थानीय स्वशासन, माता-पिता, शिक्षक समुदायों और स्कूल प्रबन्धन के साथ ज़मीनी स्तर पर जुड़ाव। संसद से लगाकर माता-पिता तक हर कोई किसी-न-किसी स्तर पर सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली का हिस्सेदार है। जब हम शैक्षिक सुधारों की बात करते हैं तो इस विशाल प्रणाली की जटिलता और बड़े पैमाने को अक्सर अनदेखा कर दिया जाता है।

अपनी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली के बारे में एक नकारात्मक भावना के परिणामस्वरूप, हमने सबके लिए शिक्षा (एजुकेशन फॉर ऑल या ईएफए) और 'हर समाज में हर नागरिक' को शिक्षा के लाभ दिलाने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय पहल को अपना लिया है और उन समुदायों के लाखों बच्चों को आमंत्रित किया है जो इतिहास में पहली बार स्कूल परिसर में प्रवेश कर रहे हैं, ऐसी स्थिति में इस प्रकार का प्रतिकूल वातावरण शिक्षकों और अन्य शिक्षा कार्यकर्ताओं के लिए निराशाजनक है। इन कमियों की चिन्ता में हम इस क़दर डूब गए हैं कि अपनी शिक्षा प्रणाली के असाधारण प्रयासों और उपलब्धियों पर ध्यान ही नहीं दे रहे, जिसने 6-14 वर्ष के आयु वर्ग के सभी बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाने जैसी नीतियों को बनाए रखने के सभी प्रयास बड़ी नेकनीयती के साथ किए हैं। जब इसे अपनाया गया था तब शिक्षा प्रणाली पूरी तरह से तैयार नहीं थी, लेकिन इस पहल को बनाए रखने के लिए सभी प्रयास किए गए थे। यह आलेख 2008-2010 के दौरान उत्तराखण्ड में किए गए एक महत्त्वपूर्ण प्रयास को प्रदर्शित करके हमारे देश में शिक्षा की स्थिति पर नकारात्मक चर्चा का प्रत्युत्तर देने की कोशिश करता है। हमें यहाँ पर एक बात याद रखनी चाहिए कि यह इस प्रकार का सिर्फ़ एक प्रयास है। देश के लगभग सभी हिस्सों में ऐसे बहुत से प्रयास किए जा रहे हैं जिनके बारे में हम अनजान हैं और जिन्हें कोई मान्यता नहीं मिल पाती है।

शिक्षक प्रशिक्षण में सुधार की आवश्यकता

यह एक ऐसे प्रयास का विवरण है जिसे उत्तराखण्ड राज्य द्वारा राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (एससीईआरटी) के माध्यम से स्कूल की शिक्षा में दीर्घकालिक सुधार लाने के लिए किया गया। इसे समझने के लिए हमें राज्य स्तर पर सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की संरचना को समझना होगा।

इसका संचालन एससीईआरटी के द्वारा होता है जो अनुसन्धान एवं विकास का कार्य करती है और स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के प्रयासों में राज्य शिक्षा विभाग को अकादमिक संसाधन सहायता प्रदान करती है। फिर नीतियों और प्रक्रियाओं के लिए क्रमशः सचिवालय और निदेशालय होते हैं। इसके अलावा परियोजनाओं के लिए कुछ इकाइयाँ और विभाग भी हैं जो प्रयासों को आगे बढ़ाने में सहायता करते हैं। वैसे तो यह बात ज़रूरी है कि ये सभी संस्थाएँ आपस में बहुत निकटता के साथ सहयोग करें लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं। इसलिए अगर इनको एक साथ लाना हो तो इसके लिए राजतंत्र और अधिकारी-तंत्र के स्तर पर प्रतिबद्धता का होना एक मूलभूत आवश्यकता है।

2008-2010 के दौरान उत्तराखण्ड में इस तरह की वांछित स्थिति देखने में आई थी। स्कूल शिक्षा के तत्कालीन सचिव डॉ. राकेश कुमार ने प्रणाली को सुधारने के लिए कई रणनीतियाँ सुझाईं। उन्होंने महसूस किया कि शिक्षकगण स्कूल की औपचारिक व्यवस्था में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के अग्रदूत की भूमिका निभाते हैं। भारतीय सन्दर्भ में अपर्याप्त और ख़राब

शिक्षक-शिक्षा पर हमेशा से ही उँगली उठाई जाती रही है। शिक्षकों के निरन्तर व्यावसायिक विकास के लिए शिक्षक-शिक्षा और सेवाकालीन कार्यक्रमों के प्रावधानों में प्रभावी निष्पादन की कमी है जो केवल अधिकारी-तंत्र से आ सकता है क्योंकि हमारी प्रणालियाँ ऐसे ही चलती हैं। डॉ. राकेश कुमार ने इस बात को पहचाना और महसूस किया कि यदि वे 'शिक्षक तैयारी' के मुद्दे को हल कर दें तो वे स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की ओर एक क़दम आगे बढ़ पाएँगे।

उत्तराखण्ड राज्य वर्ष 2000 में गठित किया गया था। अतः उसे उत्तर प्रदेश, जिसका वह अब तक हिस्सा था, से 'प्राथमिक शिक्षा का सेवा-पूर्व शिक्षक' विरासत में मिला। देश में शिक्षकों के लिए शिक्षक-तैयारी का एक बुनियादी पाठ्यक्रम था, विशेष रूप से प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों के लिए जिसे अब प्राथमिक शिक्षा में डिप्लोमा (डीएलएड) के रूप में नामित किया गया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ़) 2005 की शुरुआत और तदनन्तर शिक्षक-शिक्षा का तालमेल इसके साथ बैठाने के लिए इसे संशोधित करने की बातचीत के कारण बाद में शिक्षक-शिक्षा (एनसीएफ़टीई) 2009 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा बनी। इसका असर सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा पर होना लाज़मी था। ऐसे समय में डॉ. राकेश कुमार ने बुनियादी प्रशिक्षण प्रमाणपत्र (बेसिक ट्रेनिंग सर्टीफिकेट या बीटीसी) पाठ्यक्रम को फिर से शुरू करने का प्रयास किया। एससीईआरटी ने इसकी अगुआई की क्योंकि उसने शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में सुधार करने के महत्त्व को समझ लिया था। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन (आगे इसे फ़ाउंडेशन के नाम से नामित किया जाएगा) को इस प्रयास के सुगमीकरण का कार्य सौंपा गया था।

चूँकि तब तक एनसीएफ़टीई 2009 लागू नहीं किया गया था इसलिए पाठ्यक्रम में बदलाव के आधार निम्नलिखित थे :

एक अच्छे शिक्षक में ये बातें होती हैं :

- विषय का ज्ञान और समझ
- विषय के लिए विशिष्ट शैक्षणिक (शिक्षण) कौशल
- शिक्षण-अधिगम के संसाधनों तक पहुँचने/विकसित करने की क्षमता
- शिक्षार्थियों के प्रति संवेदनशीलता और सम्मान
- समाज, शिक्षा और बच्चों की परिकल्पना और समझ

जिन परिवर्तनों को महत्त्वपूर्ण समझा गया वे इस प्रकार थे :

- नए शिक्षक अपने पेशे में परिकल्पना, योग्यता और प्रेरणा के साथ प्रवेश करते हैं जो शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अनुकूल हैं।
- कार्यरत शिक्षकों को पेशेवर विकास कार्यक्रम अर्थपूर्ण लगते हैं।
- शिक्षक की तैयारी, विकास और अनुसमर्थन के प्रतिमानों में पूरी तरह से बदलाव आया है।

शिक्षक प्रशिक्षण के लिए एक अलग दृष्टिकोण

इन बातों को व्यवहार में कैसे लाया गया, इसकी कहानी बड़ी महत्त्वपूर्ण है।

इस कार्य के लिए राज्य से लगभग 30 संसाधकों की एक कोर टीम का चयन किया गया था। इस टीम में शिक्षकों से लगाकर वरिष्ठ शिक्षा कार्यकर्ताओं के विभिन्न अनुभवों वाले संसाधक तक शामिल थे। इस समूह ने शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम का पुनर्निर्माण और उसे पुनर्जीवित करने के तरीक़ों पर विचार-मन्थन किया। यह टीम आस-पास उपलब्ध विचारों का पता लगाने को तत्पर थी और फ़ाउंडेशन ने एकलव्य, दिगन्तर और विद्या भवन जैसे प्रमुख संगठनों के संसाधकों द्वारा समूह के अभिमुखीकरण की सुविधा प्रदान की। इस समूह ने नव निर्मित राज्य छत्तीसगढ़ द्वारा अपने डीएलएड के पाठ्यक्रम को संशोधित करने के प्रयासों पर भी नज़र रखी।

कोर ग्रुप ने पहले के पाठ्यक्रम की समीक्षा की, सुझाव दिए और एनसीएफ़ 2005 के साथ इसका तालमेल बैठाने के लिए बदलाव किए। गहन बहसें और चर्चाएँ हुईं क्योंकि कुछ सदस्यों ने उत्तर प्रदेश के पूर्व बीटीसी पाठ्यक्रम को उपयोगी पाया और इसमें संशोधन करने का सुझाव दिया, जबकि दूसरा वर्ग चाहता था कि एनसीएफ़ 2005 को ध्यान में रखते हुए पूरे पाठ्यक्रम को पूरी तरह से पुनर्निर्मित किया जाए। बहस और चर्चाओं के बाद दूसरे समूह की बात मानी गई। इसका कारण एससीईआरटी का तत्कालीन नेतृत्व हो सकता है जिसका नेतृत्व अतिरिक्त निदेशक, एन.एन.पी. पाण्डे की अध्यक्षता में किया गया था, जो पूर्ण अकादमिक सटीकता के साथ कार्य करते थे और उनके पास वह दृष्टि भी थी जो वांछित उद्देश्यों की ओर केन्द्रित पाठ्यक्रम के लिए आवश्यक है। शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के सभी पहलुओं को ध्यान में रखा गया। उत्तराखण्ड परीक्षा बोर्ड के साथ एक क़रीबी तालमेल बिठाया गया था ताकि यह भी नवीनीकृत पाठ्यक्रम के साथ मेल खा सके।

पाठ्यचर्या विकसित होने में लगभग एक वर्ष लग गया। अलग-अलग समूहों ने विभिन्न क्षेत्रों के कार्यों को लिया-शिक्षा के परिप्रेक्ष्य से विषयों की प्रकृति तक। यह निर्णय लिया गया कि व्याख्यान शामिल न किए जाएँ। पाठ्यपुस्तक नहीं रखने के पक्ष में भी सोच-समझकर निर्णय लिया गया। इसलिए यह कक्षा-अभ्यास की दिशा में एक अलग दृष्टिकोण था।

पाठ्यचर्या से अभ्यास तक

पाठ्यक्रम के तैयार होने के बाद बुनियादी सुविधाओं और मानव संसाधनों के लिए ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) में सक्षम स्थितियों को तैयार करने की आवश्यकता थी ताकि पाठ्यक्रम को उचित तरीक़े से अमल में लाया जा सके। उपलब्ध बुनियादी सुविधाओं और मानव संसाधनों का मूल्यांकन करने के लिए डाइट का सर्वेक्षण किया गया। उस समय राज्य में दस डाइट और तीन ज़िला संसाधन केन्द्र (डीआरसी, जिसे 'मिनी डाइट' भी कहा जाता था) थे और यह पाया गया कि प्रत्येक में बुनियादी सुविधाओं और मानव संसाधनों की कमी थी। एक विश्लेषण यह पता लगाने के लिए किया गया कि डाइट के पास क्या कोई ऐसी धन राशि उपलब्ध है जिसका उपयोग बुनियादी सुविधाओं सम्बन्धी मुद्दों को हल करने के लिए किया जा सके। फ़ाउंडेशन ने इस विश्लेषण में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। निदेशालय को संस्थानों में वांछित मानव संसाधन उपलब्ध कराने का कार्य सौंपा गया था। कुछ ही समय में सभी संस्थानों को काफ़ी बेहतर बुनियादी सुविधाएँ और मानव संसाधन प्राप्त हुए। बुनियादी सुविधाओं में नवीनतम तकनीकें शामिल थीं जैसे ब्रॉडबैंड कनेक्शन और एलसीडी प्रोजेक्टर। पुस्तकालयों के लिए पुस्तकों की एक सूची सुझाई गई और फ़ाउंडेशन ने सभी डाइट और डीआरसी को इनमें से कुछ किताबें उपलब्ध कराईं ताकि परिवर्तित पाठ्यक्रम में सुचारु रूप से परिवर्तन हो सके।

चूँकि पाठ्यचर्या के साथ-साथ अध्यापन पद्धति के प्रतिमान में भी बदलाव आया था इसलिए संस्थानों के प्रमुखों और संकाय का उन्मुखीकरण करना आवश्यक था। इन ज़रूरतों को पूरा करने के लिए संस्थानों के प्रमुखों का आवश्यक प्रशासनिक और अकादमिक कार्यों के सम्बन्ध में उन्मुखीकरण किया गया जो व्यापक रूप से निम्नलिखित श्रेणियों पर आधारित था :

- प्रबन्धन और योजना
- संकाय के साथ समन्वयन
- पाठ्यचर्या के अमल की निगरानी
- साप्ताहिक इन-हाउस बैठकें
- एससीईआरटी को फीडबैक- प्रशासनिक और अकादमिक
- संसाधन सहायता
- सम्पर्क कार्य
- प्रशिक्षण का मूल्यांकन

इसके अलावा संकाय के कुछ सदस्य ऐसे भी थे जिनकी नई-नई भर्ती हुई थी और जो पहले मुख्य रूप से माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में काम करते थे और उन्हें सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा में शिक्षण का अनुभव नहीं था। इसलिए प्रशिक्षण को सटीक और कठोर होना था और पाठ्यचर्या के अमल का निरन्तर फालोअप।

दिलचस्प बात यह है कि उस वक्त एससीईआरटी में नेतृत्व बदल गया, लेकिन नए अतिरिक्त निदेशक, एन.सी. कबडवाल अपने पूर्ववर्ती निदेशक एन.एन.पी. पाण्डे के दृष्टिकोण से सहमत थे और उन्होंने पहले से चल रहे प्रयासों को वांछित दिशा में आगे बढ़ाया। उन्होंने उन्मुखीकरण के कार्यक्रमों के सुचारु संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई और अधिकांश सत्रों के सुगमीकरण के लिए वे स्वयं उपस्थित रहते थे। हर क्षेत्र के प्रत्येक डाइट से संकाय के एक कोर समूह का एक सप्ताह के लिए उन्मुखीकरण किया गया और फिर उन्हें अपने संस्थान में बाकी के डाइट संकाय के उन्मुखीकरण का कार्य सौंपा गया।

चूँकि पूरी प्रक्रिया कुछ हद तक परिवर्तनवादी थी इसलिए यह कोशिश भी की गई कि बदलाव को लेकर उत्साह बना रहे। डाइट में उत्सव का एक ऐसा माहौल बनाया गया कि बीटीसी कोर्स के उम्मीदवार नए पाठ्यक्रम में शामिल होने के लिए उत्साहित हों। उम्मीदवारों का स्वागत करने के लिए बैनर लगाए गए और कुल मिलाकर विद्यार्थी इस कोर्स में भाग लेने के लिए उत्साहित थे।

डाइट और डीआरसी में इस संशोधित पाठ्यक्रम के अमल की समीक्षा करने के लिए कुशल योजना भी थी। एक टीम बनाई गई जिसमें एससीईआरटी और फ़ाउंडेशन से एक-एक सदस्य को शामिल किया गया। इस टीम ने डाइट और डीआरसी का दौरा किया। इस टीम ने कक्षाओं का अवलोकन किया और संकाय व विद्यार्थी-प्रशिक्षुओं के साथ बैठकें कीं। बाद में ये सभी टीमें राज्य स्तर पर एक साथ बैठीं और विभिन्न पहलुओं, जैसे इन संस्थानों में संसाधनों की उपलब्धता से लेकर पाठ्यक्रम के अमल तक, के बारे में अपने अनुभव साझा किए। इससे विभिन्न स्थानों पर पाठ्यक्रम के अमल के अच्छे तरीक़ों पर प्रकाश डालने और साझा करने में भी मदद मिली।

विभिन्न हितधारकों ने भी कई प्रकार की प्रतिक्रियाएँ दिखाईं। शुरू में शिक्षकों को पाठ्यक्रम और अध्यापन में आए बदलाव के साथ अनुकूलन करने में मुश्किल हुई। ईमेल द्वारा सभी संस्थानों और प्रमुख लोगों को जोड़कर लगातार सहायता और पढ़ने की सामग्री उपलब्ध कराई गई थी। एससीईआरटी, छत्तीसगढ़ की वेबसाइट से भी बहुत मदद मिली क्योंकि इसमें डीएलएड के संशोधित पाठ्यक्रम के लिए प्रासंगिक सामग्री थी। इस दौरान कुछ अभिनव प्रथाएँ भी उभरीं जिनमें बाहरी संसाधकों को बुलवाना, संस्थानों के भीतर संसाधन जुटाना और विद्यार्थी-प्रशिक्षुओं की विशेषज्ञता का उपयोग करना आदि उल्लेखनीय हैं।

अब यह भी स्पष्ट हो गया था कि संकाय को निरन्तर सहायता की आवश्यकता है और इसलिए क्षेत्रीय संसाधन समूह (आरआरजी) का विचार उभरा। विषयवार आरआरजी का गठन किया गया जिसमें डाइट, एससीईआरटी और फ़ाउंडेशन के विषय विशेषज्ञों को शामिल किया गया। उत्तराखण्ड के दोनों क्षेत्रों यानी कुमाऊँ और गढ़वाल के आरआरजी सेमेस्टर के अन्त में अपने सम्बन्धित स्थानों पर मिले और सेमेस्टर की समीक्षा की तथा अगले सेमेस्टर के लिए योजना बनाई। यह विचार काफ़ी कारगर साबित हुआ क्योंकि इससे अलग-अलग स्थानों में जो भी अच्छा काम हो रहा था, उसे साझा करने में मदद मिली। चूँकि पाठ्यक्रम विकास के दौरान उत्तराखण्ड परीक्षा बोर्ड के साथ जुड़ाव हुआ था, इसलिए इसी तर्ज़ पर मूल्यांकन में भी सुधार किए गए जैसे कि सूचना पर कम और सीखने, पाठ्यक्रम की समझ और अनुप्रयोग पर अधिक बल देना।

पाठ्यक्रम का मूल्यांकन

पाठ्यक्रम में परिवर्तन हो जाने के कारण विद्यार्थी परीक्षाओं को लेकर कुछ चिन्तित थे और उनके मन में अनिश्चितता भी थी। लेकिन पहले सेमेस्टर की परीक्षा होने के बाद जब उन्होंने मूल्यांकन के संशोधित तरीक़े देखे तो उन्हें भी वे दिलचस्प लगे। 2011-12 में फ़ाउंडेशन द्वारा इस विषय पर एक अध्ययन किया गया था जिसका उद्देश्य बदलते पाठ्यक्रम की स्थिति को समझना और सम्बन्धित शैक्षिक हितधारकों के अनुभवों का विश्लेषण करना था। रिपोर्ट में बताया गया कि संशोधित पाठ्यक्रम तथा एनसीएफ़ 2005 और एनसीएफ़टीई 2009 में तालमेल है। हितधारकों ने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष दिए :

- विद्यार्थी-प्रशिक्षुओं, विशेष रूप से शिक्षा-मित्रों (पैरा-टीचर्स) ने, ख़ासतौर पर यह कहा कि बाल मनोविज्ञान को समझने की दिशा में उन्होंने बहुत कुछ सीखा। लेकिन उन्होंने यह भी कहा कि विशेष आवश्यकता वाले बच्चों (चिल्ड्रन विद स्पेशल नीड्स या सीडब्ल्यूएसएन), बहुकक्षा व बहुस्तरीय (मल्टी-ग्रेड मल्टी लेवल या एमजीएमएल) और नैतिक शिक्षा और संस्कृत जैसे विषयों के लिए शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं पर कोई चर्चा नहीं हुई। गणित के पाठ्यक्रम में दी गई सामग्री का स्तर प्राथमिक कक्षाओं के स्तर से कहीं अधिक था।
- सभी प्रधानाचार्य, डाइट और डीआरसी के प्रभारीगण पाठ्यक्रम से काफी सन्तुष्ट थे। उनमें से कुछ ने पाठ्यक्रम को बहुत प्रभावी पाया क्योंकि यह सैद्धान्तिक नहीं वरन व्यावहारिक था और यह बात पिछले (छह महीने के विशेष बीटीसी) पाठ्यक्रम के विपरीत थी। उन्हें यह बात भी पसन्द आई कि नए पाठ्यक्रम में एक अच्छे शिक्षक के गुणों पर ध्यान दिया गया था जैसे कि शिक्षक को स्कूल में कैसे पढ़ाना चाहिए, शिक्षण को दिलचस्प कैसे बनाया जाए और बच्चों के साथ बातचीत कैसे की जाए। डाइट संकाय को पाठ्यक्रम की सेमेस्टर-वार संरचना भी पसन्द आई।
- पाठ्यचर्या बनाने वाले दल का लक्ष्य यह सुनिश्चित करना था कि पाठ्यक्रम में सामग्री की बजाय अन्तःक्रियात्मक प्रक्रियाओं पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया जाए। पाठ्यक्रम में 'विषय की प्रकृति' वाली अवधारणा (यानी सामग्री पर अधिक ध्यान देने वाली अवधारणा में बदलाव) की शुरुआत बहुत फ़ायदेमन्द रही। इससे विद्यार्थी-प्रशिक्षुओं को अपने विषयों को बेहतर रूप से समझने में मदद मिली।
- पाठ्यचर्या बनाने वाले दल ने यह भी महसूस किया कि पाठ्यक्रम दार्शनिक दृष्टिकोण से तो अच्छा था लेकिन यह व्यावहारिक नहीं था क्योंकि इसमें वास्तविक स्थिति को ध्यान में नहीं रखा गया था। एक और समस्या यह थी कि विद्यार्थियों की बड़ी संख्या के कारण पाठ्यक्रम और गतिविधियों को पूरी तरह से नहीं किया जा सका।
- डाइट संकाय ने महसूस किया कि पाठ्यक्रम का मुख्य गुण यह था कि इसमें विद्यार्थी-प्रशिक्षुओं को इस बात की स्वतंत्रता थी कि वे अपने विचार व्यक्त कर सकें, समूह चर्चाओं और प्रस्तुतियों में भाग ले सकें और दूसरों को भी सुन सकें।

संस्थागत स्तर पर यह रिपोर्ट बहुत उत्साहजनक नहीं है। बुनियादी सुविधाओं और मानव संसाधनों को लेकर अभी भी चुनौतियाँ थीं। दूसरे, इन शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के नेतृत्व में बार-बार परिवर्तन होता रहा जिससे बदलाव की प्रक्रिया प्रभावित हुई। शिक्षक-शिक्षा संस्थान के पुस्तकालयों में इतनी पुस्तकें नहीं थीं जो शिक्षकों की माँग पूरी कर सकें। एक चुनौती यह भी थी कि शुरुआती चरण में डाइट संकाय के सदस्यों में उत्साह की कमी देखी गई क्योंकि उन्हें बदले हुए पाठ्यक्रम की सीमित जानकारी थी। इंटर्नशिप जैसे पाठ्यक्रम के कुछ पहलू पूर्ण रूप से लागू नहीं किए जा सके। संसाधनों की कमी के मूल कारणों में से एक कारण यह भी था कि प्रत्येक डाइट में जितने विद्यार्थी-प्रशिक्षुओं को नियत किया गया था, उनकी संख्या बहुत अधिक थी।

रिपोर्ट के अनुसार सार्वजनिक-निजी भागीदारी ने पाठ्यक्रम के क्रियान्वयन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे ऑन-साइट सहायता, संकाय की चुनौतियों को समझने और मुद्दों को सुलझाने के लिए आरआरजी की बैठकों के आयोजन में सहायता मिली। सभी डाइट संकाय सदस्यों के 'विज़न' के

लिए विशेष प्रावधान करना, प्रत्येक संस्थान को विषय-सामग्री प्रदान करना आदि कुछ ऐसे प्रमुख बिन्दु थे जहाँ फ़ाउंडेशन ने डाइट को समय पर सहायता प्रदान की।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सरकार ने सभी विभागों और हितधारकों के बीच तालमेल सुनिश्चित करने के लिए एक बहुत बड़ा प्रयास किया जिसके परिणामस्वरूप अब राज्य में संशोधित पाठ्यक्रम स्थापित हो गया है। उत्तराखण्ड की यह कहानी स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि अगर अधिकारी-तंत्र ईमानदारी के साथ भागीदारी करे और प्रतिबद्धता का पालन करे तो प्रणाली में महत्त्वपूर्ण बदलाव हो सकता है और जब आधारभूत कारणों पर उचित रूप से कार्यवाही की जाए तो परिवर्तन स्थायी रहता है।

संदर्भ :

1. *सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम की अवधारणा और कार्यान्वयन*, 2010-12. उत्तराखण्ड

अनन्त गंगोला वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु में कार्यरत हैं। वे बिहार, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और उत्तराखण्ड राज्यों में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन की फील्ड पहल का नेतृत्व कर चुके हैं। उन्होंने 10 वर्षों से भी अधिक समय तक टीएलसी, डीपीईपी और एसएसए के कार्यान्वयन में मध्य प्रदेश सरकार के साथ भी काम किया है। उनसे *anant@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

कैलाश चन्द्र काण्डपाल वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन, उत्तराखण्ड के राज्य प्रमुख हैं। उन्होंने मध्य प्रदेश और बिहार राज्यों में भी काम किया है और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में शामिल होने से पहले वे उत्तराखण्ड के शिक्षा विभाग में कार्यरत थे। उनसे *kandpal@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

स्कूलों में मध्याह्न भोजन का राष्ट्रीय कार्यक्रम

अंशु वैश



राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 प्रत्येक स्कूली बच्चे के लिए इस क़ानूनी अधिकार का प्रावधान करता है कि, सभी स्कूलों (चाहे वे सरकार द्वारा संचालित हों, सरकारी सहायता प्राप्त हों अथवा स्थानीय निकायों द्वारा संचालित हों) में चौदह वर्ष की उम्र तक के प्रत्येक बच्चे को दोपहर को नि:शुल्क, पका हुआ और गर्म भोजन दिया जाए। इसमें आवश्यक पोषक-मानकों को भी निर्धारित किया गया है। इससे पहले, नि:शुल्क और अनिवार्य बाल-शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 में प्रत्येक विद्यालय में एक रसोईघर के प्रावधान को अनिवार्य किया गया था, जहाँ दोपहर का भोजन पकाया जाएगा। दरअसल विद्यालय में दोपहर का भोजन देने के विचार ने लगभग एक शताब्दी पहले ही जन्म ले लिया था। उसके बाद बच्चों की खाद्य-सुरक्षा के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में एक वैधानिक दर्जा प्राप्त करने से पूर्व यह विविध अवतारों में विकसित होता रहा है।

इतिहास

1925 में मद्रास नगर निगम ने वंचित बच्चों को अपने स्कूलों में दोपहर का भोजन (मिड डे मील या एमडीएम) प्रदान करना शुरू किया। बाद में इसे पूरे तमिलनाडु में लागू कर दिया गया। गुजरात और केरल ने जल्द ही इस कार्यक्रम का अनुसरण किया। 1980 के दशक के मध्य तक इन तीन राज्यों के साथ-साथ केन्द्र शासित प्रदेश पुदुचेरी ने अपने स्वयं के संसाधनों से प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ रहे बच्चों के लिए दोपहर के भोजन का कार्यक्रम सर्वव्यापी बना दिया था। अपने स्वयं के धन का उपयोग कर इस महत्त्वपूर्ण एमडीएम कार्यक्रम को चलाने वाले राज्यों की संख्या 1990 तक बढ़कर बारह हो गई थी।

भारत सरकार ने एमडीएम की क्षमता को पहचाना क्योंकि इससे कक्षा में भूखे पेट आने वाले बच्चों की समस्या को सम्बोधित करते हुए स्कूलों में नामांकन, ठहराव और उपस्थिति को बढ़ाया जा सकता था। अतः 1995 में राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा पोषण सहायता कार्यक्रम (एनएसपीई) की शुरुआत की गई। यह अवधारणा अपने आप में लक्ष्य नहीं थी, वरन इसका उद्देश्य बच्चों को शिक्षित करना, उनके स्वास्थ्य को सुधारना, संज्ञानात्मक विकास करने में उनकी मदद करना और सामाजिक एकीकरण को बढ़ावा देना था। प्रारम्भ में 2408 विकासखण्डों में लागू एनएसपीई को जल्द ही देश के सभी विकासखण्डों में लागू कर दिया गया। 2002 में वैकल्पिक स्कूलों जैसे कि शिक्षा गारण्टी योजना के तहत स्थापित स्कूलों में पढ़ाई करने वाले बच्चों के लिए भी इस योजना का विस्तार किया गया। केन्द्र द्वारा प्रायोजित योजना के रूप में शुरू हुई इस योजना में केन्द्र और राज्य सरकारों ने एनएसपीई के तहत किए जा रहे वित्तीय प्रावधानों में साझेदारी की। वित्त में साझेदारी का सिद्धान्त अभी भी जारी है हालाँकि साझेदारी के पैटर्न में बदलाव आए हैं।

वर्ष 2007 में इस योजना का और अधिक विस्तार किया गया जब शैक्षिक रूप से पिछड़े 3500 विकासखण्डों के उच्च-प्राथमिक विद्यालयों में भी यह योजना पहुँची और इसका नाम बदलकर 'स्कूलों में मध्याह्न भोजन का राष्ट्रीय कार्यक्रम' कर दिया गया। शेष, उच्च-प्राथमिक विद्यालयों को अधिक समय तक इन्तज़ार नहीं करना पड़ा क्योंकि 2008 में एमडीएम योजना का पूरे देश में विस्तार कर दिया गया। साथ ही सर्वशिक्षा अभियान के तहत अनुदान प्राप्त सभी मदरसों और मकतबों में भी इसका क्रियान्वयन शुरू कर दिया गया। 2009 में राष्ट्रीय बाल-श्रम परियोजना के स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों को भी एमडीएम के तहत शामिल कर लिया गया।

पिछले 9 वर्षों में एमडीएम के विस्तार में कोई बदलाव नहीं देखा गया है। हालाँकि कुछ राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों ने अपने स्वयं के संसाधनों का उपयोग करते हुए आगे बढ़ाकर माध्यमिक विद्यालय के विद्यार्थियों को भी इसमें शामिल किया है। उन्हें स्कूल की अवधि के दौरान सप्ताह के सभी दिनों या कुछ दिनों में किसी और समय पर कोई स्वास्थ्यवर्धक भोज्य-पदार्थ (जैसे अण्डा, केला, दूध, मूँगफली और चना) देना शुरू किया है।

मध्यान्ह भोजन का क्रमिक विकास और वर्तमान आयाम

नवम्बर 2001 में राइट टू फूड केस[1] पर दिए गए एक ऐतिहासिक आदेश में सुप्रीम कोर्ट ने सभी राज्य सरकारों और केन्द्र शासित प्रदेशों को निर्देश दिया। इस निर्देश के तहत कहा

[1]*People's Union for Civil Liberties v. Union of India and Others, CWP 196/2001, popularly known as the 'Right to Food Case'*

गया कि प्रत्येक सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालय अपने यहाँ छह महीने के भीतर ऐसी व्यवस्था करें जिसमें प्रत्येक बच्चे को दोपहर में पका हुआ भोजन दिया जा सके। हर रोज़ (कम-से-कम 200 स्कूली दिन) दिए जाने वाले इस भोजन में प्रतिदिन न्यूनतम 300 कैलोरी और 8-12 ग्राम प्रोटीन शामिल करना ज़रूरी था। एमडीएम के लिए गुणवत्तापूर्ण अनाज की आपूर्ति के लिए भारत सरकार को ज़िम्मेदारी लेनी थी। इसके बाद अप्रैल 2004 में इसी मामले पर एक और आदेश आया जिसके अनुसार 2001 के आदेश का सितम्बर 2004 तक पूर्ण अनुपालन आवश्यक था। एक निर्देश यह भी दिया गया था कि बच्चों को पका हुआ भोजन निःशुल्क दिया जाएगा। अदालत ने यह भी आदेश दिया कि केन्द्र सरकार खाना पकाने की लागत वहन करेगी, स्कूलों में रसोई के लिए शेड का निर्माण कराएगी, रसोइयों और सहायकों की नियुक्ति में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को वरीयता दी जाएगी और सूखा प्रभावित क्षेत्रों में गर्मी की छुट्टियों के दौरान भी मध्यान्ह भोजन की आपूर्ति की जाएगी।

सर्वोच्च न्यायालय के आदेशानुसार सितम्बर 2004 में मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम में काफ़ी संशोधन किया गया। अनाज की मुफ़्त आपूर्ति एवं परिवहन सब्सिडी के अलावा भारत सरकार ने खाना पकाने की लागत (प्रति स्कूल दिवस प्रति बच्चा एक रुपया) की ज़िम्मेदारी ली। संशोधित योजना में प्रबन्धन, निगरानी और मूल्यांकन सम्बन्धी लागत देने के साथ-साथ सूखा प्रभावित क्षेत्रों में गर्मी की छुट्टियों के दौरान मध्यान्ह भोजन का प्रावधान भी रखा गया।

राज्यों/केन्द्र-शासित प्रदेशों, पोषण विशेषज्ञों और अन्य हितधारकों के साथ विस्तृत परामर्श के बाद 2009 में एमडीएम कार्यक्रम में एक और व्यापक संशोधन हुआ। भोजन के मानकों में सुधार के अलावा सन्तुलित और भरपेट भोजन को सुनिश्चित करने के लिए खाना पकाने की लागत में वृद्धि की गई। इसके अलावा क़ीमतों में वृद्धि के साथ तालमेल रखने के लिए खाना पकाने की लागत में हर वर्ष संशोधन की व्यवस्था की गई। राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों की विविध आवश्यकताओं के लिए अधिक लचीलापन और अनुक्रियाशीलता लाने के लिए अन्य संशोधन भी किए गए। उदाहरण के लिए पूरे देश में रसोई शेड के निर्माण की एक समान लागत तय करना अव्यावहारिक था। इसलिए लागत की मंजूरी को, नामांकन से जुड़े प्लिंथ क्षेत्र मानक के आधार पर, विभिन्न राज्यों में प्रचलित निर्माण लागत से जोड़ा गया। कठिन भौगोलिक क्षेत्रों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के बराबर मूल्य का परिवहन लागत का लाभ भी दिया गया।

पोषण के मानदण्ड[2]

वस्तु	पोषण मानदण्ड प्रति दिन/बच्चा	
	प्राथमिक	उच्च प्राथमिक
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	450	700
प्रोटीन (ग्राम)	12	20

भोजन के मानदण्ड[3]

वस्तु	मात्रा प्रति दिन/बच्चा (ग्राम में)	
	प्राथमिक	उच्च प्राथमिक
अनाज	100	150
दालें	20	30
सब्ज़ियाँ (पत्तेदार भी)	50	75
तेल और वसा	5	7.5
नमक और मसाले	आवश्यकतानुसार	आवश्यकतानुसार

[2]Prescribed in Schedule II of the National Food Security Act, 2013

[3]Source: MDM website – mdm.nic.in

उच्च-प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के लिए मध्यान्ह भोजन के विस्तार के बाद से प्राथमिक और उच्च-प्राथमिक कक्षाओं के लिए अलग-अलग पोषण मानकों और खाना पकाने की लागत अमल में लाई जा रही है। प्राथमिक और उच्च-प्राथमिक कक्षाओं के लिए खाना पकाने की लागत क्रमश: 4 और 6 रुपये प्रति बच्चा/प्रति स्कूल दिवस तक बढ़ा दी गई है। मध्यान्ह भोजन के तहत स्कूली बच्चों की पोषण सम्बन्धी पात्रता पिछले पेज पर दी गई तालिकाओं में दिखाई गई है।

उपर्युक्त मानदण्ड/मानकों के अनुसार भोजन में अमूमन स्थानीय प्राथमिकताओं के अनुसार चावल या रोटी (या इसी का ही कोई स्वरूप) और साथ में सांभर या दाल होती है जिसे सब्ज़ी के साथ या बिना सब्ज़ी के पकाया जाता है। कभी-कभी खिचड़ी या दलिया या सोयाबीन से बनी कोई चीज़ होती है जिसे सब्ज़ियों के साथ या बिना सब्ज़ियों के परोसा जाता है। हालाँकि भोजन के मानदण्ड अच्छे इरादे के साथ तैयार किए गए हैं लेकिन इसके बावजूद ताज़ा सब्ज़ियों, विशेष रूप से हरी और पत्तेदार सब्ज़ियों, को शामिल करना एक चुनौती बनी हुई है।

2015[4] में तैयार किए गए एमडीएम नियम, 2009 की संशोधित योजना को अनिवार्य रूप से क़ानूनी आधार देते हैं। इसकी निगरानी को मज़बूत करने और इसके निर्बाध क्रियान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए नियमों में कुछ और भी प्रावधान किए गए हैं। एमडीएम नियम स्कूल प्रबन्धन समिति (एसएमसी) को यह अधिकार देते हैं कि वह स्कूल में एमडीएम के संचालन का बारीक़ी से निगरानी करे। वे स्कूल के प्रधानाध्यापक को यह अधिकार देते हैं कि वे आवश्यकता पड़ने पर स्कूल में उपलब्ध किसी भी फंड का अस्थायी रूप से एमडीएम के लिए उपयोग कर सकते हैं ताकि धन की कमी की वजह से एमडीएम बन्द न हो। अगर किसी भी कारण से किसी दिन स्कूल में भोजन उपलब्ध नहीं होने की स्थिति पैदा हो तो बच्चे खाद्य सुरक्षा भत्ता के पात्र हैं, जिसमें अनाज और धन शामिल है। इस तरह बच्चे के भोजन के अधिकार में, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम और इसके अनुवर्ती एमडीएम नियमों के कारण महत्त्वपूर्ण विस्तार हुआ है।

फरवरी 2017 में भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय द्वारा जारी अधिसूचना[5] के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जो एमडीएम कार्यक्रम का लाभ उठाना चाहता है उसके पास आधार कार्ड का होना आवश्यक है। यह स्कूली बच्चों के साथ-साथ रसोइए और सहायकों पर भी लागू होता है। आधार कार्ड के लिए आवेदन करने की समय सीमा 31 दिसम्बर, 2017 निर्धारित की गई थी।

एमडीएम ने क्या हासिल किया है?

11 लाख से अधिक विद्यालयों में पढ़ रहे लगभग 10 करोड़ बच्चे एमडीएम से लाभान्वित होते हैं, 25 लाख से अधिक रसोइए और सहायक (जिनमें 80 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति /अनुसूचित जनजाति/अन्य पिछड़ा वर्ग समुदाय की महिलाएँ हैं) भोजन पकाने और परोसने के कार्य में संलग्न हैं। अब तक 8 लाख से अधिक रसोई-सह-भण्डार घर निर्मित किए गए हैं ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि खाद्य अनाज का भण्डारण और खाना पकाने का काम स्वच्छ और आरोग्यकारी जगहों में हो।[6] कभी-कभी निहित स्वार्थों के कारण पके हुए भोजन के स्थान पर तैयार खाने की चीज़ें जैसे बिस्कुट आदि देने के प्रयासों का सरकार और नागरिक समाज द्वारा प्रभावी ढंग से विरोध किया गया है। यह स्पष्ट है कि विद्यालय में पका हुआ भोजन प्रदान करने की व्यवस्था कायम रहेगी। एमडीएम आज दुनिया में अपनी तरह का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। नियमितता और पैमाने की दृष्टि से एमडीएम को भारत सरकार के अधिक सफल खाद्य सुरक्षा कार्यक्रमों में से एक माना जाता है।[7]

स्वतंत्र एजेंसियों द्वारा किए गए मूल्यांकन अध्ययनों और कार्य-निष्पादन अंकेक्षण (Performance Audit) से पता चलता है कि स्कूलों में मध्याह्न भोजन देने से बच्चों के नामांकन, ठहराव और उपस्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, ख़ासतौर पर लड़कियों और वंचित समूह के विद्यार्थियों के मामले में। उनके निष्कर्ष बताते हैं कि यह कार्यक्रम कक्षा में आए बच्चों को पोषण देने में सफल रहा है और बेहतर तरीक़े से सीखने में बच्चों की मदद करता है। अध्ययनों ने पोषण पर सकारात्मक प्रभाव के बारे में भी बताया है और इस बात का उल्लेख भी किया कि पहले की तुलना में प्रोटीन और लौह की कमी में भी सुधार आया है। एमडीएम ने सामाजिक समता को बढ़ावा दिया है- विविध सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि के बच्चे खाना खाने के लिए एक साथ बैठते हैं। इस बात के सबूत भी मिलते हैं कि 'उच्च जातियों' के बच्चे स्कूल में खाना खाते हैं (जो शायद एससी/एसटी/ओबीसी

---

[4]Under Section 39 of the National Food Security Act, 2013

[5]Under Section 7 of the Aadhaar (Targeted Delivery of Financial and other Subsidies, Benefits and Services) Act, 2016

[6]Source: MDM website: mdm.nic.in

[7]Saxena, N. C. (2011), 'Hunger, Under-Nutrition and Food Security in India', CPRC-IIPA Working Paper 44, and Khera, Reetika (2013), 'Mid-Day Meals: Looking Ahead', Economic and Political Weekly, Vol. XLVIII No. 32

[8]This paragraph draws on: (i) Section on Mid Day Meal in MHRD's Working Group Report for preparing the 12th Plan.
(ii)MDM website - mdm.nic.in
(iii) Khera, Reetika (2013), 'Mid-Day Meals: Looking Ahead', Economic and Political Weekly, Vol. XLVIII No. 32

से सम्बन्धित किसी व्यक्ति द्वारा पकाया गया हो), भले ही उनके माता-पिता ने ऐसा करने की मनाही की हो। एमडीएम ने महिलाओं के सशक्तिकरण को बढ़ावा दिया है। वंचित (अक्सर निराश्रित) महिलाओं के लिए रोज़गार के नए अवसर पैदा हुए हैं, महिलाओं के स्व-सहायता समूहों (एसएचजी) को भोजन तैयार करने और स्कूल के बच्चों की माताओं के साथ स्कूल स्तर पर देख-रेख करने की ज़िम्मेदारी साझा करने में शामिल किया गया है। एमडीएम के कारण भोजन से पहले और बाद में हाथ धोने जैसी स्वच्छता की अच्छी आदतों को प्रोत्साहन मिला है। इसके अलावा इसने पोषण-शिक्षा प्रदान करने का अवसर दिया है, हालाँकि इसका पूरा उपयोग नहीं हो पाया है। स्कूल हेल्थ प्रोग्राम (एसएचपी), जिसका उद्देश्य स्कूल के भीतर बच्चों के बुनियादी स्वास्थ्य मानकों की जाँच करना है, एमडीएम के साथ रणनीतिक रूप से जुड़ा हुआ है। यह कुछ राज्यों में अच्छी तरह से काम कर रहा है लेकिन इस अवधारणात्मक कड़ी को योजना और क्रियान्वयन के स्तर पर मजबूत करने की आवश्यकता है। रसोइयों और सहायकों की समय-समय पर स्वास्थ्य जाँच पर भी अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है।[8]

कुछ राज्यों ने एमडीएम को बेहतर बनाने और इसके क्रियान्वयन में सुधार करने के लिए कुछ नए तरीक़े भी अपनाए हैं। उदाहरण के लिए त्रिपुरा में कम लागत में अच्छी डिज़ाइन वाले भोजन-कक्षों का निर्माण किया गया है जहाँ पत्थर की मेज़ें और बेंचें लगाई गई हैं। गुजरात में *'तिथि भोजन'* नामक एक पहल के माध्यम से समुदाय को इसमें शामिल किया गया है। इस पहल में गाँव के स्थानीय समुदाय के सदस्यों को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वे एमडीएम की पौष्टिकता बढ़ाने में सहयोग दें। इसके लिए वे स्कूल के नियमित भोजन में कुछ जोड़ सकते हैं या अपने किसी महत्त्वपूर्ण दिन या तिथि पर पूरा भोजन प्रदान कर सकते हैं। कुछ अन्य राज्यों ने भी इस मॉडल को अपनाया है। महाराष्ट्र ने लागत और निर्माण का समय, दोनों को बचाने के लिए कई ज़िलों में अग्निरोधी, पूर्व-निर्मित मॉड्यूलर रसोई शेड बनाए हैं। सिक्किम में एमडीएम में ताज़ी और स्थानीय जैविक (ऑर्गेनिक) सब्ज़ियों का उपयोग किया जाता है। पिछले वर्षों में फंड की जो समस्या थी वह अब उन राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों में नहीं है, जिन्होंने ज़िलों को अग्रिम फंड देने का तरीक़ा अपना लिया है। यह बात बहुत उत्साहजनक है कि कुछ राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश, स्वेच्छा से, आवश्यक फंड से अधिक का योगदान करते हैं।[9]

चुनौतियाँ और भविष्य का मार्ग

हालाँकि एमडीएम को आमतौर पर सफल माना जाता है लेकिन कुछ क्षेत्रों में दिक़्क़तें अभी भी हैं। विद्यालय में भोजन करने के बाद बच्चों के बीमार पड़ने और यहाँ तक कि मरने की भी छिटपुट घटनाएँ मीडिया में आती हैं। हालाँकि इस तरह की घटनाएँ अब कम हो गई हैं लेकिन यह घटनाएँ जिन कारणों से होती हैं वे पूरी तरह से रोके जा सकते हैं। एमडीएम के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में जितनी भी शिकायतें आती हैं वे आमतौर पर असुरक्षित भोजन, भोजन की ख़राब गुणवत्ता, अनियमितता, धन का दुरुपयोग, और जाति से सम्बन्धित होती हैं। एमडीएम के हर पहलू को ध्यान में रखते हुए शिक्षा मंत्रालय द्वारा विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए गए हैं और सार्वजनिक रूप से उपलब्ध हैं।[10] लेकिन सभी स्तरों पर क्रियान्वयन तंत्र के क्षमतावर्धन और विद्यालय स्तर पर पर्याप्त निगरानी और पर्यवेक्षण को सुनिश्चित किए बिना एमडीएम की समस्याओं की पुनरावृत्ति होती रहेगी। मीडिया को भी चाहिए कि वह अपनी शक्ति का उपयोग केवल किसी ग़लती की रिपोर्टिंग करने के बजाय एमडीएम के सकारात्मक परिणामों के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए करे।

स्तर	ऊर्जा (किलो कैलोरी)		प्रोटीन (ग्राम)	
	मानक	फैज़ाबाद	मानक	फैज़ाबाद
प्राथमिक	450	353	12	6.6
उच्च-प्राथमिक	700	507	20	9.6

भोजन की पोषण गुणवत्ता एक प्रमुख सरोकार है। स्वामी शिवानन्द मेमोरियल इंस्टीट्यूट (एसएसएमआई) द्वारा उत्तर प्रदेश के फैज़ाबाद ज़िले में लागू एक परियोजना में पाया गया कि एसएसएमआई के हस्तक्षेप से पहले एमडीएम के द्वारा ऊपर दी गई तालिका के अनुसार पोषण प्रदान किया जाता था।[11]

[9]This paragraph is based on 'Mid Day Meal Scheme - Best Practices followed by States/UTs (2015-16)', Department of School Education and Literacy, MHRD, Government of India

[10]MDM website: mdm.nic.in[6]Source: MDM website: mdm.nic.in

[11]Swami Sivananda Memorial Institute (2014): 'Mid-Day Meal Scheme: Comprehensive Review and Interventions', Report on the SSMI-MHRD Faizabad Pilot Project

भोजन की बेहतर गुणवत्ता के लिए एसएसएमआई ने कुछ सरल क़दम उठाए जैसे कि खाना पकाने के मानक तरीक़ों की रूपरेखा बनाना, दिए जाने वाले हिस्से की मात्रा का निर्धारण और मानकीकरण करना, रसोइयों का प्रशिक्षण और उनकी निगरानी करना आदि। इनके परिणामस्वरूप भोजन के पोषण सम्बन्धी मामले में काफ़ी सुधार हुआ (औसतन 455 किलो कैलोरी और 11.7 ग्राम प्रोटीन)। इस तरह के उपाय और एमडीएम के दिशा-निर्देशों में सूचीबद्ध अन्य उपाय न केवल एमडीएम में पोषण की मात्रा को बढ़ाने में सहायक होंगे बल्कि बच्चों को दिए जाने वाले भोजन की विविधता, स्वाद और पसन्दगी में भी वृद्धि होगी।

एमडीएम के तहत शामिल किए गए विद्यालयों और प्रदान किए गए रसोई-सह-भण्डार घर की संख्या के बीच अभी भी एक बड़ा अन्तर (3 लाख से अधिक) है।[12] हालाँकि इनमें से कई विद्यालयों के लिए केन्द्रीकृत रसोई द्वारा भोजन तैयार करवाया जाएगा। लेकिन चिन्ताजनक बात यह है कि कुल स्वीकृत 10 लाख से अधिक रसोई-सह-भण्डार घरों में से, 2016 तक, 11 प्रतिशत का तो निर्माण भी शुरू नहीं हुआ था।[13] एमडीएम के लिए उचित आधारभूत संरचना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका सीधा प्रभाव स्वच्छ और स्वास्थ्यकारी भण्डारण और भोजन पकाने पर पड़ता है। यह बच्चों को आग, धुएँ, गर्म बर्तनों और इधर-उधर गिरे हुए गर्म भोजन से भी बचाता है।

ईंधन की लागत और दक्षता को अभी तक पर्याप्त रूप से सम्बोधित नहीं किया जा सका है। वर्तमान में एमडीएम के अन्तर्गत अधिकांशतः भोजन लकड़ी पर पकाया जाता है जिससे आन्तरिक प्रदूषण होता है और जो पर्यावरण के अनुकूल नहीं है। इतने बड़े पैमाने पर चल रहे सरकारी कार्यक्रम में इसका उपयोग अनुशंसनीय नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से तो एलपीजी (आज की तारीख़ में उपलब्ध सबसे कम कीमत का और उपयोगकर्ता के लिए सबसे अनुकूल विकल्प) के उपयोग को सरकार ने प्रोत्साहित किया है लेकिन लकड़ी के उपयोग को एलपीजी से बदलने के लिए विशिष्ट संसाधन उपलब्ध नहीं कराए गए हैं। फिर भी कुछ राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के ज़्यादातर या सभी स्कूलों में एलपीजी का प्रयोग शुरू कर दिया गया है। शेष राज्यों को भी चरणबद्ध तरीक़े से इस दिशा में बढ़ना चाहिए। एमडीएम बजट में इसके लिए एक निश्चित प्रावधान पर विचार करने की आवश्यकता है।

एमडीएम में शिक्षकों की भागीदारी अभी भी एक चुनौती बनी हुई है। एमडीएम दिशा-निर्देशों के अनुसार,"भोजन परोसने से पहले यह ज़रूरी है कि एक शिक्षक उसे चखें। एक रजिस्टर में चखने के रिकॉर्ड को दर्ज करते रहना है। शिक्षकों के साथ एसएमसी के सदस्यों को भी, भोजन परोसने से पहले, बारी-बारी से उसे चखना चाहिए।"एमडीएम के तहत शिक्षकों को सौंपी गई यह एकमात्र ज़िम्मेदारी है। फिर भी व्यापक रूप से यह माना जाता है कि शिक्षकों के ऊपर एमडीएम से सम्बन्धित कई कार्य लाद दिए जाते हैं जो उनके शिक्षण-अधिगम के कार्य में हस्तक्षेप करते हैं। वैसे यह धारणा शायद आधारहीन नहीं है। कई प्राथमिक विद्यालयों में दो शिक्षकों के अलावा और कोई कर्मचारी नहीं होता, इसलिए यह सोचना सही नहीं है कि ऐसे स्कूलों में एमडीएम उनसे सीमित काम लेगा। मॉडल एजुकेशन कोड[14] में इस बारे में एक व्यावहारिक दृष्टिकोण प्रदान किया गया है कि स्कूल में भोजन परोसने और चखने के सम्बन्ध में, शिक्षकों से कितने कार्य की अपेक्षा यथोचित होगी ताकि वे इस अवसर का प्रयोग शिक्षण-अधिगम के लिए कर सकें। यदि वे यह सुनिश्चित करने का प्रयास करें कि भोजन के समय में एकता और समानता की भावना बनी रहे तो वे प्रभावी रूप से सामाजिक एकजुटता को बढ़ावा दे सकते हैं।

कुछ राज्यों ने सुझाव दिया है कि अगर अधिक-से-अधिक स्कूलों के लिए केन्द्रीकृत रसोई द्वारा भोजन की व्यवस्था की जाए तो शिक्षकों को भारमुक्त किया जा सकता है। वैसे तो शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में एक स्थान पर खाना पकाने और पके हुए भोजन को स्कूलों में ले जाने के अपने फ़ायदे हैं, लेकिन ग्रामीण इलाकों में इस प्रणाली को लागू करना हो तो सावधानी बरतनी होगी। सबसे बड़ी समस्या जो साफ़ नज़र आती है वह है सड़क की गुणवत्ता, जिसका ध्यान एमडीएम नियमों में रखा गया है।[15] दूसरा कारण यह है कि स्कूल में भोजन प्रदान करने के अलावा एमडीएम स्थानीय समुदायों के जुड़ाव और भागीदारी को भी प्रोत्साहित करना चाहता है, ख़ासतौर पर स्कूल में पढ़ रहे बच्चों के माता-पिता की भागीदारी। एसएमसी से अपेक्षा की जाती है कि वे स्कूल स्तर पर एमडीएम की निगरानी और पर्यवेक्षण करें लेकिन केन्द्रीकृत रसोई के विचार के साथ यह बात सम्भव नहीं है। एमडीएम का पर्यवेक्षण करने के लिए एसएमसी और स्थानीय समुदायों की क्षमतावर्धन करनी होगी जो एसएमसी के लिए स्कूल प्रबन्धन के अन्य पहलुओं में शामिल होने के लिए एक महत्त्वपूर्ण क़दम

---

[12]Source: MDM website: mdm.nic.in

[13]MHRD presentation to the Empowered Committee on MDM Scheme, September, 2016

[14]T National University of Educational Planning and Administration, New Delhi (2015), 'Model Education Code: Practices and Processes of School Management'

[15]MDM (Amendment) Rules, 2017

है। कर्तृत्व या एजेंसी की भावना के साथ लैस एसएमसी, स्कूल शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने में एक प्रमुख भूमिका निभा सकता है।

एमडीएम दिशा-निर्देशों में कई वर्षों तक स्वयं सहायता समूह, ग़ैर-सरकारी और नागरिक समाज संगठनों को स्कूल का भोजन बनाने की अनुमति दी गई है। संशोधित दिशा-निर्देश 2017 में जारी किए गए हैं, जिसके अनुसार सरकार के साथ हस्ताक्षरित अनुबन्ध करना आवश्यक है। संगठन के चयन के मानकों के साथ-साथ अनुबन्धित पक्षों की भूमिकाओं और ज़िम्मेदारियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। इस ढाँचे के बावजूद ज़मीनी स्तर पर यह व्यवस्था जिस प्रकार से आकार लेती है उसके बारे में सतर्क रहने की आवश्यकता है। अतीत में पोषण कार्यक्रमों में इसलिए समस्याएँ पैदा हुईं क्योंकि महिला मण्डल/एसएचजी पर निहित स्वार्थों वाले प्रभावशाली लोगों का अधिकार था जिसके परिणामस्वरूप बच्चों को अस्वस्थकारी, दूषित और ग़ैर-पौष्टिक भोजन दिए जाने के कई उदाहरण सामने आए। पके हुए भोजन की आवश्यकता ने कुछ हद तक इस तरह की अनियमितताओं की सम्भावना को सम्बोधित किया है। लेकिन एसएमसी, स्थानीय निकाय और मीडिया को स्कूली बच्चों को ऐसे बेईमान तत्वों से बचाने के लिए लगातार निगरानी करनी होगी।

निष्कर्ष

भोजन के अधिकार अभियान और सुप्रीम कोर्ट के हस्तक्षेप ने एमडीएम के मौजूदा महत्त्व और विस्तार को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। विभिन्न एजेंसियों की सतर्कता और सतत निगरानी तथा विशेष रूप से भोजन का अधिकार केस में सुप्रीम कोर्ट के आयुक्तों ने एमडीएम और इसके क्रियान्वयन में लगातार सुधार किए हैं। इनकी मौजूदगी से मीडिया ने भी इस पर भरपूर ध्यान दिया है। बच्चों को पका भोजन देने से इस बात की सम्भावना है कि बच्चों का पोषण बढ़े, समता के साथ प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमिक हो और अधिगम की गुणवत्ता बेहतर हो। इसलिए अब शिक्षाविद एमडीएम के प्रभाव पर नज़र रखने लगे हैं और इसे एक सफल प्रयास माना जाता है। पिछले दस वर्षों में एमडीएम के लिए भारत सरकार का बजट 6500 करोड़ रुपये से बढ़कर 10000 करोड़ रुपए हो गया है। इसके अलावा राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों ने भी अपना योगदान दिया है।

भविष्य में हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि जब हम पीछे मुड़कर देखें तो महसूस कर सकें कि हमने अपने स्कूली बच्चों में अच्छा निवेश किया है। अगर हम एमडीएम की सम्पूर्ण सम्भावनाओं को प्राथमिक स्तर के हर बच्चे तक पहुँचाना चाहते हैं तो हमें अपनी सफलताओं के आधार पर आगे का नव-निर्माण करना होगा।

अंशु वैश भारतीय प्रशासनिक सेवा के 1975 बैच की सेवानिवृत्त अधिकारी हैं। वे 2012 में शिक्षा मंत्रालय से स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग की सचिव के रूप में सेवानिवृत्त हुईं। वर्तमान में वे कुछ ग़ैर-सरकारी संगठनों की गवर्निंग बॉडी की सदस्य हैं जैसे *प्रदान*, *कथा*, *रेनबो फाउण्डेशन ऑफ इंडिया*, *सेंटर फॉर इक्विटी स्टडीज़* और *आगा ख़ान फ़ाउंडेशन*, इंडिया और साथ में एम्स, भोपाल के संस्थान निकाय और भारतीय इस्पात प्राधिकरण (सेल) के निदेशक मण्डल से भी सम्बद्ध हैं। उनसे *anshuvaish52@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : नलिनी रावल **पुनरीक्षण :** स्वाति भदौरिया

समावेशी शिक्षा : मुद्दे और चुनौतियाँ

अनुराधा नायडू



सार

समावेशी शिक्षा अपेक्षाकृत एक नई अवधारणा है, जिसने 'सभी के लिए शिक्षा अभियान' के बाद, 2000 में अन्तर-राष्ट्रीय स्तर पर ध्यान आकर्षित किया। भारत में, 86वें संशोधन अधिनियम द्वारा देश के सभी लोगों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने का प्रावधान है जिसमें विकलांग बच्चे भी शामिल हैं। दो प्रगतिशील विधायी पहलों के अधिनियमन के बाद (शिक्षा का अधिकार अधिनियम और विकलांगता अधिकार का अधिनियम) यह नज़र आता है कि अब नीति का नज़रिया कल्याण-आधारित दृष्टिकोण से बदलकर मानव अधिकारों पर ज़ोर देने वाला हो गया है। लेकिन विकलांगता अधिकार के कार्यकर्ता इस बात की ओर ध्यान दिलाते हैं कि नामांकन के बावजूद कक्षा में विकलांग बच्चे नज़र नहीं आते। इस लेख में प्रस्तुत तीन उदाहरणों के अध्ययन से पता चलता है कि हालाँकि विकलांगता को मानव विविधता के रूप में स्वीकारने वाले क़ानून मौजूद हैं, किन्तु फिर भी बच्चे एक विघटित प्रणाली का शिकार बन जाते हैं। गुणवत्तापूर्ण अधिगम प्राप्त करने के उद्देश्य के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं – अलग प्रकार का पाठ्यक्रम, शैक्षणिक नवाचार, परीक्षा सुधार और सबसे महत्त्वपूर्ण बात है शिक्षक की तैयारी। हमें जल्द-से-जल्द इस बात पर ध्यान देना है कि सभी हितधारकों जैसे शिक्षकों, विशेष शिक्षकों, प्रशासकों, विकलांगजनों और उनके परिवारों के बीच सहयोग और संवाद की संस्कृति विकसित हो ताकि सामाजिक अड़चनें दूर हों और सभी बच्चों के समावेशन के लिए समग्र स्कूल विकास दृष्टिकोण सक्षम हो सके।

> *"कृतज्ञता की भावना के साथ समाज को कुछ वापस देने का प्रयास करना मनुष्यों के जीने का उचित तरीक़ा है।"*
>
> *- जापानी बौद्ध दार्शनिक डाइसाकू इकेडा*

परिचय

भारतीय उपमहाद्वीप में समावेशी शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत एक नई अवधारणा है, जिसके साथ स्कूल में बच्चों के नामांकन की प्रक्रिया जूझ रही है। पिछले दशक में विकलांग बच्चों की शिक्षा से सम्बन्धित परिप्रेक्ष्य में बदलाव आया है जिसमें कल्याण की तुलना में मानवाधिकारों पर अधिक बल दिया गया है। भारत सरकार द्वारा विकलांग जनों के अधिकार [Rights of People with Disability (UNCRPD)] पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की पुष्टि के बाद यह परिवर्तन आया है। बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम (आरटीई अधिनियम), 2009 और विकलांगजनों के अधिकार का अधिनियम (आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम) 2016, दोनों में समावेशी शिक्षा का प्रावधान है। लेकिन बच्चों के स्कूल में बने रहने और स्कूल छोड़ने जैसे गम्भीर मुद्दों के चलते क्या यह प्रगतिशील दृष्टि स्कूलों में अच्छे कार्य निष्पादन का विकास करेगी?

स्कूल की कक्षाओं में मानव विविधता को प्रोत्साहित करने और उसका समर्थन करने से जीवन के मानववादी पहलुओं का निर्माण होता है, जो विविधताओं को स्वीकार करना सिखाते हैं। समकालीन सकारात्मक मनोविज्ञान के पितामह मार्टिन सेलिगमन कहते हैं,'सकारात्मक समावेशी स्कूली शिक्षा स्वतंत्रता, विश्वास और मानव विविधता के प्रति सम्मान के मूल्यों पर आधारित है।' 'इंडेक्स फॉर इनक्लूशन' के लेखक टोनी बूथ भी समावेशन के लोकतांत्रिक और सहभागितापूर्ण अभ्यासों में मूल्यों की भूमिका पर ज़ोर देते हैं जो शिक्षकों और शिक्षार्थियों को समान रूप से मान्यता देता है। क्या शिक्षक आज एक नई समावेशी स्कूल संस्कृति बनाने के लिए पाठ्यचर्या अनुकूलन, सहयोगिता के कौशल और सार्वभौमिक डिज़ाइन के बुनियादी अभ्यासों के लिए तैयार हैं?

1990 के दशक में वर्ल्ड एजुकेशन फोरम, डकार, 2000 के रन-अप के दौरान, मैंने एक विशेष शिक्षक के रूप में प्रशिक्षण लिया था। मैं समावेशी शिक्षा में वैश्विक रुचि का पता लगाने के लिए बहुत उत्साहित थी। तब इस बात को बढ़ावा मिल रहा था कि ग़रीबी, लिंग और सांस्कृतिक कारकों से हाशिए पर पड़े अन्य बच्चों के साथ-साथ विकलांग बच्चे भी मुख्यधारा के स्कूलों में पढ़ें। समावेशी शिक्षा के साथ पहली बार मेरा सामना समावेशन के लिए सूचकांक (इंडेक्स) की एक फील्ड परियोजना के माध्यम से हुआ जिसमें ये चार देश शामिल थे – भारत, ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका और ब्रिटेन। तब से

समावेशी शिक्षा के बारे में मेरा विचार सूचकांक के दर्शन के साथ जुड़ गया है, जो इस प्रकार है – सभी विद्यार्थियों और कर्मचारियों का सम्मान होना चाहिए और स्कूल समुदायों में उनकी भागीदारी और सहयोग बढ़ाने के लिए सभी प्रयास किए जाने चाहिए। इसमें शिक्षक, विद्यार्थी और समुदाय के जुड़ने की बात है जो अवरोधों को कम करके अधिगम तक पहुँचने की प्रक्रिया को बढ़ाते हैं। समावेशी शिक्षा यानी समग्र स्कूल विकास।

समावेशी शिक्षा और क़ानून : तब और अब

'सभी के लिए शिक्षा' के लक्ष्यों में विकलांग बच्चों की शिक्षा को शामिल करने के बाद 2002 में भारतीय संविधान में 86वाँ संशोधन किया गया। संविधान के अनुच्छेद 21-ए में मौलिक अधिकार के रूप में शिक्षा की गारंटी दी गई है और यह निर्दिष्ट किया गया है कि राज्य 6-14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करेगा, लेकिन 2009 में जाकर आरटीई अधिनियम संसद द्वारा पारित किया गया। और पहली बार इस अधिनियम ने मुख्यधारा की शैक्षिक प्रणाली में विकलांग बच्चों के समावेशन को अनिवार्य कर दिया।

उसी दशक में भारत सरकार ने यूएनसीआरपीडी,2007 को भी मंज़ूरी दे दी। इसके बाद विकलांगजनों (समान अवसर, अधिकार संरक्षण और पूर्ण भागीदारी) के अधिनियम (पीडब्ल्यूडी अधिनियम), 1995 की जगह आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016 लागू हुआ।

इस लेख में हम इन वैधानिक प्रावधानों में समावेशी शिक्षा से सम्बन्धित अनुभागों की समीक्षा करेंगे और साथ ही अधिगम की गुणवत्ता के लिए प्रभावों पर चिन्तन भी करेंगे।

- आइए, सबसे पहले हम आरटीई अधिनियम को समावेशी शिक्षा, विकलांगता और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच के नज़रिए से देखें।
- इसके बाद हम आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम को यूएनसीआरपीडी के साथ उसके तालमेल और विकलांगता की उन नई परिभाषाओं को देखेंगे जो परिवेशीय अड़चनों पर ध्यान देती हैं।
- अन्त में, हम अधिनियमों को एक साथ पढ़कर स्कूलों को समावेशी बनाने के लिए यूएनसीआरपीडी की सार्वभौमिक डिज़ाइन की अवधारणा पर विचार करेंगे।

आरटीई अधिनियम

'शिक्षा का अधिकार' का तात्पर्य है शिक्षा में विविधता। आरटीई अधिनियम इस आधार पर बनाया गया है कि सभी बच्चों को स्कूल में होना चाहिए। इस अधिनियम में 'शून्य अस्वीकृति नीति' द्वारा समर्थित स्कूल नामांकन के साथ समुचित शिक्षक प्रशिक्षण, अवरोध रहित बुनियादी ढाँचे और बेहतर शैक्षिक व पाठ्यचर्या अनुकूलन के माध्यम से स्कूल की गुणवत्ता में सुधार का प्रावधान भी है। अन्त में, आरटीई अधिनियम में यह भी कहा गया है कि राज्य को अनिवार्य रूप से स्कूल निकायों की निगरानी करनी होगी और अपने अभिशासन व स्कूल विकास योजनाओं में सुधार करना होगा।

चेन्नई में रहने वाली फ़ातिमा की कहानी उसकी माँ ने सुनाई। फ़ातिमा की माँ, जो दक्षिणी तमिलनाडु के एक तटीय शहर में रहने वाली एक गृहिणी हैं, आरटीई अधिनियम के क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों का वर्णन करती हैं। 8 वर्षीया फ़ातिमा एक लम्बे इंतज़ार के बाद 'अच्छे' स्कूल में भर्ती होने की सम्भावना को लेकर बहुत उत्साहित थी। आरटीई लागू होने के बाद फ़ातिमा अपने पड़ोस में किसी भी स्कूल में भर्ती हो सकती थी। भर्ती होने के बाद उसे एक विशेष श्रेणी में रखा गया था जहाँ उसे तब तक रहना था जब तक कि वह अँग्रेज़ी और तमिल वर्णमाला में निपुणता नहीं प्राप्त कर लेती। जब फ़ातिमा 5 वर्ष की थी तब उसे मानसिक मन्दता का शिकार बताया गया था लेकिन यह निदान ग़लत था। जब वह बड़ी हो गई तो यह स्पष्ट हुआ कि उसे विकास समन्वय विकार की परेशानी थी जिसकी वजह से उसे लिखने में बड़ी मुश्किल पेश आती थी। उसकी सामान्य ज्ञान सम्बन्धी जानकारी बहुत बढ़िया थी लेकिन डिस्ग्रैफ़िया के कारण उसके लिए लिखना लगभग असम्भव था। उसे जिन बाधाओं का सामना करना पड़ा वे व्यवहारगत थीं और स्कूल के अधिकारियों को यह समझ में नहीं आ रहा था कि बिना लिखे कोई बच्चा स्कूल की पढ़ाई कैसे कर पाएगा।

आरटीई के तहत, फ़ातिमा जैसे बच्चे को, जो 6 से 14 साल की उम्र के बीच में हैं, निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा पाने के लिए पड़ोस के स्कूल में भर्ती होने का अधिकार है। इस अधिनियम में 'बच्चे' की परिभाषा में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के बच्चों, सामाजिक, आर्थिक, लिंग और धार्मिक कारकों से दिक़्क़तों का सामना करने वाले बच्चों और विकलांग बच्चों को शामिल किया गया है। नए क़ानून के तहत फ़ातिमा को अपने घर से लगभग एक किलोमीटर की दूरी पर स्थित स्कूल में दाखिला दिया गया है।

आरटीई अधिनियम की एक अन्य सकारात्मक विशेषता यह है कि इसमें 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा तक पहुँच' पर ज़ोर दिया गया है। यह बात फ़ोकस में एक बदलाव को दर्शाती है यानी अब फ़ोकस कल्याण आधारित दृष्टिकोण से अधिकार आधारित दृष्टिकोण पर रखा गया है। साथ ही इस बात को राज्य के लिए क़ानूनी दायित्व बना दिया गया है कि उन्हें सुनिश्चित करना

है कि बच्चा राज्य द्वारा मान्यता प्राप्त स्कूल में पढ़ रहा है। अधिनियम के मार्गदर्शक सिद्धान्त भी सीखने की गुणवत्ता के प्रावधान के लिए नामांकन से परे जाते हैं।

- धारा 19 के तहत, बच्चे को एक ऐसे औपचारिक विद्यालय में साम्यतापूर्ण पूर्णकालिक शिक्षा पाने का अधिकार है जो आवश्यक मानदण्डों और मानकों को पूरा करता हो।
- आरटीई के मानदण्डों और मानकों में इस बात को अनिवार्य किया गया है कि कक्षा सामग्री, कक्षाओं और इमारतों तक बाधा मुक्त पहुँच प्रदान की जानी चाहिए।

'गुणवत्ता शिक्षा तक पहुँच' का अर्थ ऐसे वातावरणों का निर्माण करना है जो एक बच्चे को विकसित करने और पूर्ण क्षमता तक बढ़ने में सक्षम बनाएँ। फ़ातिमा को शुरुआत में ही पारम्परिक सामाजिक बाधाओं का सामना करना पड़ा था। इस पर काबू पाने के लिए शैक्षिक सुधार और प्रगतिशील नेतृत्व की आवश्यकता है जो सीखने और सभी की भागीदारी को प्रोत्साहित करे।

आरटीई और आगे की चुनौतियाँ

आरटीई अधिनियम की धारा 12 (1) (सी) के तहत, निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत सीट समाज के वंचित समूहों के बच्चों के लिए आरक्षित हैं। फ़ातिमा ने अपने पड़ोस के स्कूल में प्रवेश तो लिया लेकिन क्या वह विशेष श्रेणी से नियमित कक्षा तक प्रगति कर सकी? आरटीई अधिनियम की धारा 21 अनिवार्य स्कूल प्रबन्धन समिति (एसएमसी) को स्कूल विकास योजना बनाने की ज़िम्मेदारी देती है। यदि पाठ्यक्रम वास्तव में बाल केन्द्रित और बच्चों के अनुकूल है, जैसा कि अधिनियम का दावा है कि ऐसा होगा और यदि वातावरण भय, चिन्ता और अभिघात से मुक्त है, तो फ़ातिमा अपने साथियों के साथ सीख सकती है, भले ही वह लिखने में असमर्थ हो।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (एनसीईआरटी) की वेबसाइट में प्राथमिक विद्यालयों के लिए 'सीखने के प्रतिफल' से सम्बन्धित दस्तावेज़ों, समावेशन पर सूचकांक के लिए एक गाइडबुक और आकलन में समायोजन और संशोधन के सुझावों के लिए लिंक दिए गए हैं। क्या इसका यह मतलब है कि शिक्षा की गुणवत्ता के मुद्दे पर जल्द ही विचार होगा? अधिनियम लागू होने के छह साल बाद आरटीई की उपलब्धियों पर, 2016 में केपीएमजी की एक मूल्यांकन रिपोर्ट आई जिसमें सीखने की गुणवत्ता सम्बन्धी बहस की चुनौतियों पर प्रकाश डाला गया। केपीएमजी के शिक्षा क्षेत्र के प्रमुख बताते हैं कि सरकार ने अब तक सार्वभौमिक नामांकन और बुनियादी ढाँचे के विकास पर ध्यान केन्द्रित किया है, लेकिन अब ध्यान सीखने की गुणवत्ता पर होना चाहिए। असर, 2014 की रिपोर्ट के अनुसार, कक्षा 5 के 50 प्रतिशत विद्यार्थी और कक्षा 8 के 25 प्रतिशत विद्यार्थी कक्षा 2 की रीडर पढ़ने में असमर्थ हैं। गणितीय कौशल में सीखने के प्रतिफल के आँकड़े बताते हैं कि एक ऐसे शिक्षणशास्त्र और शिक्षक-विद्यार्थी अन्तःक्रिया की ज़रूरत है जो समझने और अनुप्रयोग के माध्यम से सीखने को प्रोत्साहित करते हों।

आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016

पीडब्ल्यूडी अधिनियम के स्थान पर आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2016 को लाना विकलांगता अधिकार आन्दोलन के इतिहास में एक विशेष क्षण था। इसमें विकलांग कार्यकर्ताओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई क्योंकि हितधारकों ने सामाजिक परिवर्तन के सुगमीकरण में भाग लिया और दावा किया कि उनका आन्दोलन एक नए चरण में प्रवेश कर रहा है। यह तथ्य, कि नया क़ानून यूएनसीआरपीडी के अनुरूप है, अपने दार्शनिक आधार पर परिवर्तनशील है और सामाजिक कल्याण के स्थान पर मानव अधिकारों पर ध्यान केन्द्रित करता है। पीडब्ल्यूडी अधिनियम के विपरीत, आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम की प्रस्तावना 'विकलांग जनों के सशक्तिकरण के सिद्धान्त' बताती है। जो इस प्रकार हैं :

- अन्तर्निहित गरिमा के प्रति सम्मान
- मतभेद के प्रति सम्मान और मानव विविधता और मानवता के हिस्से के रूप में पीडब्ल्यूडी को स्वीकार करना
- पहुँच और समान अवसर, और
- विकलांगता-एक विकसित और गतिशील अवधारणा के रूप में (यह अवधारणा बच्चों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की धारणाओं पर आधारित है, जहाँ वयस्क, अपने अधिकारों का उपयोग करने की बच्चों की क्षमता को ध्यान में रखते हैं।)

बुनियादी प्रावधान और क्रियान्वयन के उपाय

पीडब्ल्यूडी अधिनियम, 1995 के विपरीत, आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम, 2009 समावेशी शिक्षा का प्रावधान करता है, जिसे यह 'शिक्षा की एक ऐसी प्रणाली के रूप में परिभाषित करता है जिसमें विकलांग और अविकलांग विद्यार्थी साथ में पढ़ते-सीखते हैं। जिसमें शिक्षण-अधिगम की व्यवस्था को विभिन्न प्रकार के विकलांग विद्यार्थियों के सीखने की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए उपयुक्त रूप से अनुकूलित किया जाता है।' यह बुनियादी आवश्यकताओं और क्रियान्वयन के तरीक़ों के बारे में भी विस्तार से बताता है।

आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम के कार्यक्षेत्र के तहत एक ऐसा प्रभावशाली विकास हुआ जो औपचारिक विद्यालयों के लिए

बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह विकास है कि पीडब्ल्यूडी अधिनियम में मूल रूप से सात प्रकार की विकलांगता शामिल की गई थी पर आरपीडब्ल्यूडी में 21 विभिन्न प्रकार की विकलांगता शामिल की गई हैं। पहली बार स्वलीनता (ऑटिज़्म), विशिष्ट अधिगम अशक्तता और बोलने व भाषा की परेशानी वाले बच्चों को समावेशी शिक्षा के योग्य माना गया।

6 वर्षीय साजन को 3 साल की उम्र में एक व्यापक विकास सम्बन्धी विकार (सामाजिक, भाषा और संचार कौशल से जुड़ा एक विकार) से पीड़ित बताया गया था। साजन एक अनिच्छुक क़िस्म का शिक्षार्थी है जो हर दिन स्कूल में होने वाले बदलावों के साथ संघर्ष करता है। जब उसकी माँ ने उसके शिक्षक के साथ बातचीत की तो पता चला कि वह कक्षा में पाँच मिनट से अधिक समय तक बैठ नहीं पाता और सामाजिक दृष्टि से भी वह सबसे अलग-थलग रहता है, जिसकी वजह से वह डराने-धमकाने का शिकार हो जाता है। शिक्षक उसे रोज़ गृहकार्य देते हैं ताकि वह अपने लेखन और गणितीय कौशलों में सुधार कर सके और अपनी कक्षा की उपलब्धियों के मानकों को पूरा करने में सक्षम हो सके। इसके कारण घर पर भी उसका तनाव बढ़ा है। साजन को चित्र बनाना, बिल्डिंग ब्लॉक के साथ खेलना, इमारतों के सुन्दर डिज़ाइन बनाना, बच्चों की खेल-सीढ़ी पर चढ़ना और झूले पर झूलना पसन्द है। लेकिन अगर स्कूल के अधिकारियों ने सभी के लिए एक ही तरह के पाठ्यक्रम को सही मानकर उसी का पालन करना जारी रखा तो इस तरह के 'करके सीखने' के अवसर कम हो जाएँगे।

एक समावेशी शिक्षा परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो साजन और उसके जैसे दूसरे बच्चे कक्षा की विविधता में एक और आयाम जोड़ते हैं, जिसके लिए शिक्षक तैयार नहीं हैं। इस तरह की समस्याओं की शुरुआती पहचान स्कूल प्रणाली का एक मान्यता प्राप्त हिस्सा भी है, यह एक प्रगतिशील क़दम है क्योंकि बचपन की विकलांगता का शुरुआती सालों में पता नहीं चल पाता। साजन और उनके जैसे अन्य लोगों को प्रारम्भिक हस्तक्षेप और प्रोत्साहन से फ़ायदा होगा। अफ़सोस की बात है कि वे इन समस्याओं का सामना करने के कारण स्कूल छोड़ देते हैं। नए अधिनियम में परिचारकों, परिवहन, शारीरिक और संचार सम्बन्धी अड़चनों की बुनियादी आवश्यकताओं पर एक उचित समायोजन के रूप में ध्यान दिया जाएगा। अगर पाठ्यचर्या का अनुकूलन किया जाता तो साजन अपनी पसन्द की गतिविधियों का उपयोग करके अपने ध्यान देने की अवधि को बढ़ाना सीख सकता था, बाक़ी की कक्षा के समान सीखने के प्रतिफलों पर काम कर सकता था। उसे मदद के लिए एक शिक्षण सहायक के पर्यवेक्षण की आवश्यकता हो सकती है, जो दोस्त बनाने या समय पर किसी पहेली को पूरा करने में उसकी सहायता करे। इन सभी बातों को अब 'शैक्षिक संस्थानों के कर्तव्यों' और 'समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए विशिष्ट उपायों' के हस्तक्षेप के रूप में अधिनियम में धारा 17 और 18 के तहत सूचीबद्ध किया गया है।

इन सबके साथ आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम विकलांगता की परिभाषा में 'बाधाओं या अड़चनों' की धारणा भी प्रस्तुत करता है। यूएनसीआरपीडी इस बात पर ज़ोर देता है कि विकलांगता की समस्या व्यक्ति में नहीं बल्कि उसके वातावरण द्वारा लगाई गई 'बाधाओं' में है। साजन के मामले में उससे यह अपेक्षा करना सही नहीं था कि वह लम्बे समय तक कक्षा में बैठे क्योंकि वह इसके लिए तन्त्रिका सम्बन्धी कारणों से या न्यूरोलॉजिकल रूप से तैयार नहीं है। उसके शिक्षक को चाहिए कि वह साजन से ऐसी गतिविधियाँ करवाएँ जिनमें खेल-खेल में सीखना सम्भव हो, जो कार्य दिए जाएँ उनकी अवधि कम हो और जब वह अपना काम कर ले तो उसकी भरपूर तारीफ़ की जाए। कक्षा में उसकी भागीदारी बढ़ाने के लिए शिक्षक को अभिवृत्ति और संचार सम्बन्धी ऐसे कारकों को दूर करना होगा जो बच्चे को दूसरों से अलग करते हैं, उनका बहिष्करण करते हैं और उनके स्थान पर ऐसे कारकों को बढ़ाना होगा जो आशा और आशापूर्ण नज़रिए को बढ़ाते हैं।

इसलिए प्रशासक और शिक्षक इस प्रकार की 'उचित व्यवस्था' के बारे में अर्थात अपनी समावेशी स्कूल विकास योजना में पाठ्यक्रम या स्कूल के वातावरण में समायोजन या संशोधन के बारे में बता सकते हैं। यह साजन जैसे बच्चों का समावेशन करने के लिए एक उदाहरण बनेगा। अधिनियम के ढाँचे के भीतर 'समावेशी स्कूल विकास के लिए उचित समायोजन' हेतु नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :

- बहुत अधिक सहायता की आवश्यकताओं वाले बच्चे के लिए परिवहन और परिचर
- सुलभता के साथ उपयोग में लाए जा सकने वाली इमारतों, परिसरों, शौचालयों और अन्य सुविधाओं की व्यवस्था
- अधिगम अशक्तता वाले बच्चों के लिए शैक्षणिक समर्थन
- अकादमिक और सामाजिक विकास को बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत समर्थन
- संशोधित पाठ्यपुस्तकें : उदाहरण के लिए, बरखा सीरीज़, एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित सप्लीमेन्टरी ग्रेडेड रीडर सीरीज़
- बोलने और संचार विकार वाले बच्चों के लिए वैकल्पिक और संवर्धी संचार प्रणाली
- परीक्षा प्रणाली में संशोधन : अतिरिक्त समय, कंप्यूटर का उपयोग, लिखने वाले की व्यवस्था

आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम की सबसे प्रगतिशील विशेषता यूएनसीआरपीडी द्वारा प्रचारित 'यूनिवर्सल डिज़ाइन' की अवधारणा है। 'यूनिवर्सल डिज़ाइन' सभी लोगों द्वारा उपयोग करने योग्य उत्पादों और वातावरणों का डिज़ाइन है जिसका उपयोग एक बड़ी सीमा तक अनुकूलन या विशेष डिज़ाइन की आवश्यकता के बिना किया जा सकता है' (मेस, 1988)। स्कूलों में इसका उपयोग सीखने का लचीला वातावरण बनाने के लिए किया जा सकता है जिसमें विविध शिक्षा प्रोफ़ाइल और ज़रूरतों वाले सभी शिक्षार्थी शामिल हैं। यदि शिक्षण-अधिगम के एक जैसे तरीक़े साजन और कक्षा के अन्य सभी विद्यार्थियों को सुलभ हों तो साजन सीखने के आनन्ददायक माहौल में बड़ा हो सकता है। इसलिए प्रत्येक शिक्षक का यह दायित्व है कि वे अपनी कक्षा में विविधता की प्रकृति को समझें। शिक्षक का आत्म-चिन्तन कक्षा को प्रोत्साहित और विकासशील बनाने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

यूनिवर्सल डिज़ाइन कक्षा हस्तक्षेप के कुछ उदाहरण जो सभी शिक्षार्थियों को लाभ पहुँचा सकते हैं :

- पहुँच : रैंप, बैठने की व्यवस्था, परिवहन, इलेक्ट्रॉनिक किताबें
- भागीदारी : दृश्य कार्यक्रम, सचित्र शब्दावली, भागीदारों के साथ काम करना, परियोजना कार्य, कार्य अनुभव, आउटडोर खेल, दृश्य और प्रदर्शन कला
- अभिव्यक्ति के तरीक़े : लिखित, मौखिक प्रतिक्रियाएँ, कला, नाटक, मल्टीमीडिया प्रस्तुतिकरण

आरटीई अधिनियम और आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम एक साथ कैसे काम करते हैं?

यह अनुभाग दो अलग-अलग दृष्टिकोणों से आरटीई अधिनियम और आरपीडब्ल्यूडी अधिनियम के बीच के सम्बन्धों की जाँच करता है। पहला, विकलांगता अधिकार समर्थकों के व्यापक दृष्टिकोण के माध्यम से, जो सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) जैसे राष्ट्रीय कार्यक्रमों को प्रभावित करने वाले पुराने कल्याणकारी दृष्टिकोण के बारे में सोचते हैं। दूसरा, कणिका की केस स्टडी (आगे दी गई है) के माध्यम से, समावेशन के व्यावहारिक पहलुओं को सूचीबद्ध करते हुए।

विकलांग बच्चों की शिक्षा : कल्याण में ऐतिहासिक मोरचाबन्दी

2001 में भी जब सभी के लिए शिक्षा के मौलिक अधिकार की गारंटी के लिए संविधान में संशोधन किया गया था तब विकलांग बच्चों की शिक्षा को राज्य कल्याण के विषय के रूप में माना गया था। कल्याण में इस तरह की प्रणालीगत मोरचाबन्दी के परिणामस्वरूप सभी के लिए शिक्षा अभियान, एसएसए जैसे प्रमुख कार्यक्रम के भीतर भी पृथक सेवाओं का संरक्षण हुआ है। विकलांग अधिकार कार्यकर्ता चिन्तित हैं कि अत्यधिक सहायता की आवश्यकताओं वाले बच्चों को स्कूल में नामांकित तो किया जाता है, लेकिन अन्ततः वे एसएसए के तहत घर पर ही रखकर किए जाने वाले कार्यक्रमों में पहुँच जाते हैं। यह आरटीई अधिनियम की भावना के ख़िलाफ़ है।

बेंचमार्क अक्षमता और अत्यधिक सहायता की आवश्यकताओं वाले बच्चों (40 प्रतिशत विकलांगता के साथ) के लिए 'क्षमताओं का विकास' की अवधारणा के साथ भी यही होता है जिन्हें अपने दैनिक कार्य करने के लिए भी बहुत सहायता की आवश्यकता होती है। विकलांगता अधिकार कार्यकर्ता पूछते हैं कि क्या सामाजिक बाधाओं को नज़रअन्दाज़ किया जा रहा है। विकलांगता अधिकार कार्यकर्ता मीनाक्षी बालासुब्रह्मण्यम कहती हैं, 'लोगों की अशक्तता के बारे में हमारी अपनी जो समझ है, उसके आधार पर हम उन्हें एक विशेष स्तर पर रखते हैं। इससे व्यक्ति की क्षमताओं के विकास को सम्मान नहीं मिलेगा, क्योंकि हम उन कारकों पर ध्यान केन्द्रित नहीं करते हैं जो किसी दिए गए वातावरण में व्यक्ति के विकास को प्रतिबन्धित करते हैं।' मीनाक्षी बालासुब्रह्मण्यम, इक्वल्स : सेंटर फॉर प्रोमोशन ऑफ़ सोशल जस्टिस प्रोजेक्ट्स कोऑर्डिनेटर हैं।

विकलांग जनों को पेशेवर चिकित्सकों द्वारा जो प्रमाण पत्र जारी किए जाते हैं वे स्कूलों में प्रवेश के लिए अप्रासंगिक हैं : ज़ोर तो शैक्षिक आकलन पर होना चाहिए। विकलांगता संसाधन केन्द्र, विद्या सागर की उपनिदेशिका दीप्ति भाटिया के अनुसार, 'प्रवेश के समय बच्चे का आकलन इसलिए किया जाना चाहिए ताकि बच्चे के लिए सही वातावरण तैयार किया जा सके न कि इसलिए कि वातावरण के लिए बच्चे को तैयार किया जाए।' वे कहती हैं कि परीक्षा प्रणाली भी विकसित होनी चाहिए। आरटीई बाल केन्द्रित और गतिविधि-आधारित पाठ्यक्रम के आधार पर सीखने की गुणवत्ता का उल्लेख करता है, और आकलन की विधियों में भी बदलाव करना चाहिए।

समग्र स्कूल दृष्टिकोण

कणिका की कहानी यह बताती है कि अत्यधिक सहायता की आवश्यकता वाले बेंचमार्क विकलांग बच्चे के समावेशन में स्कूल की क्या भूमिका हो सकती है। कणिका का जन्म समय से पहले ही हो गया था और उसी समय से उसे सेरेब्रल पाल्सी से ग्रस्त बताया गया था। गहन शारीरिक और वाणी सम्बन्धी उपचार के बाद उसका विकास हुआ (दो साल की देरी के साथ)। 6 साल की उम्र में उसे उसके पड़ोस के स्कूल में कक्षा 1 में भर्ती कराया गया था; वह अब कक्षा 3 में है। इस स्कूल के प्रगतिशील इतिहास के कारण पाठ्यचर्या के समायोजन जैसे

शिक्षण सहायक, कम पाठ्यक्रम, लेखन के लिए अतिरिक्त समय आदि कक्षा की दिनचर्या का हिस्सा हैं। कणिका कला, नृत्य और नाटक जैसी गतिविधियों में अपने सभी सहपाठियों के साथ भाग लेती है और उसे स्कूल में एक सफल छात्रा के रूप में जाना जाता है।

कणिका जैसी अत्यधिक सहायता की आवश्यकता वाले अधिक विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए, स्कूलों को चाहिए कि वे विविधता का समर्थन करने वाली एक सहयोगी संस्कृति बनाएँ। समावेशी स्कूली शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए यहाँ कुछ विचार दिए गए हैं :

- समावेशन के सूचकांक जैसे साधनों का उपयोग करके स्कूलों का आकलन करना
- विकलांगजनों के साथ बातचीत करने के लिए शिक्षकों, प्रशासनिक कर्मचारियों तथा स्कूल समुदाय के लिए अवसरों का निर्माण करना
- शिक्षकों, विशेष शिक्षकों और शिक्षण सहायकों के बीच सहयोग के लिए दिशानिर्देशों का निर्माण करना
- सहयोगपूर्ण टीमवर्क को बढ़ावा देने वाले प्रशिक्षण कार्यक्रम विकसित करना
- सहायक प्रौद्योगिकी और संचार के लिए संसाधनों को आवंटित करना
- मुख्यधारा के स्कूलों की सहायता करने के लिए विकलांगता संसाधन केन्द्रों के साथ मिलकर कार्य करना
- स्कूल के वातावरण की अभिगम्यता का परीक्षण करना
- विभेदित शिक्षण, सहकारी अधिगम, पाठ्यचर्या समायोजन में सेवा-पूर्व और सेवाकालीन कार्यक्रमों के माध्यम से शिक्षकों को प्रशिक्षित करना
- समावेशी कक्षा में सह-शिक्षण को प्रोत्साहित करना
- शिक्षकों को शिक्षण की सर्वोतम प्रथाओं पर चर्चा करने के लिए नियमित रूप से मिलने के लिए प्रोत्साहित करना
- पाठ्यचर्या और आकलन की तकनीकों को अनुकूलित करना। इलेक्ट्रॉनिक पोर्टफ़ोलियो का प्रयोग करना
- विकलांगता वाले बच्चों के माता-पिता को शामिल करना

निष्कर्ष

सहयोग समावेशी शिक्षा की आधारशिला है। यह एक प्रक्रिया है और हस्तक्षेप की शृंखलाओं का अन्तिम उत्पाद नहीं है। स्कूल समुदाय के भीतर संवाद और आत्म-चिन्तन से क्रियान्वयन की प्रक्रिया के बारे में बेहतर समझ का विकास होगा। विकलांग बच्चों को स्कूल के साथ जुड़ने की उतनी ही ज़रूरत होती है जितनी और सभी बच्चों को। अभिवृत्तियों पर अपर्याप्त आत्म-चिन्तन और शिक्षकों (सामान्य और विशेषज्ञ), माता-पिता, बच्चों और प्रशासकों जैसे हितधारकों के बीच सहयोग करने के अपर्याप्त अवसरों के कारण अन्तर्विरोध पैदा होते हैं। सहभागितापूर्ण जुड़ाव के माध्यम से सम्मानित संवाद जो संवेदी कर्मियों को विकसित करने में मदद करे, विभेदित शिक्षण रणनीतियाँ, वैकल्पिक संचार के तरीक़े, माता-पिता और समुदाय की सक्रिय भागीदारी तथा समावेशी शिक्षा की प्रगति के लिए प्रतिबद्ध प्रशासन महत्त्वपूर्ण है।

References:

1 Booth, T and Ainscow, M. Index for Inclusion: Developing learning and partici-pation in schools (2002) http://www.eenet.org.uk/resources/docs/Index%20English.pdf

2 Curricular Adaptations for Children with Special Needs, Confluence, February 2016, Vol 18, Sarva Shiksha Abhiyan http://mhrd.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/document-reports/Confluence.pdf

3 Duncan, R. Universal Design http://universaldesign.ie/What-is-Universal-Design/Conference-Proceedings/Universal-Design-for-the-21st-Century-Irish-International-Perspectives/

4 Gohain, Manash Pratim, 'NCERT Books to make classroom inclusive', The Times of India, April 22, 2017 https://timesofindia.indiatimes.com/city/delhi/ncert-books-to-make-classroom-inclusive/articleshow/58305822.cms

5 Ikeda, D. http://www.ikedaquotes.org

6 Including Children with Special Needs, Primary Stage, NCERT, 2014 http://www.ncert.nic.in/pdf_files/SpecialNeeds.pdf

7 Julka, A, Index for Developing Inclusive Schools, NCERT http://www.ncert.nic.in/departments/nie/degsn/pdf_files/INDEX%20FINAL%20FOR%20WEBSITE.pdf

8 KPMG, Assessing the Impact of the Right to Education Act, March 2016 https://assets.kpmg.com/content/dam/kpmg/pdf/2016/03/Assessing-the-impact-of-Right-to-Education-Act.pdf

9 Learning Indicators and Learning Outcomes at the Elementary Stage, NCERT 2014. http://www.dsek.nic.in/Misc/learningoutcome.pdf

10 Mohamed Imranullah S. 'Advantages and disadvantages of RTE Act', The Hindu, 21 May 2013 http://www.thehindu.com/news/cities/Madurai/advantages-and-disadvantages-of-rte-act/article4735501.ece

11 Naidu, A, Collaboration in the Era of Inclusion, Chapter on Reform, Inclusion and Teacher Education, Ed. Forlin C., Ming-Gon J.L., Routledge, 2008.

12 Naidu, A, 'Collaboration and Dialogue: The Essence of An Inclusive Practice', paper presented at the Conference on Inclusion in Education: The Implementa-tion of Article 24 of the United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities, University of Hong Kong, 2009

13 Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009 http://www.advocatekhoj.com/library/bareacts/rightofchildrentofree/index.php?Title=Right%20of%20Children%20to%20Free%20and%20Compulsory%20Education%20Act,%202009

14 Singhal, N, Education of children with disabilities in India and Pakistan: An analysis of developments since 2000 (2015) http://unesdoc.unesco.org/images/0023/002324/232424e.pdf

15 Sharma, S, 'NCERT brings out learning indicators for classes 1 to VIII', The Indian Express, July 28, 2015 http://indianexpress.com/article/cities/delhi/ncert-brings-out-learning-indicators-for-classes-i-to-viii/

16 Snyder C.R., Lopez S.J., Pedrotti J.T. Positive Psychology, Second Edition, Sage Publications India Pvt Ltd, 2011.

17 The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016, http://www.ncpedp.org/sites/all/themes/marinelli/documents/Rights%20of%20Persons%20with%20Disabilities%20(RPWD)%20Act%202016.pdf

18 The Persons with Disabilities (Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation) Act, 1995 http://thenationaltrust.gov.in/upload/uploadfiles/files/Persons%20with%20Disability%20Act%201995.pdf

---

अनुराधा नायडू ने हाल ही में हांगकांग में ग़ैर-चीनी भाषी आबादी की सेवा करने वाले हांगकांग सरकार के कार्यक्रम द्वारा समर्थित एक प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्र के तत्वावधान में, 0-6 आयु वर्ग के विशेष ज़रूरतों वाले बच्चों के साथ प्रारम्भिक हस्तक्षेपकर्ता के रूप में काम किया। उन्होंने 20 साल पहले विद्या सागर,चेन्नई में एक विशेष शिक्षक के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त किया था और वहाँ उनका परिचय अन्तःविषयक दृष्टिकोण से हुआ। इस पर चिन्तन करते हुए उनका कार्य और विकसित हुआ है। वे निरन्तर प्रयास करती हैं कि अपने विद्यार्थियों के लिए सीखने की एक मज़ेदार प्रक्रिया में उपचार, शिक्षा और वैकल्पिक संचार को एक साथ मिला सकें। उनसे *anuradha.naidu@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

एक सुरक्षित स्थान के रूप में स्कूल : हमारी स्थिति

अर्चना मेहेन्देले और स्वागता राहा





परिचय

शिक्षा के सार्वभौमिकरण और नीति पर सार्वजनिक रूप से जो चर्चाएँ होती हैं वे मुख्य रूप से स्कूलों तक पहुँच में सुधार और स्कूलों में बच्चों के टिके रहने तथा भागीदारी सुनिश्चित करने पर केन्द्रित रहती हैं। बच्चों का निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009 (आरटीई अधिनियम) और सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) के प्रमुख कार्यक्रम मुख्य रूप से शिक्षा के अधिकार की बात करते हैं जिसके तहत सरकारी/पड़ोस के स्कूलों में प्रवेश और निर्धारित बुनियादी ढाँचे और शिक्षकों वाले स्कूलों में प्रवेश के अधिकार की गारंटी दी गई है। हालाँकि, आरटीई अधिनियम और एसएसए शिक्षा के भीतर अधिकारों पर कम ध्यान देते हैं। लेकिन स्कूलों के भीतर बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा से सम्बन्धित प्रावधान और यह सुनिश्चित करना कि स्कूल सुरक्षित स्थान बन जाएँ – ये सारी बातें विभिन्न अन्य क़ानूनों, सरकारी अधिसूचनाओं, कार्यक्रमों और केन्द्रीय व राज्य सरकारों द्वारा तैयार की गई योजनाओं में पाई जा सकती हैं। इस लेख में इन प्रावधानों पर चर्चा की गई है और वास्तव में जो कुछ हो रहा है व उसके बारे में हम जो जानते हैं, उसे प्रस्तुत किया गया है।

प्रावधान और क्रियान्वयन

बच्चों से सम्बन्धित क़ानून शारीरिक दण्ड, बच्चों के ख़िलाफ़ यौन अपराध और स्कूलों में क्रूरता को सम्बोधित करते हैं। नीति के क्षेत्र में देखें तो मीडिया द्वारा रिपोर्ट किए गए उल्लंघन या दुर्व्यवहार के मामलों के कारण परिपत्रों, दिशानिर्देशों और परामर्शों का निर्माण किया गया। उदाहरण के लिए 2010 में कोलकाता के एक प्रमुख स्कूल में 13 वर्षीय लड़के ने अपने शिक्षक द्वारा पीटे जाने के बाद आत्महत्या कर ली।[1] तब राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग (एनसीपीसीआर) ने इसकी जाँच की और शारीरिक दण्ड पर दिशानिर्देश[2] का निरूपण हुआ, जिसे मानव संसाधन विकास मंत्रालय (एमएचआरडी) द्वारा अपनाया गया।[3]

शारीरिक दण्ड

बच्चों के लिए मुफ़्त एवं अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 की धारा 17 (1) में कहा गया है कि बच्चों को किसी भी तरह से शारीरिक दण्ड या मानसिक उत्पीड़न नहीं दिया जाना चाहिए, हालाँकि इन शब्दों में से कोई भी शब्द अधिनियम में परिभाषित नहीं किया गया है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने कहा कि दिल्ली शिक्षा नियमों के प्रावधानों, जिनके अन्तर्गत शारीरिक दण्ड की अनुमति दी गई, ने संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन किया और उन्हें अस्वीकार किया।[4] उच्च न्यायालय ने आगे यह भी कहा कि 'राज्य यह भी सुनिश्चित करे कि बच्चों को स्कूलों में शारीरिक दण्ड न दिया जाए और वे स्वतन्त्रता और गरिमापूर्ण माहौल में शिक्षा प्राप्त करें और भय से मुक्त रहें।'

मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा आरटीई अधिनियम, 2009 (एनसीपीसीआर दिशानिर्देशों के आधार पर) की धारा 35 (1) के तहत स्कूलों में शारीरिक दण्ड को ख़त्म करने के लिए दी गई सलाह, शारीरिक दण्ड की रोकथाम और निवारण तन्त्र पर मार्गदर्शन प्रदान करती है।[5] इसमें शारीरिक दण्ड के अन्तर्गत (अ) शारीरिक दण्ड, (ब) मानसिक उत्पीड़न और

---

[1] *'' एनसीपीसीआर चाहता है कि राज्य शारीरिक दण्ड पर दिशानिर्देशों का पालन करें'' इकोनॉमिक टाइम्स, 17 जुलाई, 2010, https://economictimes.indiatimes.com/news/राजनीति-और-राष्ट्र /एनसीपीसीआर-चाहता है कि-राज्य-से-शारीरिक दण्ड पर-दिशानिर्देशों का-पालन करें articleshow / 6178764.cms*

[2] *एनसीपीसीआर., स्कूलों में शारीरिक दण्ड को ख़त्म करने के लिए दिशानिर्देश, http://www.ncpcr.gov.in/view_file.php?fid=108*

[3] *आरटीई अधिनियम, 2009 की धारा 35 (1) के तहत स्कूलों में शारीरिक दण्ड को ख़त्म करने के लिए एमएचआरडी,सलाहकार घोषणा। मानव संसाधन विकास मंत्रालय http://www.education.goa.gov.in/MHRD%20Advisory%20for%20Eliminating%20Corporal%20Punishment%20in%20Schools.pdf पर उपलब्ध*

[4] *पेरेन्ट्स फोरम फॉर मीनिंगफुल एजुकेशन V. यूनियन ऑफ इंडिया, AIR 2001 दिल्ली 212*

[5] *http://www.education.goa.gov.in/MHRD%20Advisory%20for%20Eliminating%20Corporal%20Punishment%20in%20Schools.pdf पर उपलब्ध*

(स) भेदभाव को शामिल किया गया है और स्कूलों से यह अपेक्षा की गई है कि उनके पास परेशान करने वाले (उदाहरण के लिए कक्षा में अन्य बच्चों को परेशान करना, झूठ बोलना, चोरी करना इत्यादि) और ऐसे आक्रामक व्यवहार जिससे दूसरों को चोट या ज़ख़्म लगें (उदाहरण के लिए धमकाना, साथियों के प्रति आक्रामकता, चोरी करना, दूसरों के अधिकारों का उल्लंघन करना, तोड़-फोड़ करना आदि) से निपटने हेतु शिक्षकों का मार्गदर्शन करने के लिए एक स्पष्ट आधिकारिक प्रक्रिया या प्रणाली (प्रोटोकॉल) होना आवश्यक है।[6] दी गई सलाह के अनुसार स्कूल प्रबन्धन को इस प्रकार के नियमित प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए जिनसे शिक्षकों को शिक्षा के लिए अधिकार-आधारित दृष्टिकोण, शारीरिक दण्ड का उन्मूलन और बच्चों के साथ सकारात्मक जुड़ाव की जानकारी मिल सके।

ऐसा होने पर भी एमएचआरडी या राज्य सरकारों द्वारा इस सलाह के क्रियान्वयन की निगरानी करने के लिए कोई तंत्र स्थापित नहीं किया गया है और स्कूलों के लिए भी यह आँकड़ा सरकार को देना अनिवार्य नहीं है।

यौन उत्पीड़न

यौन अपराध से बच्चों का संरक्षण अधिनियम, 2012 (प्रोटेक्शन ऑफ़ चिल्ड्रेन फ्राम सेक्सुअल अफेंसेस एक्ट यानी पॉक्सो अधिनियम) के तहत एक शैक्षिक संस्थान के प्रबन्धन या कर्मचारियों के द्वारा यौन कृत्य या यौन उत्पीड़न का आचरण एक गम्भीर अपराध है जिसके लिए गम्भीर दण्ड का प्रावधान है।[7] पॉक्सो अधिनियम में यह प्रावधान है कि यदि कोई व्यक्ति यौन उत्पीड़न की सम्भावना या उसकी पक्की जानकारी रखता है तो उसकी ज़िम्मेदारी बनती है कि इसकी रिपोर्ट नजदीकी पुलिस थाने में दे।[8] यौन अपराध की रिपोर्ट न करना दण्डनीय अपराध है जिसके लिए छह महीने तक का कारावास या आर्थिक दण्ड या दोनों दिए जा सकते हैं।[9] यदि किसी संस्था का प्रभारी अपने अधीनस्थ किसी कर्मचारी द्वारा किए गए अपराध की रिपोर्ट नहीं करता तो उस व्यक्ति को एक वर्ष तक की अवधि का कारावास और जुर्माना हो सकता है।[10] स्कूलों के भीतर अगर कोई यौन हिंसा होती है और पुलिस में उसकी रिपोर्ट नहीं की जाती तो स्कूलों के मुख्याध्यापकों और ट्रस्टी के ख़िलाफ़ यह प्रावधान लागू किया गया है। इस बात पर क़ानूनी विवाद है कि रिपोर्ट करने में विफल होने पर किसी व्यक्ति के ख़िलाफ़ कब मामला दर्ज किया जा सकता है। छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय ने, एक स्कूल के मुख्याध्यापक के ख़िलाफ़ एक मामले में कहा कि बिना किसी सन्देह के प्राथमिक अपराध साबित होने के बाद ही रिपोर्ट न करने में विफलता के लिए किसी व्यक्ति के ख़िलाफ़ मुकदमा चलाया जाना चाहिए।[11] मगर इस तर्क को बम्बई हाईकोर्ट ने उस मामले में ख़ारिज कर दिया जिसमें स्कूल चलाने वाले ट्रस्ट के निदेशक ने पीड़ित और उसके रिश्तेदारों से कहा कि वे उस व्यक्ति के साथ यह मामला सुलझा लें जिसने कथित तौर पर पीड़ित के साथ बलात्कार किया था।[12] बम्बई हाईकोर्ट ने कहा कि छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई व्याख्या से पॉक्सो अधिनियम का यौन अपराधों से बच्चों को बचाने का जो उद्देश्य है, वह नाकाम हो जाएगा।

राज्य सरकारें अभी भी पॉक्सो अधिनियम के प्रभावी क्रियान्वयन को लेकर संघर्षरत हैं। हालाँकि अधिनियम विशेष सरकारी अभियोजकों की बात करता है लेकिन ऐसी कोई नियुक्ति नहीं की गई है। नियमित अभियोजक और सत्र न्यायालय अन्य आपराधिक मामलों के साथ इन मामलों से भी निपट रहे हैं।[13] इन अदालतों का डिज़ाइन बच्चों के लिए मित्रवत नहीं है या विकलांगजनों के लिए सुलभ नहीं है। जाँच और परीक्षण के दौरान बच्चे की सहायता के लिए सहायक व्यक्तियों का पैनल सभी ज़िलों में उपलब्ध नहीं है।[14] पीड़ित और गवाह संरक्षण प्रणाली की अनुपस्थिति में बच्चों और उनके परिवारों को आरोपी के दबाव और धमकी का सामना करना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप वे कोर्ट में

[6] *आर.टी.ई.अधिनियम, 2009 की धारा 35 (1) के तहत स्कूलों में शारीरिक दण्ड को ख़त्म करने के लिए सलाहकार घोषणा, पैरा 7.1.13-14*

[7] *पॉक्सो अधिनियम, धारा 5 (एफ) 7,9 (एफ) और 10*

[8] *पॉक्सो अधिनियम, धारा 19 (1)*

[9] *पॉक्सो अधिनियम, धारा 21 (1)*

[10] *पॉक्सो अधिनियम, धारा 21 (2)*

[11] *कमल प्रसाद पाटडे V.छत्तीसगढ़ राज्य,रिट पेटिशन(Cr.)No.8 of 2016*

[12] *बालासाहेब @ सूर्यकांत यशवंतराव माने V. महाराष्ट्र राज्य, क्रिमिनल रिविज़न एप्लिकेशन न. 69 of 2017 22 मार्च 2017 को निर्णीत*

[13] *सोनिया परेरा और स्वागता राहा, स्ट्रक्चरल कम्प्लायन्स ऑफ स्पेशल कोर्ट्स विद द पॉक्सो एक्ट, 2012, CCL-NLSIU में अध्याय1. pp.*1&10*, पॉक्सो एक्ट का क्रियान्वयन, 2012 विशेष कोर्ट द्वारा : चुनौतियाँ और मुद्दे ; (2018) https://www.nls.ac.in/ccl/jjdocuments/posco2012spcourts.pdf पर उपलब्ध*

[14] सोनिया परेरा और स्वागता राहा,प्रोसीजरल कम्प्लायन्स ऑफ स्पेशल कोर्ट्स विद द पॉक्सो एक्ट, 2012, *CCL-NLSIU* में अध्याय 2ए pp.*11-*.29ए पॉक्सो एक्ट का क्रियान्वयन, 2012 विशेष कोर्ट द्वारा : चुनौतियाँ और मुद्दे (2018) *https://www.nls.ac.in/ccl/jjdocuments/ posco2012spcourts.pdf* पर उपलब्ध

अपने बयान वापस ले लेते हैं। मिसाल के तौर पर दिल्ली में पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत विशेष अदालतों के कामकाज पर एक अध्ययन से पता चलता है कि आठ मामलों में आरोपी एक शिक्षक था और छह मामलों में बच्चे पक्षद्रोही हो गए।[15] असम में इसी तरह के एक अध्ययन में कक्षा 2 के दो विद्यार्थियों ने आरोप लगाया कि एक शिक्षक ने उनके गुप्तांगों को छुआ था। किन्तु अदालत में विद्यार्थियों ने कहा कि शिक्षक ने सभी बच्चों के प्रति स्नेह दिखाया था, यौन उत्पीड़न नहीं किया।[16] महाराष्ट्र में पॉक्सो विशेष अदालतों के 1330 निर्णयों के अध्ययन में 3% शिक्षक आरोपी पाए गए और इन मामलों में से 53% में पीड़ित बच्चे पक्षद्रोही हो गए।[17] जिन मामलों में आरोपी बच्चे पर अधिकार जताने की स्थिति में होते हैं, उनसे यह स्पष्ट होता है कि स्कूल के भीतर भी मज़बूत समर्थन प्रणालियों की आवश्यकता है ताकि बच्चे और परिवारों को बिना किसी डर और जबरदस्ती या दबाव के सुनवाई में भाग लेने के लिए सक्षम बनाया जा सके।

क्रूरता

धारा 75, किशोर न्याय (बालकों की देखरेख और संरक्षण) अधिनियम, 2015 (जेजे अधिनियम) के अनुसार बच्चों की देखरेख करने वाला या उन पर नियन्त्रण रखने वाला जो भी व्यक्ति अगर इस तरह से बच्चे पर हमला करेगा, उसका परित्याग करेगा, उसके साथ दुर्व्यवहार करेगा या जानबूझकर उपेक्षा करेगा जिससे बच्चे को अनावश्यक मानसिक या शारीरिक पीड़ा हो तो उसे अपराधी माना जाएगा। अगर अपराध किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है जो बच्चे की देखभाल और सुरक्षा से सम्बन्धित किसी संस्था का कर्मचारी हो या खुद ऐसी संस्था चला रहा हो जैसे कि स्कूल तो सज़ा और भी गम्भीर होती है। आरटीई अधिनियम, 2009 के तहत शारीरिक दण्ड देने के लिए कोई सज़ा नहीं है, लेकिन जेजे अधिनियम के तहत यह प्रावधान स्कूलों में शारीरिक दण्ड के मामलों में भी भारतीय दण्ड संहिता के तहत अन्य प्रासंगिक प्रावधानों के साथ लागू किया जा सकता है। वैसे शारीरिक दण्ड के अलावा बच्चों के ख़िलाफ़ किसी भी अपराध के सम्बन्ध में प्रावधानों को लागू करने में व्यावहारिक रूप से जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है वे इस प्रकार हैं कि क़ानूनी कार्यवाही बहुत लम्बी चलती है और बच्चे तथा बच्चे के परिवार को इस आपराधिक न्याय प्रणाली की प्रक्रिया से लेकर जाने के लिए समर्थन का अभाव है।

स्कूलों में बच्चों की सलामती और सुरक्षा पर सबसे व्यापक दिशानिर्देश, जिसमें रोकथाम तंत्र और निवारण प्रक्रियाएँ भी शामिल हैं, 2014 का एमएचआरडी डी.ओ.[18] है जिसमें कहा गया है कि 'राज्य सरकार द्वारा किसी स्कूल को मान्यता/अनापत्ति प्रमाणपत्र (एनओसी) देने के लिए या राज्य बोर्ड द्वारा किसी स्कूल को संबद्धता देने के लिए एक शर्त यह होनी चाहिए कि उस स्कूल का वातावरण निरापद और सुरक्षित एवं शारीरिक दण्ड और दुर्व्यवहार से मुक्त हो, साथ ही बच्चों की शारीरिक और सामाजिक-मनोवैज्ञानिक सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए वहाँ समुचित निवारक तंत्र भी हो।' स्कूल की चहारदीवारी, आपत्तिजनक सामग्रियों की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाने, पहुँच के लिए अच्छी सड़क, बसों का रंग, भवन सुरक्षा का परीक्षण, मौजूदा इमारतों की संरचनात्मक कमजोरियों को कम करने और हर स्कूल में आपदा की तैयारी तथा प्रतिक्रिया योजना स्थापित करने, शिक्षकों और कर्मचारियों के पूर्ववर्ती सत्यापन, शारीरिक सुरक्षा के अन्तर्गत बाल अधिकारों पर उनकी निरन्तर शिक्षा आदि पहलुओं के बारे में डी.ओ. में काफ़ी विस्तारपूर्वक बताया गया है। स्वास्थ्य और स्वच्छता के तहत दिए हुए दिशानिर्देश इस प्रकार हैं – पेयजल, इसका भण्डारण और शुद्धिकरण, लड़कों और लड़कियों के लिए अलग और काम में आने लायक शौचालय, स्कूल परिसर और बच्चों में सामान्य स्वच्छता की नियमित निगरानी, मध्याह्न भोजन के सुरक्षित और पौष्टिक तरीक़े से खाना बनाने के लिए रसोइए और सहायकों का प्रशिक्षण, बीमारियों, कमियों और नशीली दवाओं के दुरुपयोग का पता लगाने के लिए शिक्षकों द्वारा निवारक प्रयास और सतर्कता। यौन दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में दिशानिर्देशों का यह आदेश है कि बच्चों को 'अच्छे' स्पर्श और 'बुरे' स्पर्श के बीच का अन्तर सिखाया जाए, उन्हें बोलने के लिए प्रोत्साहित किया जाए और स्कूल प्रबन्धन समिति स्कूल का ऐसा अनुकूल वातावरण बनाए जिसमें बच्चे अनुचित व्यवहार की शिकायत कर सकें।

कुछ राज्य सरकारों ने स्कूलों में बच्चों की सुरक्षा की रक्षा

[15] CCL-NLSIU दिल्ली में पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत विशेष अदालतों के कार्य पर अध्ययन की रिपोर्ट, 29 जनवरी 2016, p.68 https: //www.nls ac.in/ccl/jjdocuments/specialcourtPOSCOAct2012.pdf पर उपलब्ध

[16] *CCL-NLSIU,* असम में पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत विशेष अदालतों के कार्य पर अध्ययन, 13 फरवरी 2017, *p.*51 *https://www.nls.ac.in/ ccl/jjdocuments/studyspecialcourtassamPOSCOAct2012.pdf* पर उपलब्ध

[17] *CCL-NLSIU,* महाराष्ट्र में पॉक्सो अधिनियम, 2012 के तहत विशेष अदालतों के कार्य पर अध्ययन, 7 सितम्बर 2017, *pp..67* 69 *pp..67, 69 https: //www.nls.ac.in/ccl/jjdocuments/POSCOMaharashtrasummary.pdf* पर उपलब्ध

[18] *D-O- संख्या 10-11 @ 2014-ईई.4 दिनांक 9 अक्टूबर 2014*

के लिए विशिष्ट क़ानून अपनाया है। उदाहरण के लिए, मई 2014 में दिल्ली बाल अधिकार संरक्षण आयोग ने स्कूलों में बाल यौन शोषण की रोकथाम के लिए दिशानिर्देश जारी किए थे।[19] यह सिद्धान्तों, भर्ती के लिए दिशानिर्देशों, प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण, स्कूलों के भीतर बाल संरक्षण सुरक्षा उपाय जिसमें बाल संरक्षण नीति शामिल है और शिकायत तंत्र को निर्दिष्ट करता है। ये दिशानिर्देश उपचारात्मक हस्तक्षेप भी प्रदान करते हैं जैसे परामर्श सेवाएँ और साथ ही संस्थाओं के भीतर परामर्श केन्द्रों को स्थापित करने की सिफ़ारिश करते हैं। पर ये दिशानिर्देश बाध्यकारी नहीं हैं। स्कूलों में बच्चों के यौन उत्पीड़न के मामलों की पृष्ठभूमि में, 2016 में, कर्नाटक पुलिस (संशोधन) अधिनियम, 2016[20] को इसलिए पारित किया गया ताकि स्कूल की गतिविधियों की प्रभावी ढंग से निगरानी और विनियमन करने के लिए पुलिस को सशक्त बनाया जा सके। धारा 31 (1), जो पुलिस आयुक्त और जिला मजिस्ट्रेट को सार्वजनिक स्थानों पर आदेश के संरक्षण के आदेश देने के लिए अधिकार देता है, को क्लॉज (ज़ेडए) शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था, जिसके द्वारा उन्हें 'बच्चों की निरापदता और सुरक्षा के विनियमन, नियंत्रण और निगरानी' के आदेश देने का अधिकार दिया गया था। वैसे तो किसी भी केन्द्रीय क़ानून में स्कूल सुरक्षा का विशेष रूप से उल्लेख नहीं किया गया है, लेकिन कर्नाटक शिक्षा अधिनियम, 1983 को 2017 में विद्यार्थियों की निरापदता व सुरक्षा के प्रावधानों और दण्ड अनुज्ञाओं को शामिल करने के लिए संशोधित किया गया था और ज़िला शिक्षा नियामक प्राधिकरण को यह अधिकार दिया गया कि अगर कोई संस्था उपर्युक्त प्रावधानों का उल्लंघन करे तो वह किसी सुयोग्य अधिकारी से संस्थाओं की मान्यता या संबद्धता की वापसी के लिए सिफ़ारिश कर सकता है। कर्नाटक उच्च न्यायालय के समक्ष कर्नाटक के सरकारी मान्यता प्राप्त अँग्रेज़ी माध्यमिक विद्यालयों के संयुक्त प्रबन्धन द्वारा उपर्युक्त संशोधन की संवैधानिकता को इस आधार पर चुनौती दी गई है कि यह पॉक्सो अधिनियम और बाल अधिकार संरक्षण आयोग 2005[21] जैसे केन्द्रीय कानूनों की अवहेलना करता है और सुप्रीम कोर्ट के फैसले का उल्लंघन करते हुए ग़ैर सहायता प्राप्त निजी स्कूल को अपने क्षेत्र के तहत लाता है।[22] इसलिए इन प्रावधानों की प्रयोज्यता पर प्रश्न चिह्न लगा हुआ है क्योंकि मामला उच्च न्यायालय के समक्ष लम्बित है। पुलिस सुरक्षा को लागू करने के लिए पुलिस को दिए गए अधिकार के बारे में भी सरोकार पेश किए गए हैं क्योंकि अधिकारियों की बहुतायत और उनके दिशानिर्देश स्कूलों को भ्रमित कर सकते हैं।

स्कूल सुरक्षा और क्रियान्वयन के प्रावधानों पर पूर्वगामी चर्चा के आधार पर हम देखते हैं कि विधायी ढाँचा केवल दण्डात्मक है, जबकि नीति का समग्र ढाँचा रोकथाम के साथ-साथ उल्लंघन को रोकने की प्रणाली पर केन्द्रित है। व्यवस्थित रूप से नीति के ढाँचे के आकलन और उसका अनुपालन सुनिश्चित करने की निगरानी के लिए कोई तरीक़ा नहीं है। साथ ही विभिन्न परिपत्रों और नीतियों के तहत अनिवार्य आवश्यकताओं के अनुपालन के परिणामों पर स्पष्टता की कमी भी है।

मुद्दे

सबसे पहला मुद्दा तो यह है कि इतने सारे नए क़ानूनों, नीतियों और दिशानिर्देशों को अपनाने के बावजूद अभी भी कई बातों को लेकर स्पष्टता की कमी है। जैसे शिक्षकों, कर्मचारियों व प्रबन्धन के बीच किस तरह की साझा ज़िम्मेदारी हो और कौन किस काम के लिए उत्तरदायी है, जब बच्चे स्कूल आते हैं या स्कूल से लौटते हैं तो उस दौरान बच्चों की सुरक्षा के लिए कौन उत्तरदायी है। और सबसे महत्त्वपूर्ण बात वे मूल आवश्यकताएँ हैं जिनकी व्यवस्था स्कूलों को करनी है जैसे निवारक और सुरक्षात्मक उपाय, कर्मचारियों की पृष्ठभूमि की जाँच, निरीक्षण के चैनल और रिपोर्टिंग और ऐसा करने में विफल होने पर उसके परिणाम। अब चूँकि इन्हें सलाह और दिशानिर्देशों के रूप में जारी किया जाता है इसलिए स्कूल इन्हें अनिवार्य नहीं मानते हैं और न ही उन्हें यह लगता है कि इनका पालन नहीं होने पर उन्हें किसी तात्कालिक ख़तरे का सामना करना पड़ सकता है। अधिकांश प्रावधानों में न केवल मानसिकता, दृष्टिकोण और स्कूलों की व्यवस्था करने को लेकर दृष्टिकोण में बदलाव लाने की ज़रूरत है, बल्कि उनमें से कई ऐसे हैं जिनके लिए धन की आवश्यकता भी पड़ती है। इसके अलावा क्या ये निर्देश किसी सरकारी स्कूल या निजी स्कूल, एक विशेष प्रशिक्षण केन्द्र या एक विशेष विद्यालय, आश्रमशाला या एक अन्तरराष्ट्रीय स्कूल के हिसाब से बदलेंगे? दूसरे शब्दों

[19] *http://delhi.gov.in/wps/wcm/connect/983d42804f4cf70fb7e3bf1e0288d2b8/DCPCR+guidelines+14052014pdf?MOD=AJPERES&lmod=301782569* पर उपलब्ध

[20] *http://dpal.kar.nic.in/ao2016/22%20of%202016%20(E).pdf* पर उपलब्ध

[21] WP 33161/2017; स्कूल्स चैलेंज एमेंडमेंट टु कर्नाटका एजुकेशन एक्ट, डेक्कन हेरल्ड, 26 जुलाई 2017, https://www.deccanherald.com/content/624719/schools-challenge-amendment-karnataka-education.html

[22] *एच सी नोटिस टु स्टेट ऑन एमेंडेड कर्नाटका एजुकेशन एक्ट, द हिन्दू, 25 जुलाई 2017,* http://www.thehindu.com/news/national/karnataka/hc-noticeto-state-on-amended-karnataka-education-act/article19360210.ece

में न केवल इन मौलिक मुद्दों पर विचार नहीं किया गया है, बल्कि यह तथ्य भी उपेक्षित ही रह गया है कि जहाँ बच्चे अध्ययन करते हैं उन्हें विशेष रूप से अलग-अलग संस्थाओं की परिस्थिति के अनुरूप बनाया जाना चाहिए।

दूसरा, भले ही स्कूलों को सरकारी अधिसूचनाएँ और दिशानिर्देश प्राप्त हों, फिर भी इन नीतिगत प्रावधानों के अस्तित्व के बारे में सामान्य रूप से माता-पिता और विशेष रूप से माता-पिता-शिक्षक संघों तथा स्कूल प्रबन्धन समितियों के बीच जागरूकता की कमी है। नतीजतन, ये प्रमुख हितधारक स्कूल को उत्तरदायी ठहराने और इन दिशानिर्देशों के अनुपालन की निगरानी करने में असमर्थ हैं।

तीसरा, यह मानना महत्त्वपूर्ण होगा कि स्कूल वे संस्थाएँ हैं जहाँ पदानुक्रम, आज्ञाकारिता और मौनत्व के सम्मान को प्रमुखता दी जाती है और इस रूप में वहाँ उपर्युक्त उल्लिखित प्रावधानों के क्रियान्वयन के लिए एक अत्यधिक विशेष व सूक्ष्म दृष्टिकोण की आवश्यकता है। विद्यालय के भीतर अगर बच्चे का यौन शोषण होता है तो यह बात बाहर होने वाले इस तरह के अपराधों से अलग है। जब बच्चे के साथ विश्वास और अधिकार की स्थिति वाले लोग ख़ुद अपराध करते हैं या जब स्कूल में बच्चे उनकी देखरेख में होते हैं और तब उनके साथ दुर्व्यवहार या हिंसा होती है तो लोको पेरेंटिस नियम (किसी व्यक्ति या संगठन द्वारा माता-पिता के कुछ कार्यों और ज़िम्मेदारियों को लेने की क़ानूनी ज़िम्मेदारी।) के अनुसार उनका दायित्व और बढ़ जाता है। हालाँकि स्कूलों की इसी पदानुक्रमिक सम्बन्ध और मौनत्व की संस्कृति के कारण प्रावधानों को प्रभावी ढंग से क्रियान्वित करना मुश्किल हो जाता है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार ने बाल शोषण पर एक रिपोर्ट तैयार की जिसमें 13 राज्यों (इसमें कर्नाटक शामिल नहीं था) के पाँच श्रेणियों से सम्बन्धित 12,447 बच्चों का साक्षात्कार किया गया। ये पाँच श्रेणियाँ थीं– पारिवारिक वातावरण में रहने वाले बच्चे, स्कूलों के बच्चे, संस्थाओं के बच्चे, काम करने वाले बच्चे और सड़क पर रहने वाले बच्चे। इस रिपोर्ट के अनुसार, 52.94% लड़कों और 47.06% लड़कियों ने माना कि उन्हें किसी-न-किसी तरह के यौन शोषण का सामना करना पड़ा था और स्कूल जाने वाले आधे बच्चों का यौन शोषण किया गया था लेकिन उनमें से अधिकतर ने कोई शिकायत दर्ज नहीं की थी।

यह रिपोर्ट भी हमें स्कूलों में होने वाले दुर्व्यवहार और हिंसा के बारे में बहुत अधिक नहीं बताती है। तो सवाल उठता है कि आखिर हम स्कूलों के भीतर होने वाले दुर्व्यवहार और हिंसा के बारे में पर्याप्त रूप से क्यों नहीं जानते? इसीलिए हमें स्कूलों में पारदर्शिता, उत्तरदायित्व और दुर्व्यवहार व हिंसा दिखाने वाले चैनलों पर सवाल उठाना पड़ता है। विद्यालयों में पदानुक्रम, आज्ञाकारिता और मौन रहने की संस्कृति को देखते हुए हम यह कैसे जानें कि स्कूल के दौरान किसी बच्चे के ख़िलाफ़ कोई अपराध किया गया है? जब हम हाल के दिनों में मीडिया द्वारा रिपोर्ट किए गए मामलों की समीक्षा करते हैं तो पाते हैं कि केवल वे मामले प्रकाश में आते हैं जिसके बारे में बच्चे ने माता-पिता या अन्य भरोसेमन्द वयस्कों को बताया है या माता-पिता ने उनकी चोटों और/या व्यवहार में बदलाव देखा है।

अन्त में हम यह देखते हैं कि स्कूलों के भीतर बच्चों की सुरक्षा के विषय पर क़ानूनी और नीतिगत ढाँचे धीरे-धीरे उभर रहे हैं। स्कूलों के अनुपालन के प्रभावों के बारे में अधिक स्पष्टता होनी चाहिए और माता-पिता और एसएमसी के बीच अधिक जागरूकता की आवश्यकता है।

भले ही निर्धारित मानदण्डों के अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए स्कूलों को सरकारी विनियमन की आवश्यकता हो, एसएमसी और माता-पिता को उत्प्रेरित करके स्कूलों में बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए मूल स्तर पर निगरानी करने की ज़रूरत है।

अर्चना मेहेन्देले एक स्वतंत्र शोधकर्ता हैं जो बाल अधिकार और शिक्षा अधिकार के क्षेत्र में काम कर रही हैं। इसके पहले वे टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ सोशल साइंसेज और नेशनल लॉ स्कूल ऑफ़ इंडिया यूनिवर्सिटी के साथ कार्यरत थीं। उनसे *mehendalearchana@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

स्वागता राहा बाल संरक्षण के क्षेत्र में काम करने वाली एक स्वतंत्र क़ानूनी शोधकर्ता हैं। उन्होंने वेस्ट बंगाल नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ ज्यूरिडिकल साइंसेज से बीए एलएलबी (ऑनर्स) तथा ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से अन्तरराष्ट्रीय मानवाधिकार क़ानून में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की। उनसे *swagataraha@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

मेघालय में शिक्षक-शिक्षा का विकास

बाशान डी.एम. डींगडोह



शिक्षकों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य में शिक्षक-शिक्षा संस्थानों को क्रमिक रूप से स्थापित किया गया। प्राथमिक स्तर के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए थियोलॉजिकल कॉलेज के तहत, पहला शिक्षक-शिक्षा संस्थान चेरापूँजी के वेल्श मिशन द्वारा शुरू किया गया था। 1861 में सरकार ने चेरापूँजी नॉर्मल स्कूल के प्रशिक्षण स्कूल खण्ड को नाँगसॉलिया से शिलांग के साथ मिलाने और मखहर शिलांग में वेल्श मिशन हाई स्कूल से सम्बद्ध करने का फैसला किया। 1946 तक प्रशिक्षण स्कूल ने उसी इमारत में काम किया। स्वतंत्रता के बाद 1947 में तत्कालीन भारत सरकार ने वेल्श मिशन से अनुरोध किया कि वे प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों को प्रशिक्षण दें। बाद में प्रेस्बिटेरियन चर्च के प्रबन्धन के तहत इसे चेरा शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र के रूप में जाना जाने लगा।

बीटीसी की स्थापना से काफ़ी पहले 1906 में सरकार ने तुरा में 30 प्रशिक्षुओं की क्षमता वाला गुरु ट्रेनिंग स्कूल (जीटीएस) शुरू किया था। यह गारो हिल्स में प्राथमिक शिक्षकों की प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करता था, किन्तु 9 दशकों के अस्तित्व के बाद प्रशासनिक समस्या के चलते कुछ साल पहले यह बन्द हो गया।

सेंट एडमंड्स कॉलेज, शिलांग से प्राप्त मौखिक जानकारी के अनुसार, 1934 में स्थापित सेंट एडमंड्स बीटी कॉलेज, शिलांग 1942 में बन्द कर दिया गया।

जब महिलाओं के लिए बीटी कॉलेज की सख़्त ज़रूरत महसूस की गई और इसके लिए अनुरोध किया गया तो 1937 में सेंट मैरीज़ बीटी कॉलेज की स्थापना की गई जो अब सेंट मैरीज़ कॉलेज ऑफ़ टीचर एजुकेशन कहलाता है। 1938 में यह कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध था, फिर 1948 में गौहाटी विश्वविद्यालय से और उसके बाद 1973 में शिलांग के नॉर्थ-ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हुआ। 1998 तक इस कॉलेज में डिग्री कॉलेज के शिक्षकों की मदद से अंशकालिक पाठ्यक्रम आयोजित किए जाते थे। उत्तर-पूर्वी राज्यों में महिलाओं के लिए यह पहला बीटी कॉलेज था जो पिछले 60 वर्षों से माध्यमिक स्तर पर शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में महती सेवा प्रदान कर रहा है। इसे बीएड के सर्वश्रेष्ठ कॉलेजों में से एक माना जाता है। राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षण परिषद के मानदण्डों (एनसीटीई अधिनियम 1993 के तहत) के क्रियान्वयन के बाद से यह कॉलेज, एक पूर्ण विकसित शिक्षक-शिक्षा कॉलेज के रूप में काम कर रहा है जिसमें एक वर्षीय बीएड कोर्स चलाया जाता है और इसे 100 छात्र-शिक्षकों को शिक्षा देने की अनुमति प्राप्त है।

1940 में इंग्लैंड की एक शिक्षाविद और सामाजिक कार्यकर्ता सुश्री मार्गरेट बर्र द्वारा महात्मा गाँधी द्वारा प्रचारित बेसिक शिक्षा या बुनियादी तालीम के तहत पहली बार बेसिक ट्रेनिंग सर्टिफिकेट (बीटीसी) की स्थापना की गई। इसके बाद में बीटीसी की स्थापना पश्चिम गारो हिल्स ज़िले के रोंगखों में 1955 में, 1967 में जेंटिया हिल्स ज़िले के थैडलास्केन में और 1974 में पूर्वी गारो हिल्स के रेसबेलपारा में हुई।

पोस्ट-ग्रेजुएट ट्रेनिंग कॉलेज, शिलांग, अब कॉलेज ऑफ टीचर एजुकेशन (पीजीटी), शिलांग की स्थापना 1964 में माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाने वाले स्नातक शिक्षकों को डिग्री स्तर का प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए की गई थी। प्रारम्भ में यहाँ शिक्षकों की प्रशिक्षण सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एक वर्ष की अवधि का पूर्णकालिक और अंशकालिक पाठ्यक्रम आयोजित किया गया। दोनों कार्यक्रमों में कॉलेज की प्रवेश क्षमता करीब 300 विद्यार्थी प्रति वर्ष थी। राष्ट्रीय शिक्षक-शिक्षण परिषद के मानदण्डों (एनसीटीई अधिनियम 1993 के तहत) के क्रियान्वयन के बाद से यह कॉलेज अब पूर्ण विकसित शिक्षक-शिक्षा कॉलेज के रूप में काम कर रहा है और एक वर्ष का बीएड कार्यक्रम चला रहा है जिसे 100 छात्र-शिक्षकों को शिक्षा देने की स्वीकृति प्राप्त है।

सेवाकालीन शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के उद्देश्य से सरकार द्वारा माध्यमिक या उच्च-प्राथमिक स्तर के लिए दो नॉर्मल प्रशिक्षण स्कूल स्थापित किए गए – एक चेरापूँजी, ईस्ट खासी हिल्स में और दूसरा तुरा, वेस्ट गारो हिल्स में।

कियांग नांगबाह बीटी कॉलेज की स्थापना वर्ष 1981 में जोवई में की गई ताकि ज़िले के माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जा सके। परन्तु एनसीटीई मानदण्डों की

शुरुआत के बाद मानदण्डों का अनुपालन न कर पाने के कारण कॉलेज बन्द हो गया।

राज्य के गारो हिल्स के तीन ज़िलों के शिक्षकों की माध्यमिक स्तर की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए 1993 में वेस्ट गारो हिल्स में गवर्नमेंट कॉलेज ऑफ़ टीचर एजुकेशन, तुरा की स्थापना हुई। वर्तमान में यह कॉलेज एक वर्ष का बीएड कार्यक्रम चला रहा है जिसमें 100 छात्र-शिक्षकों को शिक्षा देने की अनुमति प्राप्त है।

डॉन बोस्को इंस्टीट्यूशन का डॉन बोस्को कॉलेज ऑफ़ टीचर एजुकेशन, तुरा 2005 में स्थापित किया गया जहाँ एनसीटीई से मान्यता और अनुमति के साथ एक वर्ष का बीएड कार्यक्रम शुरू हुआ और यहाँ वर्ष में 100 छात्र-शिक्षकों को प्रवेश दिया जाता है।

इसके अलावा यहाँ निजी ग़ैर-सरकारी प्राथमिक शिक्षक-शिक्षा संस्थान भी थे जैसे सेंट मैरीज़ मैज़ारेलो, जेंटिया हिल्स, जो 1962 में शुरू हुआ और 1977 में लुम जिंगशाई प्रशिक्षण केन्द्र, मारबिशु, ईस्ट खासी हिल्स शुरू हुआ। इन संस्थानों ने राज्य में प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कार्य किया। लेकिन एनसीटीई मानदण्डों के क्रियान्वयन के बाद इन दो संस्थानों ने क्रमशः 1996 और 2000 में काम करना बन्द कर दिया क्योंकि एनसीटीई ने इन्हें मान्यता नहीं दी।

2000 में एनपीई (1986) द्वारा संकल्पित ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट) को शुरुआत में राज्य के तीन ज़िलों में स्थापित किया गया था। यह थैडलास्केन, जेंटिया हिल्स, चेरापूँजी, ईस्ट खासी हिल्स और रेसबेलपारा, ईस्ट गारो हिल्स में स्थित हैं। बाद में अन्य चार डाइट भी स्थापित किए गए जो अकादमिक वर्ष 2005-06 से काम करने लगे हैं और ये वेस्ट खासी हिल्स ज़िलों में सैडेन, री-भोई, बाघमारा, दक्षिण गारो हिल्स, तुरा, वेस्ट गारो हिल्स और नोंगस्टोइन में स्थित हैं। डाइट का मुख्य उद्देश्य प्राथमिक विद्यालय के शिक्षकों को सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम प्रदान करना और वयस्क और ग़ैर-औपचारिक कर्मियों को वयस्क और ग़ैर-औपचारिक शिक्षा कार्यक्रमों के उचित संचालन के लिए प्रशिक्षित करना था।

डॉ. बाशान डी.एम. डींगडोह DERT, शिलांग के वरिष्ठ संकाय सदस्य हैं। उन्हें शिक्षक-शिक्षा और सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने का 15 से भी अधिक वर्षों का अनुभव है। इस दौरान वे केन्द्र द्वारा प्रायोजित शिक्षक-शिक्षा, शोध गतिविधियों, शिक्षकों व अध्यापक-शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण कार्यक्रमों, शैक्षिक प्रौद्योगिकी, योजना और प्रशासन जैसी योजनाओं में कार्य करते रहे हैं। वर्तमान में वे राज्य के कुछ स्कूलों की केस स्टडीज़ एवं स्कूल सुधार योजना की अवधारणा के माध्यम से राज्य में कमज़ोर शैक्षिक प्रदर्शन वाले स्कूलों को कैसे सुधारा जा सकता है, इस पर काम कर रहे हैं। उनसे *bashandesmond@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

सरकार के साथ साझेदारी : श्रवण-बाधित बच्चों के लिए विशेष शिक्षा के स्थायी लक्ष्यों को प्राप्त करना : असम से एक केस स्टडी

बृन्दा कृष्णा



केवल बहादुरों में साहस है धूसर के बारे में सोचने का-
आसानी से न समझाई जा सकने वाली बातों के बारे में सोचने का,
अक्सर ग़लतियों को उपजाने वाली बातों के बारे में सोचने का,
उन चीज़ों के बारे में सोचने का जिनके कारण को समझा नहीं जा सकता
उन चीज़ों के बारे में सोचने का जिन्हें हमें स्वीकार करके उनके साथ रहना चाहिए
और इसलिए केवल बहादुरों में बिना नज़रें चुराए अन्तर को देखने की हिम्मत है।

- रिचर्ड एच. हंगरफोर्ड

परिचय

मैं दुनिया के कई हिस्सों में विकलांगता के क्षेत्र में पेशेवर तौर पर काम करती रही हूँ। मेरी सबसे बड़ी चुनौती यह रही है कि मैं हमेशा अपनी इस समझ और स्वीकार्यता के स्तर पर सवाल उठाती रहती हूँ कि एक विकलांग व्यक्ति का जीवन कैसा होता होगा। उस माँ को कैसा लगता होगा जिसने एक स्वस्थ बच्चे की आशा की होगी, लेकिन उसके विपरीत वह एक विकलांग बच्चे को जन्म देती है, ये ऐसे सत्य हैं जिन्हें कोई समझ नहीं सकता। जैसे-जैसे मैं बड़ी हुई और 'ज्ञान और विशेषज्ञता' प्राप्त करने के मेरे 'अनुभवों' में वृद्धि हुई है, मैं इस बारे में और अधिक जागरूक और आश्वस्त होती जा रही हूँ कि मैं वाकई कितना कम जानती हूँ, कितनी जल्दी मेरे अन्दर का पेशेवर यह निष्कर्ष निकाल लेता है अच्छे और बुरे अभ्यास क्या हैं, हम कितनी आसानी से श्रेष्ठता की भावनाओं का शिकार हो जाते हैं क्योंकि हमें लगता है कि हमारे पास बहुत सारे जवाब हैं।

इस दर्शन और विचारधारा ने मेरे कार्यों और वाणी नामक संस्था में हमारे कार्य करने के दृष्टिकोण को प्रभावित किया है। जब हम श्रवण-बाधित बच्चे, माता-पिता, एक ग़ैर-सरकारी संगठन, या सरकार के साथ साझेदारी पर विचार करते हैं तो हम यह मानते हैं कि यह रिश्ता बनाने से पहले जो बात बहुत ज़रूरी है वह यह है कि हमें सबकी बात सुननी चाहिए, आपसी विश्वास का निर्माण करना चाहिए और दूसरों के दृष्टिकोण को समझना चाहिए। मैं गर्व के साथ कह सकती हूँ कि इन्हीं बातों ने हमारे अधिकांश कार्यों को सफल और स्थायी बनाया है। तभी ये कार्य पूरी तरह से आवश्यकताओं पर आधारित हो पाते हैं।

आप शायद पूछ सकते हैं कि इसका असम में सरकार के साथ साझेदारी में केस स्टडी करने के साथ क्या सम्बन्ध है। तो जवाब यह है कि सम्मान और दूसरों की बात सुनने के सचेत दृष्टिकोण के कारण ही असम सरकार के साथ हमारी साझेदारी सफल हुई है। कई सालों से मिलकर काम करने के बाद, विभाग हमारे कार्यों के बारे में इतने आश्वस्त हैं कि वे अब हमारे साथ एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर कर रहे हैं जिसके अन्तर्गत हम केवल कुछ आवश्यक तकनीकी इनपुट देंगे और वे खुद इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाना जारी रखेंगे।

पृष्ठभूमि

बधिर बच्चों के लिए फ़ाउंडेशन वाणी की स्थापना 2005 में हुई थी और यह भारत का पहला राष्ट्रीय ग़ैर-सरकारी संगठन है जो केवल बचपन की बधिरता के मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करता है। वाणी ऐसी समग्र सेवाएँ प्रदान करता है जो श्रवण-बाधित बच्चों की सामाजिक, भावनात्मक, संचार, भाषा विकास और शैक्षिक आवश्यकताओं को सम्बोधित करता है। यह परिवारों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि वे अपने श्रवण-बाधित बच्चों के साथ बातचीत करें और उन्हें समझने का प्रयास करें। उनकी सभी ज़रूरतों का समर्थन करने में सक्रिय भूमिका निभाएँ, जिसमें सरकारों और सेवा प्रदाताओं से उनके अधिकारों की वकालत करना भी शामिल है।

नवम्बर 2002 में बाल-बधिरता के मुद्दों पर किए गए व्यवहार्यता अध्ययन की सिफ़ारिशों के कारण वाणी की उत्पत्ति हुई। राष्ट्रीय स्तर का यह अध्ययन पूरी तरह से सहभागी तरीक़े से आयोजित किया गया था। शोधकर्ताओं ने देश भर के श्रवण-बाधित बच्चों के परिवारों, बच्चों, सरकार और ग़ैर-सरकारी एजेंसियों के पेशेवरों के साथ मुलाकात की। पिछले 10 वर्षों में हुए अध्ययन के निष्कर्ष और हमारे काम से पता चलता है कि जो लोग श्रवण-बाध्यता के साथ जुड़े हुए हैं जैसे कि माता-पिता और वयस्क तथा श्रवण-बाधित युवा, वे सभी यही कहते हैं कि न सुन पाने के इस पूरे मुद्दे के बारे में जागरूकता और

समझ बनाने की आवश्यकता है। बधिरता का क्या अर्थ है, यह कैसे होती है, जल्द ही इस पर ध्यान देना क्यों आवश्यक है, सम्प्रेषण की समस्याएँ आदि आदि। इसके अलावा ऐसे माता-पिता की संख्या भी कम है जो अपने बच्चों के पक्ष में जनमत तैयार करने में पर्याप्त सक्षम हों; फिर समर्थन समूहों की कमी, इस विषय के बारे में जानकारी की कमी तथा ऐसे लोगों के लिए रोज़गार के अवसरों की कमी जैसी कई बातें हैं। इसलिए यह समझना आवश्यक है कि ये सारी बातें श्रवण-बाधित लोगों को कैसे प्रभावित करती हैं जिसकी वजह से वे अपने जीवन की कमान ख़ुद नहीं सम्हाल पाते।

भारत में शिशुओं में पाई जाने वाली बधिरता के आँकड़े चौंकाने वाले हैं। देश में हर 1000 जीवित बच्चों में से 5.6-10 को जन्मजात बधिरता प्रभावित करती है (भारत का राष्ट्रीय स्वास्थ्य पोर्टल)। इसमें उन बच्चों की संख्या शामिल नहीं है जो प्रसव के बाद स्वास्थ्य और स्वच्छता के कारणों से बधिर हो जाते हैं। श्रवण-बाध्यता के साथ पैदा हुए बच्चे अपने आस-पास की दुनिया का बोध कर पाने या स्वयं को व्यक्त करने में असमर्थ होते हैं। वे अपने दोस्तों और परिवारों के साथ बातें नहीं कर सकते, अपने आस-पास के लोगों को समझ नहीं सकते और अपने शिक्षकों से सीख नहीं सकते हैं। वे पूरी तरह से अलग-थलग रहते हैं और हमारी शोरगुल से भरी दुनिया में ख़ामोशी के साथ अपना जीवन बिताते हैं।



वाणी श्रवण-बाधित बच्चों और उनके परिवारों के जीवन में भाषा और सम्प्रेषण लाने की दिशा में काम करती है और साथ ही उनके सामाजिक और भावनात्मक कल्याण के मुद्दों को भी सम्बोधित करती है।

वाणी में सुनने में कठिनाई का अनुभव करने वाले बच्चों को बोलना सिखाया जाता है। उनके परिवारों को उन्हें समझने और उनकी सामाजिक और भावनात्मक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। कोई भी दो बच्चे समान नहीं होते। इसलिए वार्षिक और तिमाही लक्ष्यों के साथ उस विशिष्ट बच्चे के सम्प्रेषण, सामाजिक, भावनात्मक और बौद्धिक क्षमताओं के आधार पर एक व्यक्तिगत शिक्षा योजना (आईईपी) तैयार की जाती है। हर बच्चे के लिए बधिरों के एक



पेशेवर शिक्षक (टीओडी) होते हैं। टीओडी सप्ताह में एक बार बच्चे और उसके माता-पिता से एक घण्टे के लिए मिलते हैं। माता-पिता की उपस्थिति शिक्षण प्रक्रिया के लिए अनिवार्य है, ताकि काम आगे बढ़ाया जा सके और घर पर अभ्यास कराया जा सके।

सप्ताह के बाकी दिनों में बच्चे को सामान्य स्कूल जाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वह मुख्यधारा का हिस्सा बना रहे और अन्य बच्चों के साथ मिल-जुल सके। सामान्य विद्यालय के शिक्षकों को अपनी कक्षा में श्रवण-बाधित बच्चे को सम्हालने और बेहतर बनाने के तरीक़ों के बारे में कौशल-प्रशिक्षण दिया जाता है।

साझेदारी में काम करना

इस बात पर हमारा दृढ़ विश्वास है कि वास्तविक परिवर्तन और प्रभाव केवल तभी सम्भव है जब हम अपने कार्यक्रमों को सरकार की मौजूदा योजनाओं और स्कीमों के साथ जोड़ें। फिर चाहे वह केन्द्रीय सरकार हो या राज्य सरकार। उनके पास साधन और पहुँच है। इसलिए अगर हम स्थायी और दूरगामी बदलाव चाहते हैं तो सरकार के साथ साझेदारी में काम करना ही संगत तरीक़ा है।

अक्टूबर 2007 से वाणी असम में सक्रिय रूप से काम कर रही है। अपने काम के पिछले दस वर्षों में हमने यह महसूस किया कि श्रवण-बाधित बच्चों के जीवन में उनके माता-पिता की पर्याप्त भागीदारी होनी चाहिए और साथ ही श्रवण-बाधित शिशुओं और छोटे बच्चों की पहचान और प्रारम्भिक हस्तक्षेप जल्दी ही करना चाहिए।

जो बच्चे जन्म से ही सुनने में असमर्थ हैं या जिन्हें कम सुनाई देता है, उनकी पहचान जितनी जल्दी हो सके, उतना बेहतर।

इससे यह बात सुनिश्चित हो सकेगी कि उनके परिवारों को इस समस्या से सम्बन्धित ज्ञान, समझ और संसाधनों की जानकारी है या नहीं जिनकी मदद से उनके बच्चे मौखिक और/या दृश्य प्रतीक भाषा अपना सकें तथा अपनी आयु के उपयुक्त संचार, संज्ञानात्मक, अकादमिक, सामाजिक और भावनात्मक विकास कर सकें। जो बच्चा सुन सकता है वह अपने आस-पास की बातचीत और भाषा को सुनता है तथा उसका उपयोग करके संचार के कौशलों को अपनाता है। किन्तु श्रवण-बाधित बच्चे के लिए यह सम्भव नहीं है। चूँकि वह सुन नहीं सकता अतः वह भाषा सीख ही नहीं पाता और उसके पास भाषा सीखने का कोई तरीक़ा नहीं होता। बहुत छोटे श्रवण-बाधित बच्चे के वास्तविक संचार व शैक्षिक आवश्यकताओं और घर पर या प्रारम्भिक प्री-स्कूल कार्यक्रम में उनके लिए उपलब्ध सीखने के अवसरों के बीच काफ़ी अन्तर है। इसलिए शुरुआती हस्तक्षेप कार्यक्रमों की बेहद ज़रूरत है क्योंकि इससे बच्चे के जन्म से ही उचित शिक्षा व समझ, प्री-स्कूल कौशल व भावनात्मक बन्धन प्रदान किए जा सकेंगे जिससे भविष्य में एक सुस्थिर वृद्धि सुनिश्चित हो सकेगी।

हमने महसूस किया कि अगर हमें पहले से ही मौजूदा कार्यक्रमों के साथ जुड़ना है तो इसके लिए पहला क़दम यह होगा कि उपयुक्त सरकारी विभागों में हमारे काम की प्रकृति के बारे में सकारात्मक व सद्भावपूर्ण तरीक़े से जागरूकता पैदा की जाए और उनका विश्वास प्राप्त करके उनके साथ सकारात्मक सम्बन्ध बनाए जाएँ।

असम रणनीति

चूँकि वाणी श्रवण-बाधित बच्चों को शिक्षित करने का काम करती है, इसलिए हमने 2007 में असम में एसएसए (शिक्षा विभाग) से बात की।

- धीरे-धीरे, कई बार और बार-बार बातचीत करने के बाद एसएसए के कार्यकर्ताओं ने बचपन में बधिरता की जटिलताओं को समझना शुरू कर दिया। उदाहरण के लिए वाणी द्वारा आयोजित एक सेमिनार में एसएसए के निदेशक ने पहली बार महसूस किया कि बिना इयर मोल्ड के हियरिंग एड का प्रयोग करने से किसी बच्चे को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता।
- जब अधिकारी आश्वस्त हो गए तो वाणी ने एसएसए के स्वयंसेवकों और शिक्षकों को प्रशिक्षण देना शुरू किया और 2010 में यह संस्था एसएसए के लिए श्रवण-बाधा से सम्बन्धित सभी मुद्दों के लिए राज्य संसाधन संगठन बन गई। हमें जल्द ही एहसास हुआ कि एसएसए के माध्यम से हमारी सेवाएँ 0 से 6 वर्ष के बच्चों तक नहीं पहुँच पाईं।
- अगला क़दम था आईसीडीएस (एकीकृत बाल विकास सेवा) विभाग-सामाजिक कल्याण विभाग से सम्पर्क करना। इस बार यह काम आसान रहा क्योंकि हम पहले ही शिक्षा विभाग से जुड़ चुके थे। इस बीच हमने श्रवण-बाधित बच्चों की स्थिति के बारे एक राज्य-व्यापी अध्ययन किया, जिसमें विशेष रूप से असम पर ध्यान दिया गया। असम में बधिर बच्चों की स्थिति नामक सेमिनार के बाद हमें सफलता मिली। इसमें इस अध्ययन के परिणाम साझा किए गए थे तथा जिसमें सामाजिक कल्याण विभाग को सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया गया और 2011 में यह निर्णय लिया गया कि वाणी के साथ कार्य को आगे बढ़ाया जाए।
- 2012 में वाणी को सामाजिक कल्याण विभाग, असम की राज्य सामाजिक लेखा परीक्षा समिति का सदस्य मान लिया गया।
- इसके बाद निरन्तर नेटवर्किंग के साथ और अन्ततः निर्णय को मंज़ूरी देने के लिए सरकार को आश्वस्त करने के बाद 2014 में एक समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर किए गए।

'वाणी का कार्य एक प्रोत्साहक है। इस परियोजना में श्रवण-बाधित बच्चों की पहचान सबसे महत्त्वपूर्ण है और यह महत्त्वपूर्ण है कि एडब्लूडब्ल्यू को पता चले कि इसे कैसे किया जाए। सभी एडब्लूडब्ल्यू को इस प्रकार की पहचान करने में प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है ताकि और अधिक प्रामाणिक डेटा संग्रह में मदद मिले' (अनिल फुकन, एमआईएस प्रभारी, सामाजिक कल्याण विभाग)

- श्रवण-बाधा को लेकर जो नकारात्मक भाव थे, वे दूर होने लगे थे। अब और अधिक लोग संकेत भाषा (साइन लैंग्वेज) का उपयोग करना सीखना चाहते थे।

शुरू में हमने तीन ज़िलों में एक पायलट अध्ययन करने का फैसला किया। इस परियोजना का उद्देश्य तीन साल की अवधि में कामरूप, नलबारी और नागाँव ज़िलों के ब्लॉक में 26 उपग्रह केन्द्र स्थापित करना और गुवाहाटी में एक राज्य नोडल संसाधन केन्द्र को मज़बूत करना था जो असम के भीतर बचपन में श्रवण हानि से सम्बन्धित समस्याओं को सम्बोधित करने में सभी प्रकार की सेवाएँ, सूचना, संसाधन और विशेषज्ञता प्रदान करेगा। चूँकि भाषा एक बड़ी समस्या है, इसलिए हमारी सभी शिक्षण-अधिगम सामग्री स्थानीय भाषा में उपलब्ध कराई गई थी।

राज्य नोडल संसाधन केन्द्र

- संचार, भाषा और साक्षरता कौशल विकसित करने और इसके प्रभाव को मापने के लिए छोटे (6-0 वर्ष) श्रवण-

बाधित बच्चों के विकास के लिए शुरुआती हस्तक्षेप सेवाएँ प्रदान करने वाले एक आदर्श सर्वोत्तम अभ्यास के निरूपण केन्द्र के रूप में कार्य करेगा।

- एक ऐसा शोध केन्द्र बनेगा जो ग्रामीण समुदायों और ऐसे समुदायों के लिए उचित अभिनव शिक्षण तकनीकों और सामग्री को विकसित करने के लिए शोध करेगा जिन तक ये चीज़ें पहुँच नहीं पातीं।
- माता-पिता के लिए मित्रतापूर्ण केन्द्र होगा जो बाल श्रवण-बाधित बच्चों के माता-पिता या देखभाल करने वालों को आवश्यकतानुसार समर्थन देगा। जैसे परामर्श और मार्गदर्शन सम्बन्धी सेवाएँ देना और कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करना।
- उम्र में कुछ बड़े श्रवण-बाधित बच्चों को शैक्षिक सहायता प्रदान करेगा ताकि उन्हें मुख्यधारा की उचित कक्षाओं और व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे शिक्षा के वैकल्पिक तरीक़ों तक पहुँचने में सक्षम बनाया जा सके।

पहले और दूसरे वर्ष में हमने श्रवण-बाधित बच्चों को पहचानने और ब्लॉक सदन केन्द्रों में केन्द्र-आधारित सेवाओं की शुरुआत करने पर ध्यान दिया। ब्लॉक सदन केन्द्र वास्तव में आँगनवाड़ी केन्द्र थे जो पहले से ही अस्तित्व में थे। हमने उनके भवनों का उपयोग किया और अपने शिक्षण को उन गतिविधियों के साथ जोड़ा जो पहले से ही चल रही थीं। ये केन्द्र लोकप्रिय होने लगे क्योंकि सदन केन्द्र में आने वाले सभी बच्चे लाभान्वित हो रहे थे। इसका कारण यह था कि आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण मिला था। वे शुरुआती पहचान करने में व प्रारम्भिक प्रोत्साहन देने में कुशलता प्राप्त कर चुके थे और शिक्षकों जितने ही सक्षम बन गए थे। छब्बीस केन्द्र ज़रूरी साधनों से लैस थे और कार्य करने लगे थे तथा अधिकांश आँगनवाड़ी कार्यकर्ता इन केन्द्रों के प्रभारी थे जो बच्चों के माता-पिता के साथ होने वाले सत्रों के दौरान वाणी टीम की सहायता करते थे। तीसरे वर्ष में माता-पिता और आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में से लीडरों को चुनने का काम शुरू हुआ जो ब्लॉक के भावी संसाधक होंगे।

प्रशिक्षण कार्यशालाओं में भाग लेने से पहले आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं में से 2 प्रतिशत कार्यकर्ताओं को इस बारे में 20 प्रतिशत से भी कम ज्ञान था। कार्यशालाओं में भाग लेने के बाद 75 प्रतिशत प्रतिभागियों का श्रवण-बाधा से सम्बन्धित ज्ञान 70 प्रतिशत से अधिक हो गया।

जहाँ तक माता-पिता की बात है तो पहले 10 प्रतिशत माता-पिता का बधिरता और संचार कौशल के बारे में ज्ञान 20 प्रतिशत से भी कम था। कार्यशालाओं में भाग लेने के बाद श्रवण-बाधा और संचार कौशल के बारे में 85 प्रतिशत माता-पिता के ज्ञान के स्तर में 70 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई।

एडब्ल्यूसी के दौरे से पता चला कि माता-पिता इन गतिविधियों में भाग लेने लग गए थे। वे केन्द्रों में नियमित रूप से आने में भी दिलचस्पी दिखाने लगे थे। उनका मानना था कि इस प्रकार के शिक्षण से माता-पिता और बच्चे के बीच संचार में सुधार हुआ था। सभी माताओं ने देखा कि उनके बच्चे की समझने की शक्ति में सुधार हुआ है क्योंकि उन्होंने अपने बच्चे की समझ और लेखन कौशल में काफ़ी प्रगति देखी। ऐसा उन्होंने तब नहीं देखा था जब ये बच्चे सामान्य स्कूलों में पढ़ने जा रहे थे। एसएसए के साथ वाणी के काम करने का अप्रत्यक्ष प्रभाव यह था कि ब्लॉक स्तर के मास्टर प्रशिक्षकों को भी वाणी के प्रशिक्षकों द्वारा सांकेतिक भाषा में प्रशिक्षित किया जा रहा था और अब वे सामान्य स्कूल के शिक्षकों को सक्रिय रूप से यह कौशल प्रदान कर पा रहे थे।

ज़िला और ब्लॉक स्तर के कार्यकर्ताओं के साथ सम्बन्धों को मज़बूत करना आवश्यक था और इसके लिए यह ज़रूरी था कि उन्हें न केवल ‘अच्छी’ उपलब्धियों में शामिल करें बल्कि उनके साथ चुनौतियों को भी ईमानदारी के साथ साझा करें। साथ ही उन्हें अपने विचारों और सोच को साझा करने के लिए सक्रिय रूप से प्रोत्साहित करें। उनके बढ़ते सहयोग के साथ, हम धीरे-धीरे परियोजना के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सक्षम हो रहे थे।

आज एसएसए और सामाजिक कल्याण विभाग 26 सदन केन्द्रों में वाणी के तकनीकी समर्थन के साथ कार्य को जारी रखने की रणनीतियों की पहचान करने और परियोजना को अन्य ज़िलों में आगे ले जाने के लिए काम कर रहे हैं।

महत्त्वपूर्ण सीख

- अन्य सामान्य लोगों की तरह ही सरकारी अधिकारियों को भी बड़ी विनम्रतापूर्वक, धैर्यपूर्वक और लगातार विभिन्न मुद्दों पर शिक्षित करने की आवश्यकता थी। आमतौर पर सरकारी अधिकारी ‘एनजीओ’ जैसे संगठनों से चौकस ही रहते हैं। उनके साथ विरोधी जैसे नहीं वरन सहयोगियों के रूप में रिश्ता बनाने की ज़रूरत होती है, और जो काम हो रहा है उसे लेकर उनके मन में स्वत्व की भावना विकसित करने में उनकी सहायता करनी चाहिए।
- सरकारी कर्मचारियों के विशेष प्रशिक्षण को लेकर प्रतिक्रिया अच्छी रही क्योंकि प्रशिक्षुओं ने इसे अपने व्यक्तिगत कौशल के विकास और संवर्धन के रूप में देखा और खुद को ऐसे पेशेवरों के रूप में देखना शुरू कर दिया जो योजना के कार्यक्रम तैयार करना, कम समय लेने वाली संक्षिप्त रिपोर्ट लिखना, सटीक रिकॉर्ड बनाए रखना और लेखा ज्ञान जैसे कौशलों में विशेषज्ञता प्राप्त कर रहे हैं।

- जो कार्य किया जाए उसका सक्रिय सबूत होना चाहिए। जिन 28 सदन केन्द्रों को विकसित किया गया वे पहले से ही मौजूदा आँगनवाड़ी केन्द्रों में ऐसा करते थे। वाणी ने इन केन्द्रों को आवश्यक शिक्षण-अधिगम सामग्री से लैस किया, जिससे न केवल श्रवण-बाधित बच्चों को लाभ हुआ, बल्कि वे बच्चे भी लाभान्वित हुए जो इन केन्द्रों में आए थे। राज्य संसाधन केन्द्र की स्थापना से यह बात सामने आई कि वे अच्छा कार्य-निष्पादन कर सकते हैं और इन केन्द्रों की वजह से सरकारी अधिकारी वास्तविक लाभार्थियों के सम्पर्क में आ पाते थे।
- सरकार के साथ काम करते समय अक्सर कई अन्य विभागों/मंत्रालयों के साथ भी सम्पर्क करना होता है जो अक्सर साथ में काम करने के आदी नहीं होते। अतः सहयोग और समन्वय पर ध्यान केन्द्रित करना महत्त्वपूर्ण होता है। इसका एक उदाहरण संचालन समिति (स्टीयरिंग कमेटी) की बैठक है, जहाँ सभी स्तरों के लोगों जैसे ज़िला आयुक्त, नोडल अधिकारी और एसएसए शिक्षकों ने भाग लिया। इससे यह बात सुनिश्चित हुई कि योजनाएँ साथ मिलकर बनाई गईं और सभी सदस्य जानते थे कि उनके ज़िम्मे कौन-सा काम है और उनसे क्या अपेक्षाएँ हैं।
- सरकार के साथ सम्पर्क करने के लिए मानव संसाधन आवंटित करने का एक सचेत प्रयास होना चाहिए। जो लोग अधिकारियों को अपना समझते हैं, वे उनके समुदायों में से चुने जाते हैं, उनकी भाषा बोलते हैं, उनसे उन्हें डर नहीं लगता या वे उन्हें मित्रवत मानते हैं। सच पूछा जाए तो हमारी सभी प्रशिक्षण सामग्री और पोस्टर का स्थानीय भाषा में होना इन मान्यताओं को मज़बूत करता है।
- सरकारी कर्मचारी जब कोई अतिरिक्त कार्य करते हैं तो उसके लिए उन्हें मुआवज़ा दिया जाना चाहिए। उनके आने-जाने का ख़र्चा या उनके काम को मान्यता देने के लिए छोटी-सी धनराशि या पुरस्कार देना अपने लक्ष्य की प्राप्ति में बहुत महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है। उदाहरण के लिए आँगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को एक बहुत ही मामूली राशि का भुगतान किया जाता है और अक्सर उनका अधिकांश भत्ता उनके आने-जाने में ही ख़र्च हो जाता है।
- हमने जो सबसे बड़ा सबक़ सीखा वह शायद यह था कि सरकार के साथ काम करना एक दीर्घकालिक वचनबद्धता है और काम करने की गति तथा प्राथमिकता सम्बन्धी मतभेदों के बारे में सोचना और उन्हें प्रबन्धित करना बहुत आवश्यक है।
- हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती तब आई जब पुराने अधिकारियों की जगह नए अधिकारी आए और हमें फिर से उन्हें शिक्षित करना शुरू करना पड़ा। पर हमने यह भी देखा कि अपनी बैठकों में सभी स्तरों के लोगों को शामिल करने और जागरूकता बढ़ाने के सत्रों के कारण सीखने की प्रक्रिया और निरन्तरता बनी रही।

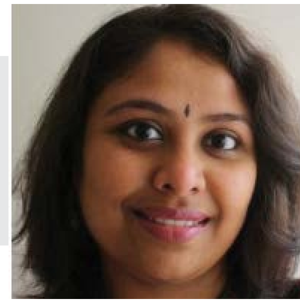
निष्कर्ष

यह ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है कि सरकारी अधिकारी अन्य लोगों से अलग नहीं हैं और हम सभी इन्सान हैं, हमारे अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह होते हैं, अच्छे दिन और बुरे दिन होते हैं। परम्परागत रूप से देखें तो सरकार और एनजीओ सेक्टर के बीच का सम्बन्ध सन्दिग्ध अविश्वास से भरा हुआ रहता है। हमें इस भावना को तोड़ना है और मुझे दृढ़ विश्वास है कि ऐसा सम्भव है! स्थायी परिवर्तन सुनिश्चित करने का एकमात्र तरीक़ा सरकार के साथ काम करना है।

बृन्दा कृष्णा वाणी डेफ चिल्ड्रन फ़ाउंडेशन की संस्थापक-ट्रस्टी हैं। वे एक प्रशिक्षित विशेष शिक्षक और अनुभवी विकास पेशेवर हैं। उन्होंने मैनचेस्टर विश्वविद्यालय, ब्रिटेन से विशेष शिक्षा में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है। वे 40 वर्षों से भी अधिक समय से विशेष ज़रूरतों वाले बच्चों के अधिकारों और विकास के लिए असाधारण काम कर रही हैं। उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय और द्विपक्षीय एजेंसियों तथा ग़ैर-सरकारी संगठनों के साथ काम किया है, जिनमें एडीबी (वियतनाम और कम्बोडिया), आईएफ़सी और विश्व बैंक, ब्रिटिश काउंसिल, चेशायर इंटरनेशनल, हैंडीकैप इंटरनेशनल, सेव द चिल्ड्रेन और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सेरेब्रल पाल्सी शामिल हैं। काम के लिए उनका दृष्टिकोण मनुष्यों के लिए समानता के अधिकार के प्रति गहरी प्रतिबद्धता पर आधारित है। उनसे *bcrshna@vaani.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

विवरण महत्त्वपूर्ण होते हैं : 'मूल्यांकन' का मूल्यांकन

हरिणी कण्णन



परिचय

अगस्त 2009 में भारतीय संसद ने शिक्षा का अधिकार (आरटीई) अधिनियम बनाया जिसमें 6 से 14 साल तक शिक्षा को 'अधिकार' का रूप दिया गया। इसके साथ ही अधिनियम में बुनियादी ढाँचे, विद्यार्थी शिक्षक अनुपात (पीटीआर), पाठ्यक्रम, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा समावेशी शिक्षा से सम्बन्धित विभिन्न 'आवश्यकताओं' को अनिवार्य किया गया। इस लेख का केन्द्र बिन्दु सतत तथा व्यापक मूल्यांकन प्रणाली (सीसीई) है। इन अधिदेशों का उद्देश्य बच्चों के लिए 'गुणवत्तापूर्ण' शिक्षा सुनिश्चित करना था।

अधिदेशों में से सीसीई की शुरुआत ने भारत की सार्वजनिक शिक्षा में एक आदर्श बदलाव का संकेत दिया। ऐतिहासिक रूप से विद्यार्थी-मूल्यांकन सत्रीय परीक्षाओं के माध्यम से किसी सत्र या वर्ष के दौरान बच्चों द्वारा प्राप्त अकादमिक ज्ञान को मापने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। ये परीक्षाएँ ऐसी थीं जिनमें विद्यार्थियों का पूरा साल दाँव पर लगा होता था क्योंकि इसमें मिलने वाले अंक यह निर्धारित करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते थे कि वे अगली कक्षा में जाएँगे या नहीं। मूल्यांकन के पारम्परिक तरीकों का दायरा भी बहुत संकीर्ण था - विद्यार्थियों का मूल्यांकन मुख्य रूप से 'विषय' के ज्ञान पर किया जाता था और अन्य पहलुओं पर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। दूसरी ओर सीसीई का अर्थ था कि सतत तथा समग्र दोनों बातों पर ध्यान दिया जाए। 'सतत' का तात्पर्य था कि विद्यार्थियों का मूल्यांकन अकादमिक अवधि के दौरान 'लगातार' किया जाए और 'व्यापक' का तात्पर्य था कि मूल्यांकन सिर्फ अकादमिक विषयों के अधिगम पर ध्यान केन्द्रित न करें बल्कि सह-शैक्षिक गतिविधियों और व्यवहार पर भी ध्यान दें। इन परिवर्तनों को प्रेरित करने वाली अन्तर्निहित भावना यह थी कि स्कूली शिक्षा अधिगम को आनन्ददायक और कम तनाव वाली बनाए और बच्चे के समग्र विकास पर ध्यान दे।

चूँकि सीसीई कार्यक्रम शुरू किया जा रहा था अतः अब्दुल लतीफ जमील पॉवर्टी एक्शन लैब (जे-पीएएल) के साथ सम्बद्ध शोधकर्ताओं ने हरियाणा में सीसीई कार्यक्रम के क्रियान्वयन का कठोर मूल्यांकन किया।[1] परिणाम गम्भीर थे। सीसीई ने प्राथमिक विद्यालयों में सुधार को उत्प्रेरित करने की बात की थी पर इसके बावजूद लगता है कि यह कार्यक्रम अधिगम के परिणामों को संवर्धित करने के मूल उद्देश्य को पूरा नहीं कर रहा है।

सीसीई का 'सिद्धान्त'

सीसीई का 'सतत' पहलू विद्यार्थी-मूल्यांकन सिद्धान्त पर आधारित है। सतत मूल्यांकन में आमतौर पर 'संरचनात्मक' और 'समेकित' मूल्यांकन होते हैं जो क्रमशः पूरे कार्यकाल में और सत्र के अन्त में किए जाते हैं। संरचनात्मक मूल्यांकन प्रकृति में नैदानिक हैं और उनसे एकत्र की गई जानकारी शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को मज़बूत करने के लिए उपयोग में लाई जाती है। सत्र के अन्त में किए जाने वाले समेकित आकलन विद्यार्थियों की ज्ञान-वृद्धि के परिमाणन को बढ़ाते हैं। समेकित आकलन आमतौर पर लिखित (पेपर-पेंसिल टेस्ट) परीक्षण होते हैं और संरचनात्मक आकलन अनौपचारिक हो सकते हैं जैसे कक्षा के दौरान पूछे जाने वाले मौखिक प्रश्नों से लेकर पॉप क्विज़ और परियोजनाओं तक। इसलिए इस प्रकार के मूल्यांकन एक-दूसरे की पूरकता के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं और उन विद्यार्थियों के लिए अधिक समावेशी होते हैं जिन्हें पारम्परिक आकलन में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है।

सीसीई का 'समग्र' पहलू बच्चों के समग्र विकास पर केन्द्रित है। शिक्षक काफ़ी लम्बे समय से इस बात पर ज़ोर देते आ रहे हैं कि यह सुनिश्चित करना ज़रूरी है कि विद्यार्थियों को महत्त्वपूर्ण जीवन-कौशल प्राप्त हों और वे समाज के उपयोगी सदस्य बनें। किन्तु इस उच्च भावना के बावजूद एक सामान्य स्कूल के पाठ्यक्रम में इन जीवन-कौशलों को विकसित करने के उपायों का औपचारिक एकीकरण नहीं हुआ है और इसे स्कूलों और शिक्षकों पर छोड़ दिया गया है। प्रक्रियाओं के साथ लक्ष्य के फ़ोकस को संरेखित करने के लिए समग्र मूल्यांकन को एक उपकरण के रूप में देखा गया है।

---

[1]यह पेपर बेरी और अन्य का एक ग़ैर-तकनीकी सारांश है। (2018)। मूल्यांकन और परिणामों पर अधिक जानकारी के लिए कृपया पेपर का पुनरावलोकन करें। इस पेपर को देखने के लिए https://www.povertyactionlab.org/sites/default/files/publications/Failure-of-Frequent-Assesment_Berry-et-al._feb_2018.pd पर जाएँ।

सीसीई का क्रियान्वयन और मूल्यांकन

आरटीई अधिनियम ने सीसीई की शुरुआत को अनिवार्य किया और साथ में यह भी निर्धारित किया कि राज्य अपने कार्यक्रमों को अपनी स्थानीय ज़रूरतों के अनुसार बनाएँ। केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई) अपने सम्बद्ध स्कूलों में सीसीई शुरू करने में अग्रणी था और इसके कार्यक्रम ने अपने कार्यक्रमों के विकास के लिए विभिन्न राज्यों के लिए एक रूपरेखा या ब्लूप्रिंट के रूप में कार्य किया है। अप्रैल 2018 तक लगभग सभी राज्यों में सीसीई लागू कर दिया गया है हालाँकि स्कूलों और मानकों में कवरेज सम्बन्धी भिन्नताएँ हैं।

हालाँकि सीसीई को व्यापक रूप से अंगीकार कर लिया गया है और साथ में इसे शिक्षाविदों (सीबीएसई 2009) का समर्थन भी मिला है। लेकिन इसके बावजूद उन परिणामों पर कार्यक्रम के प्रभावों के बारे में बहुत कम जानकारी है जिन्हें हासिल करने की बात यह कार्यक्रम करता है। कार्यक्रम के प्रभाव का परिमाणन अन्ततः एक अनुभवजन्य प्रश्न है और प्रभाव के कठोर मूल्यांकन के बिना किसी भी कार्यक्रम के 'प्रभाव' के बारे में निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। सामाजिक कार्यक्रमों और नीतियों का प्रभाव-मूल्यांकन विकास अर्थशास्त्र साहित्य में आम है और सरकारों तथा नागरिक समाज संगठनों द्वारा उत्तरोत्तर अपनाया गया है ताकि यह समझा जा सके कि नए कार्यक्रम 'काम करते' हैं।

केन्द्र सरकार द्वारा सीसीई को स्वीकार करने के कुछ ही समय बाद हरियाणा राज्य शिक्षा मंत्रालय ने 2012-2013 स्कूल वर्ष के दौरान हरियाणा राज्य में सीसीई कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के लिए जे-पीएएल से बात की। हालाँकि मूल्यांकन हरियाणा में सीसीई के क्रियान्वयन तक ही सीमित था किन्तु इससे कुछ व्यापक पाठ सीखे जा सकते हैं। इससे पहले कि यह लेख कार्यक्रम, जाँच-परिणाम और निष्कर्षों की रूपरेखा के बारे में बताए; प्रभाव-मूल्यांकन पर थोड़ी-सी जानकारी ज़रूरी है।

यादृच्छिक प्रदत्त कार्य (असाइनमेंट) का उपयोग करके प्रभाव-मूल्यांकन

वैसे तो बोलचाल में 'प्रभाव' के कई अर्थ हैं, पर अनुभवजन्य शोध के सन्दर्भ में इसकी एक बहुत ही सटीक परिभाषा है। यहाँ प्रभाव को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है कि किसी कार्यक्रम के सम्पर्क में आने पर उस समूह के परिणाम और कार्यक्रम के सम्पर्क में न आने पर प्राप्त परिणामों का अन्तर (अधिगम, स्वास्थ्य, आर्थिक इत्यादि) ही प्रभाव है (प्रतितथ्यात्मक)। जैसा कि ज़ाहिर है प्रतितथ्यात्मक का निरीक्षण करना असम्भव है और परिणामों की तुलना करने के लिए समूह बनाने के लिए हमें अन्य साधनों का उपयोग करना है। अकादमिक भाषा में इस समूह को तुलना या नियन्त्रण समूह कहा जाता है। हालाँकि कई अलग-अलग पद्धतियाँ हैं जिनका उपयोग प्रभाव को मापने के लिए किया जा सकता है पर तुलना समूह का निर्माण किस तरीक़े से हुआ है, मुख्य रूप से इस बात पर विधि की विश्वसनीयता निर्भर करती है। इन समूहों को यादृच्छिक, अर्ध-यादृच्छिक या ग़ैर-यादृच्छिक तरीक़े से बनाया जा सकता है। जे-पीएएल से सम्बद्ध शोधकर्ताओं ने सीसीई कार्यक्रम के प्रभाव के मूल्यांकन के लिए एक यादृच्छिक नियंत्रित परीक्षण (आरसीटी) डिज़ाइन का उपयोग किया। कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने के लिए आरसीटी को सबसे ज़्यादा कठोर और विश्वसनीय तरीक़ा माना जाता है क्योंकि वे कार्यक्रम के अभिग्रहण के लिए यादृच्छिक रूप से व्यक्तियों या समूहों को निर्दिष्ट करते हैं, जबकि अन्य को यादृच्छिक रूप से कार्यक्रम में भाग लेने के लिए निर्दिष्ट नहीं किया जाता है। आरसीटी डिज़ाइन का गुण यह है कि यह व्यक्तियों या समूहों के यादृच्छिक निर्दिष्टीकरण पर निर्भर है ताकि कार्यक्रम के क्रियान्वयन से पहले इन समूहों की प्रकृति समान हो और वे केवल कार्यक्रम के सम्पर्क में आने की दृष्टि से भिन्न हों। यह देखते हुए यदि कार्यक्रम के अन्त में परिणामों में अन्तर हो तो उसके लिए पूरी तरह से कार्यक्रम को ज़िम्मेदार ठहराया जा सकता है अन्य कारकों को नहीं।

हरियाणा के सीसीई कार्यक्रम का डिज़ाइन और रोल आउट

2011 में सीसीई कार्यक्रम को विकसित और संचालित करने की शुरुआत करने वाले राज्यों में से हरियाणा भी एक था। इस कार्यक्रम को राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद (एससीईआरटी) द्वारा डिज़ाइन किया गया था और सीबीएसई के कार्यक्रम से बहुत प्रभावित था। कक्षा 1 से 5 का सतत मूल्यांकन मासिक आधार पर और कक्षा 6 से 8 का सतत मूल्यांकन तिमाही आधार पर किया गया। नैदानिक मूल्यांकन की सुविधा के लिए भाषाओं का मूल्यांकन सुनने, पढ़ने और लिखने के कौशल के आधार पर किया गया और गणित तथा पर्यावरण विज्ञान (ईवीएस) का मूल्यांकन मौलिक अवधारणाओं को सीखने के आधार पर किया गया था। इनमें से कइयों के लिए मुख्य उप-कौशल/अवधारणाओं की पहचान की गई जिनमें बच्चों का आकलन करने की आवश्यकता थी। कार्यक्रम के लिए मासिक मूल्यांकन पत्रों के रूप में महत्त्वपूर्ण प्रलेखीकरण की आवश्यकता थी। इसमें शिक्षक प्रत्येक उप-कौशल के लिए मूल्यांकन रिकॉर्ड करते थे और जिसमें विस्तृत वर्णनात्मक टिप्पणियाँ और सत्र-वार रिपोर्ट कार्ड शामिल थे। इनका उपयोग कक्षा में नामांकित प्रत्येक बच्चे के अधिगम की समेकित स्थिति बताने के लिए किया जाता था। अंकों

के स्थान पर कक्षा 6, 7 और 8 को सत्र के अन्त में ग्रेड प्रदान किए गए थे। कक्षा 1 से 5 के विद्यार्थियों के लिए वर्णनात्मक टिप्पणियों का सारांश प्रदान किया गया था। इस कार्यक्रम के लिए विभिन्न मूल्यांकन उपकरणों जैसे कि मौखिक पाठ/प्रश्न व उत्तर, कक्षा में भागीदारी, क्विज़, इकाई परीक्षण और परियोजनाओं का उपयोग करना आवश्यक था। मूल्यांकन में निष्पक्षता और मानकीकरण की सुविधा के लिए विस्तृत ग्रेडिंग रूब्रिक प्रदान किए गए। शैक्षिक पहलुओं के अलावा सांस्कृतिक गतिविधियों में सहभागिता, रचनात्मकता और कौशल जैसे सह-शैक्षिक पहलुओं और सम्मान, स्वच्छता, नेतृत्व की गुणवत्ता जैसे व्यक्तिगत गुणों का मूल्यांकन भी किया गया।

हालाँकि कार्यक्रम को एससीईआरटी द्वारा लागू किया गया था लेकिन कार्यक्रम के लिए प्रशिक्षण देने का काम निजी एजेंसियों को दिया गया था। प्रशिक्षण के लिए एक 'कैस्केड' मॉडल अपनाया गया था जहाँ एससीईआरटी के संकाय के सदस्यों ने एजेंसियों के संसाधकों का उन्मुखीकरण किया फिर इन लोगों ने मास्टर प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित किया जो बाद में प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करते थे। प्रशिक्षकों द्वारा ब्लॉक मुख्यालय में सात दिनों का शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया। शिक्षकों को मुख्य रूप से इन बिन्दुओं पर प्रशिक्षित किया गया कि वे विद्यार्थी-मूल्यांकन कैसे करें और अपेक्षित दस्तावेज़ीकरण कैसे करना चाहिए। साथ ही इस बात पर भी ध्यान दिया गया कि शिक्षण विधियों को कैसे बदला जाए या उन बच्चों की सहायता कैसे की जाए जो कक्षा में अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पा रहे।

मूल्यांकन के लिए कार्यक्रम और योजना बनाने के दौरान जे-पीएएल शोधकर्ताओं ने इस बात पर बल दिया कि फील्ड में एक मज़बूत परामर्श और निगरानी तंत्र आवश्यक है। कार्यक्रम की शुरुआत और क्रियान्वयन अक्सर तब विफल हो जाता है जब क्रियान्वयनकर्ता या प्रतिभागियों को कोई सतत समर्थन नहीं मिलता। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सीसीई कार्यक्रम की स्थिति भी ऐसी न हो जाए, शिक्षा विभाग ने अनुरोध किया कि जे-पीएएल का शोध दल उन्हें निगरानी और परामर्श के लिए तंत्र स्थापित करने में मदद करे। दिलचस्प बात यह है कि एबीआरसी (सहायक ब्लॉक संसाधन समन्वयक) नामक सरकारी अधिकारियों के पद पहले से ही मौजूद थे और काग़ज़ पर उनकी मुख्य भूमिका यह थी कि वे स्कूल के कामकाज का समर्थन करें; पर अब अकादमिक सलाहकारों के रूप में उनकी भूमिका को कम प्रमुखता देते हुए उनका उपयोग एक 'कूरियर' के रूप में किया गया यानी अब उन्हें शिक्षकों के साथ संवाद करना था, आँकड़ों को इकट्ठा करना था और कार्यक्रमों को आयोजित करना था। विभाग के परामर्श से जे-पीएएल के शोध-दल ने सलाहकार और मॉनीटर के रूप में एबीआरसी की भूमिका को क्रियान्वित करने और व्यवस्थित करने का काम किया। यह कार्य स्पष्ट रूप से परिभाषित ज़िम्मेदारियों के माध्यम से किया गया, उन्हें सीसीई कार्यक्रम के बारे में प्रशिक्षण दिया गया था और सलाह देने व निगरानी करने के बारे में बताया गया और अन्ततः ज़िले के भीतर एक आन्तरिक क्रियान्वयन समीक्षा और प्रतिक्रिया तंत्र स्थापित करने के बारे में बताया गया।

मूल्यांकन डिज़ाइन, नमूना और डेटा[2]

शिक्षा विभाग ने हमसे कुरुक्षेत्र और महेन्द्रगढ़ ज़िलों के चार ब्लॉक में मूल्यांकन करने का अनुरोध किया। चार ब्लॉक (महेन्द्रगढ़ में अटेली व नारनौल और कुरुक्षेत्र में थानेसर व पेहोवा) के स्कूलों में से पाँच सौ स्कूल नमूने के तौर पर लिए गए। इनमें से चार सौ स्कूल प्राथमिक विद्यालय थे जिनमें 1 से 5 तक की कक्षाएँ थीं जबकि शेष सौ स्कूल उच्च प्राथमिक स्कूल थे जिनमें 6 से 8 तक की कक्षाएँ यानी माध्यमिक, उच्च या सीनियर माध्यमिक स्कूल थे। आरसीटी को क्रियान्वित करने के लिए स्कूलों को यादृच्छिक रूप से सीसीई हस्तक्षेप प्राप्त करने वाले समूह या नियन्त्रण समूह के लिए चुना गया।

किस पर प्रभाव?

प्रभाव-मूल्यांकन करने के दौरान उन परिणामों की पहचान करना आवश्यक है जिसे प्रभावित करने के लिए कार्यक्रम को डिज़ाइन किया गया है। जब ये व्यापक परिणाम अवधारणात्मक रूप से परिभाषित हो जाएँ तो उसके बाद उन्हें मापने योग्य संकेतकों में विभाजित करना आवश्यक है। सीसीई को शुरू करने से कई प्रकार के परिणाम प्रभावित हो सकते हैं जैसे विद्यार्थी कम तनाव का अनुभव कर सकते हैं, उन्हें स्कूल और अधिक आनन्ददायक लग सकता है या वे आत्म-सम्मान और अधिगम के परिणामों में सुधार कर सकते हैं। हमारे मूल्यांकन का फ़ोकस अधिगम के परिणामों पर सीसीई के प्रभाव को मापने तक ही सीमित था। इसका एक प्रमुख कारण था। भारत जैसे देश में विद्यार्थियों के नामांकन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं पर अधिगम के परिणामों ने गति नहीं पकड़ी है। साल-दर-साल राष्ट्रीय आकलन सर्वेक्षण और एनुअल स्टेटस एजुकेशन रिपोर्ट (एएसईआर) बताती है कि अधिगम के परिणामों में बहुत कम वृद्धि हुई है। इसलिए, सीसीई जैसे दूरगामी कार्यक्रम को सबसे पहले अधिगम के परिणामों में सुधार करना चाहिए। इस फ़ोकस को वरिष्ठ दफ्तरशाहों द्वारा

[2]उसी समय शिक्षाशास्त्रीय हस्तक्षेप (जिसमें समूहन द्वारा विद्यार्थी की क्षमता के स्तर पर उपचारात्मक शिक्षण शामिल था) का भी मूल्यांकन किया गया था (TaRL)। कृपया देखें (बनर्जी 2017) जो इस हस्तक्षेप और सम्बन्धित हस्तक्षेपों के निष्कर्षों का वर्णन करता है।

समर्थित किया गया जो यह मानते थे कि सीसीई के डिज़ाइन और क्रियान्वयन में निवेश को देखते हुए वे समझना चाहेंगे कि इस कार्यक्रम ने अधिगम के परिणामों के मुख्य मुद्दे को सम्बोधित किया है या नहीं। इसलिए हमने हिन्दी और गणित में अधिगम के परिणामों पर ध्यान केन्द्रित करने का फैसला किया।

जाँच-परिणाम और तर्काधार

मूल्यांकन के परिणाम क्या थे? सीसीई क्रियान्वयन के एक वर्ष बाद हमने पाया कि सीसीई कार्यक्रम को अपनाने वाले स्कूलों में हिन्दी और गणित के परीक्षण में विद्यार्थियों के अंक आँकड़ों की दृष्टि से उन विद्यार्थियों के समान थे जो तुलनात्मक स्कूलों में थे। सीसीई स्कूलों के विद्यार्थियों ने किसी भी विषय में तुलनात्मक स्कूलों के विद्यार्थियों की तुलना में बेहतर प्रदर्शन नहीं किया। इसलिए हम निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सीसीई कार्यक्रम ने अधिगम के परिणामों में सुधार नहीं किया है।

तो जिस कार्यक्रम को अधिगम के परिणामों में सुधार लाने के लिए ही डिज़ाइन किया गया था उसका सकारात्मक प्रभाव क्यों नहीं पड़ा? कार्यक्रम के विफल होने के दो मुख्य कारण हैं – वे या तो मुख्य समस्या को हल करने के लिए डिज़ाइन नहीं किए गए हैं या फ़ील्ड में उन्हें सही ढंग से लागू नहीं किया गया है। इस भाग में हम कुछ मुख्य बातों और ठोस आँकड़ों के माध्यम से यह जानने की कोशिश करेंगे कि गलती कहाँ हुई होगी।

मज़बूत क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए कार्यक्रम के 'आपूर्तिकर्ताओं' (यहाँ शिक्षक) को अच्छी तरह प्रशिक्षित करना, उनकी निगरानी करना और आवश्यकता पड़ने पर समर्थन देना ज़रूरी है। हमने पाया कि सीसीई के बारे में 90 प्रतिशत से अधिक शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया था पर प्राथमिक कक्षाओं में केवल 41 प्रतिशत शिक्षकों और उच्च प्राथमिक कक्षाओं में 21 प्रतिशत शिक्षकों ने मूल्यांकन पत्रक और रिपोर्ट कार्ड बनाए जो मूल्यांकन की जानकारी के अभिलेखन (रिकॉर्डिंग) और उपयोग के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। हालाँकि यह बहुत गम्भीर बात है लेकिन इससे भी अधिक चिन्ताजनक बात यह थी कि रिकॉर्ड बनाने के बावजूद मूल्यांकन से प्राप्त जानकारी को आमतौर पर अच्छा प्रदर्शन न करने विद्यार्थियों की पहचान करने, शिक्षण विधियों को बदलने या विद्यार्थियों को फीडबैक देने के लिए उपयोग में नहीं लाया जाता था। इसलिए सीसीई के एक प्रमुख अन्तर्निहित सिद्धान्त की पूर्ति नहीं हो पाई। दिलचस्प बात यह है कि एससीईआरटी द्वारा जारी किए गए आधिकारिक सीसीई अवधारणा नोट में अच्छा प्रदर्शन न करने वाले विद्यार्थियों की पहचान करने और उसके उपचार की अनुशंसा की गई थी किन्तु शिक्षक-प्रशिक्षण के दौरान उपचार के बारे में व्यापक रूप से चर्चा नहीं की गई। राज्य में सीखने के ख़राब परिणामों को देखते हुए अच्छा प्रदर्शन न करने के विभिन्न कारणों के लिए उपचार सम्बन्धी ठोस उपायों की भी सिफ़ारिश नहीं की गई क्योंकि एससीईआरटी के संकाय ने संकेत दिया कि उपचार उपायों के विकास का दायित्व शिक्षकों का है। सीसीई के डिज़ाइन में 20 कौशल और 41 उप-कौशल के माध्यम से विद्यार्थियों का मूल्यांकन करना था जो बेहद कष्टसाध्य साबित हुए। प्रधानाध्यापकों ने भी आमतौर पर सबसे अधिक चिन्ता इसी बात पर व्यक्त की थी कि सीसीई की प्रक्रिया बहुत अधिक समय लेती है। जिन शिक्षकों का सर्वेक्षण किया गया उनमें से दो-तिहाई से अधिक शिक्षकों ने बताया कि उन्हें सीसीई लागू करने में समस्याएँ आ रही हैं, 10 प्रतिशत से कम शिक्षकों ने कहा कि सीसीई से शिक्षण सकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ है।

जब हमने फील्ड में जाकर शिक्षकों से बातचीत की तो हमें और भली प्रकार ज्ञात हुआ कि उनके लिए सीसीई का क्या अर्थ था। अधिकतर शिक्षकों के लिए सीसीई का मतलब यह था कि विद्यार्थियों के मूल्यांकनों की संख्या बढ़ा दी जाए या अधिक परियोजनाएँ करवाई जाएँ और यह सुनिश्चित किया जाए कि बच्चों को पाठ्य-सहगामी गतिविधियों में प्रोत्साहित किया जा रहा है। चूँकि उसी दौरान 'फ़ेल न करने की नीति' भी पेश की गई थी, इसलिए कुछ शिक्षकों ने इसका अधिक व्यापक अर्थ यह लिया कि 'परीक्षा/मूल्यांकन नहीं करना' है और सीसीई की आवश्यकता पर सवाल उठाया। हमने उन मूल्यांकन पत्रों की जाँच की जिन्हें शिक्षकों ने पूरी तरह से भरा था। इसमें हमने देखा कि शिक्षकों ने या तो 'अच्छा/सन्तोषजनक' जैसी टिप्पणियाँ दी हैं या कुछ भी नहीं लिखा है जबकि कुछ शिक्षकों ने कहा कि उन्हें पाठ्य-सहगामी गतिविधियों और व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिए बहुत अधिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यहाँ तक कि जिन शिक्षकों ने मूल्यांकन पत्रों को पूरा किया था वे यह नहीं बता पाए कि कौन-से बच्चे अच्छा प्रदर्शन नहीं कर पाए और क्यों। तो ऐसे में उपचारात्मक शिक्षण की तैयारी तो दूर की बात थी।

इन वार्तालापों और अवलोकनों से संकेत मिलता है कि शिक्षकों ने सीसीई के दर्शन को आत्मसात नहीं किया था जिसके कारण शायद उनकी रुचि और लागू करने की क्षमता प्रभावित हुई हो।

हमने क्या सीखा

हालाँकि हमारे मूल्यांकन ने विशेष रूप से हरियाणा के सीसीई कार्यक्रम की जाँच की लेकिन इससे कई सामान्य बातें निकलकर सामने आईं। हरियाणा के सीसीई को

विद्यार्थी-प्रदर्शन या शिक्षक-प्रेरणा सम्बन्धी ज़मीनी स्तर की वास्तविकताओं को ध्यान में रखते हुए डिज़ाइन नहीं किया गया था – यह इसलिए असफल रहा क्योंकि इसमें बुनियादी कौशल निर्माण या फीडबैक-तंत्र को ध्यान में नहीं रखा गया था।

एक आदर्श सीसीई कार्यक्रम में केवल विभिन्न मूल्यांकन उपकरण शामिल करने और अधिक मूल्यांकन करने के प्रस्तावों पर विचार करना काफ़ी नहीं होगा; इसे तो एक स्पष्ट प्रक्रिया निरूपित करनी होगी जिसके द्वारा मूल्यांकन डेटा का विश्लेषण किया जा सके और उससे शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया को पोषित किया जा सके। इसे अच्छा प्रदर्शन न करने वाले विद्यार्थियों की पहचान के लिए स्पष्ट दिशानिर्देश निर्धारित करने होंगे और ऐसे उपचारात्मक उपायों के प्रकारों पर अन्तर्दृष्टि प्रदान करनी होगी जिन्हें अपनाया जा सकता है। प्रशासन का मानना है कि शिक्षक ही अपने स्वयं के उपचारात्मक कार्यक्रम तैयार करने के लिए सर्वश्रेष्ठ हैं, लेकिन फील्ड से प्राप्त अन्तर्दृष्टि यह इंगित करती है कि शिक्षकों के पास यह कौशल नहीं है और इसलिए एक ऐसी राज्य नीति ज़रूरी है जो इस पर ध्यान केन्द्रित करे। मूल्यांकन के लिए बहुत सारे मानदण्ड हों तो मूल्यांकन में बहुत समय लगता है जबकि इसी समय को अधिक उत्पादक उपयोग में लगाया जा सकता है। अन्य राज्यों के सीसीई कार्यक्रमों में भी इसी प्रकार के प्रलेखीकरण की आवश्यकताएँ हैं तो वे भी हरियाणा के सीसीई कार्यक्रम के समान ही बोझिल लगेंगे। दिलचस्प बात यह है कि 2014 की राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद की रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि कई राज्यों में उनके सीसीई कार्यक्रम के लिए ऐसी आवश्यकताएँ हैं।

सीसीई में स्पष्ट अन्तर्निहित सिद्धान्त हैं तो भी अधिगम के परिणामों पर इसके महत्त्वपूर्ण प्रभाव नहीं दिखाई देते और इसलिए शायद यह ऐसा कार्यक्रम नहीं है जिसकी भारत को ज़रूरत है। भारत की स्थिति को देखते हुए यहाँ ऐसे कार्यक्रमों की सख़्त आवश्यकता है जो सीधे बुनियादी कौशल के निर्माण पर ध्यान केन्द्रित करते हैं क्योंकि यहाँ विद्यार्थियों का एक महत्त्वपूर्ण प्रतिशत अधिगम की बुनियादी योग्यता नहीं रखता है। दिलचस्प बात यह है कि भारत में सीसीई के अग्रणी सीबीएसई ने सीसीई की समस्याओं को पहचाना है और सीसीई की शुरुआत से पहले माध्यमिक विद्यालयों में मूल्यांकन की जो व्यवस्था मौजूद थी, करीब-करीब वही व्यवस्था बहाल कर दी है। शायद यही समय है जब राज्य सरकारों को इसकी जाँच-परख करके इस पर पुनर्विचार करना चाहिए।

References:

1 ASER Centre. 2012. Annual Status of Education Report 2011. New Delhi: Pratham.

2 ———. 2017. Annual Status of Education Report (Rural) 2016. New Delhi.

3 Banerjee, Abhijit, Rukmini Banerji, Esther Duflo, Harini Kannan, Shobhini Mukherji, Marc Shotland, and Michael Walton. 2017. From Proof of Concept to Scalable Policies: Challenges and Solutions, with an Application. Journal of Economic Perspectives, Vol. 31, Number 4

4 Berry, James Harini Kannan, Shobhini Mukherji, and Marc Shotland. 2018 Failure of Frequent Assessment: An Evaluation of India's Continuous and Comprehensive Evaluation Program. Working Paper, J-PAL.

5 Black, Paul, and Dylan Wiliam. 2009. Developing the Theory of Formative Assessment. Educational Assessment, Evaluation and Accountability (Formerly: Journal of Personnel Evaluation in Education) 21 (1): 5.

6 Central Board of Secondary Education. 2009. Quarterly Bulletin of the Central Board of Secondary Education 48 (4). 2010. Continuous and Comprehensive Evaluation: Manual for Teachers, Classes VI to VIII

7 Government of India. 2009. The Right of Children to Free and Compulsory Education Act 2009. Gazette of India 39 (August).

8 Indian Express. 2017. New assessment pattern by CBSE baffles parents, schools. Retrieved on April 23rd, 2018 from http://indianexpress.com/article/education/new-assessment-pattern-by-cbse-baffles-parents-schools-4614918/

9 Sharma, Kavita. 2014. CCE Programme/Scheme of States and UTs. Department of Elementary Education, National Council of Educational Research and Training.

हरिणी कण्णन जे-पीएएल दक्षिण एशिया के IFMR में एक वरिष्ठ शोध प्रबन्धक और पोस्ट-डॉक्टरेट फेलो हैं। साक्ष्य-आधारित नीति तैयार करने में अपनी रुचि के कारण वे जे-पीएएल दक्षिण एशिया के साथ काम करने के लिए प्रवृत्त हुईं। सम्प्रति वे शिक्षा और स्वास्थ्य सम्बन्धी विभिन्न मूल्यांकनों पर एक मुख्य अनुसन्धाता के रूप में नई दिल्ली में काम कर रही हैं। वे जे-पीएएल दक्षिण एशिया प्रशिक्षण टीम के साथ भी काम करती हैं और बिल और मेलिंडा गेट्स फ़ाउंडेशन, यूएसएआईडी और हरियाणा, तमिलनाडु और पंजाब सरकार जैसे विभिन्न भागीदारों के लिए विशिष्ट रूप से निर्मित सलाहकार सेवाएँ प्रदान करती हैं। उनसे *harini.kannan@ifmr.ac.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों का रूपान्तरण : समुदाय केन्द्रित दृष्टिकोण



जावेद सिद्दीकी

ग्रामीण स्कूलों की स्थिति

यह भारत की असाधारण उपलब्धि है कि यहाँ के 98% रहवासों में एक किलोमीटर के भीतर प्राथमिक विद्यालय (कक्षा I-V) हैं। आधिकारिक रिकॉर्डों में भौतिक आधारभूत संरचना तक पहुँच नामांकन के साथ 96% से अधिक मेल खाती है। लेकिन ग्रामीण बच्चों को विद्यालयों में लेकर आने की दिशा में अच्छी प्रगति नहीं हो पाई है क्योंकि बच्चों के स्कूल में टिके रहने की संख्या कम है और अधिगम के स्तर भी अपर्याप्त हैं जिसके चलते भविष्य में इन बच्चों के लिए इस बात के अवसर कम हो रहे हैं कि वे अच्छे नागरिक, माता-पिता और अर्थव्यवस्था में योगदान देने वाले सदस्य बन सकें। असर[1] 2016 से पता चलता है कि कक्षा VIII के बच्चों में से 27% विद्यार्थी कक्षा दो के पाठ पढ़ने में असमर्थ थे, लगभग 57% 3 अंकीय संख्या को 1 अंक से भाग देने में असमर्थ थे। कक्षा III में उन बच्चों का अनुपात केवल 42.5% है जो कम-से-कम कक्षा 1 के स्तर के पाठ पढ़ सकते हों।

ट्राँसफॉर्म रूरल इंडिया (टीआरआई) की बेसलाइन ने पूर्व-मध्य भारत के 17 ज़िलों में ग्रामीण प्राथमिक विद्यालयों पर ध्यान केन्द्रित किया जिसके परिणाम और भी ख़राब थे। इसके अलावा यह भी पाया गया कि ग्रामीण स्कूल शायद ही कभी पूरे समय तक खुले रहते हैं। औसतन हमारे यहाँ 25% नियमित शिक्षक और 25% अप्रशिक्षित ‘अतिथि’ शिक्षक और लगभग 50% स्थान रिक्त होते हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि माता-पिता अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से बाहर निकाल रहे हैं। ये वास्तव में चिन्ताजनक आँकड़े हैं। हमारे स्कूल बच्चों को बुनियादी कौशलों से लैस करने और अन्तर-पीढ़ीगत गतिशीलता (inter-generational mobility) में स्थिरता स्थापित करने में असफल रहे हैं। ग्रामीण विद्यालयों में अधिकांश बच्चे पहली बार स्कूल जाने वाले शिक्षार्थी हैं और आधे से अधिक माता-पिता कभी स्कूल नहीं गए हैं, स्कूली शिक्षा से उनकी आकांक्षा यह है कि इससे परिवार की प्रगति को आगे बढ़ाने में सहायता मिलेगी। इस प्रकार ग्रामीण विद्यालयों की इस व्यवस्थित उपेक्षा की सामाजिक कीमत चुकाने में परिवार और समुदाय शामिल हैं।

अधिगम के परिणामों की चिन्ताओं से परे, स्कूलों के साथ हमारी भागीदारी की प्राथमिकता यह होनी चाहिए कि लोकतांत्रिक समाज में बच्चे के भविष्य के जीवन को आकार दिया जा सके। हमारा समाज एक गहन स्तरीकृत समाज है जिसमें व्यापक जाति, वर्ग, लिंग भेदभाव और पदानुक्रम मौजूद हैं; ऐसे में अच्छी तरह से काम करने वाले ‘स्कूल’ वे मुख्य स्थान हैं जहाँ पर ऐसे नए सामाजिक अनुबन्ध बनाए जा सकते हैं जो स्वतंत्रता, समानता, न्याय और स्वाधीनता के हमारे संवैधानिक मूल्यों पर आधारित हों। बच्चे को स्कूल में अपने परिवार और रिश्ते के अलावा भी नया भाईचारा विकसित करने का मौक़ा मिलता है जो उसकी सहजात क्षमता की मुक्त अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक स्थितियाँ पैदा करता है।

ट्राँसफॉर्म रूरल इंडिया (टीआरआई) के प्रयास

शिक्षा के परिणामों में गुणवत्तापूर्ण जीवन के अन्य आयामों के साथ अन्तरंग और पारस्परिक रूप से मज़बूती होती है। प्राथमिक विद्यालयों में ‘प्रारम्भिक अधिगम का संकट’ बच्चों की अनुपस्थिति या शिशु विद्यालय की ख़राब गुणवत्ता से सम्बन्धित है, ख़ासकर ग्रामीण बच्चों के लिए जो पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं और जिनके घरों में छपी हुई या प्रिंट सामग्री का अभाव होता है। बहुत से शोध-कार्यों ने पुष्टि की है कि बच्चे का मनो-सामाजिक और संज्ञानात्मक विकास उसके पहले 1000 दिनों के पोषण द्वारा निर्धारित होता है जो आवास, बीमारी, स्वच्छता, घर पर भोजन की उपलब्धता, घर में लिंग समानता जैसे निर्धारकों से जुड़े होते हैं। स्कूलों में आधारभूत परिणामों को प्राप्त करने के लिए हमें अच्छी तरह से काम करने वाले स्कूलों के अलावा सुचारु रूप से चलने वाले ग्राम्य-जीवन की आवश्यकता होगी।

टीआरआई में शिक्षा सम्बन्धी जो प्रयास किए जाते हैं वे, समुदाय के नेतृत्व के साथ, गाँव में बहु-आयामी परिवर्तन के लिए की जाने वाली अपनी व्यापक कार्रवाई के साथ जुड़े हुए हैं। हमारी समझ में हमारे स्कूलों की ख़राब स्थिति के प्रमुख कारणों में से एक है तीन-तरफ़ा विश्वास का अभाव : समुदाय-विद्यालय, स्कूल-शिक्षक और बाल-समुदाय में अलगाव है। टीआरआई एक बहु-विध दृष्टिकोण लेकर इसे सम्बोधित करने के लिए स्थितियों का निर्माण करने का प्रयास करता है। स्कूल और शिक्षकों के उत्तरदायित्व में वृद्धि और बेहतर कक्षा

[1]भारत के सबसे बड़े ग़ैर-सरकारी संगठन प्रथम द्वारा संचालित वार्षिक सर्वेक्षण, शिक्षा रिपोर्ट की वार्षिक स्थिति (एएसईआर) 2005 से।

	तरीक़े	विवरण	सफलता कैसे दिखती है?
	माता-पिता की अन्तःक्रियात्मकता बढ़ाना	यह बच्चे को माता-पिता द्वारा समर्थन देने पर केन्द्रित है, इसमें ये बातें शामिल हैं– ● माता-पिता में शिक्षा और उद्देश्य की समझ का निर्माण ● बचपन से सम्बन्धित वैकल्पिक विचारों और बच्चे को घर में समर्थन देने के लिए माता-पिता को संवेदनशील बनाना ● घर में अधिगम की सामग्री, प्रिंट समृद्ध वातावरण ● माता-पिता एवं बच्चे द्वारा संयुक्त कार्य और प्रस्तुतिकरण	माता-पिता अपने बच्चे के अधिगम में निवेश करते हैं, दिलचस्पी लेते हैं और उनकी मदद करते हैं
	माता-पिता व स्कूल के जुड़ाव को सुदृढ़ करना	यह स्कूल और शिक्षक के साथ माता-पिता के जुड़ाव पर केन्द्रित है, इसमें ये बातें शामिल हैं – ● पीटीए और ऐसी ही अन्य संरचनाओं के माध्यम से, जहाँ भी सम्भव हो अपने बच्चे के बारे में शिक्षक के साथ संवाद करने के लिए माता-पिता का सहयोग करना ● उन्हें अपने बच्चे और उसके अन्य साथियों के अधिगम की उपलब्धि का आकलन करने के लिए तैयार करना ● शिक्षकों व बच्चों की अन्तःक्रिया और स्कूल की गतिविधियों का समर्थन करने के लिए माता-पिता का समूह बनाना	माता-पिता इसका औचित्य समझते हैं और इस पर एक राय है कि उनके बच्चे की परवरिश कैसी हो रही है, यह उन्हें जानना चाहिए। वे स्कूल के वैध मामलों का समर्थन करने में भी आगे बढ़कर रुचि दिखाते हैं।
	(क) स्कूल के साथ स्थानीय समुदायों के जुड़ाव को सुदृढ़ बनाना **(ख)** शिक्षा का समर्थन करने के लिए स्थानीय पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण और उसे बनाए रखना	यह "समुदाय" पर केन्द्रित है जिसमें माता-पिता के अलावा अन्य ग्राम वासी, महिला सामूहिक संस्थाएँ, पारम्परिक सामूहिक संस्थाएँ, पंचायत नेता आदि शामिल हैं और इनमें निम्नलिखित जुड़ाव हो सकते हैं – ● स्थानीय स्कूल के साथ स्वत्व, जुड़ाव, समर्थन और गर्व की भावना का विकास ● स्कूल के बारे में नागरिक समझ जिसमें आरटीई के तहत अनिवार्य बुनियादी अवसंरचना, शिक्षक और सरकार से समर्थन शामिल है ● एसएमसी को सुदृढ़ बनाना – अपनी भूमिका के बारे में सदस्यों की समझ ● गाँव शिक्षा समिति, जनपद शिक्षा उपसमूह आदि का कार्य ● बच्चों को स्कूल भेजने के लिए साथियों का सामाजिक दबाव ● ड्रॉप-आउट बच्चों के साथ सामुदायिक जुड़ाव ● शाम को बच्चों का एक-दो घण्टों के लिए पढ़ना आदि सामान्य मुद्दे हैं ● सामुदायिक स्वयंसेवक – शिक्षा-मित्र/पैरा-शिक्षक द्वारा बच्चों का कक्षा के बाहर/ऑफ़-क्लासरूम समर्थन करना ● शिक्षण प्रोत्साहन केन्द्र, पुस्तकालय, बाल गतिविधि केन्द्र आदि	स्थानीय समुदाय स्कूल के प्रति अपनत्व का भाव रखता है, रुचि रखता है, जुड़ा हुआ है और इसकी अच्छी कार्य पद्धति का समर्थन करता है। शिक्षा के सहायक तंत्र स्थापित करने के लिए योगदान (स्वयंसेवा, वित्त या संसाधन आदि के माध्यम से) देता है।
	शिक्षक प्रेरणा और क्षमताओं में वृद्धि	यहाँ शिक्षक के शिक्षा के मिशन के साथ सम्बद्ध होने पर ध्यान केन्द्रित किया गया है। इसमें ये बातें शामिल हैं – ● अभिस्वीकृति के लिए औपचारिक तंत्र ● वार्तालाप और सहकर्मी समूह ● शिक्षक संसाधन केन्द्र ● बेहतर कक्षा सामग्री और विधियाँ-वर्क शीट, शिक्षण-अधिगम सामग्री	शिक्षक प्रेरित हैं और कक्षाओं को बेहतर, सार्थक, आकर्षक और सीखने के लिए असरदार बनाने में सक्षम हैं और अपने कार्य का आनन्द ले रहे हैं।

	शिक्षा प्रणाली को सुदृढ़ करना	क्लस्टर और ब्लॉक स्तर पर निगरानी और समर्थन प्रणाली को सुदृढ़ करना; ● नए तरीक़ों की शुरुआत को एक सतत प्रक्रिया बनाने के लिए सीआरसी और बीआरसी बैठकों में भागीदारी ● सीआरसी और बीआरसी की भागीदारी के माध्यम से कार्यक्रम का विस्तार करने के लिए बीईओ के साथ काम करना ● इस बात की ओर शासन और प्रशासनिक संरचनाओं को संवेदनशील बनाना और उन्हें संस्थागत बनाने की दिशा में ले जाना	शिक्षा दफ्तरशाही और स्थानीय तंत्र शिक्षकों, मुख्य अध्यापकों के समर्थनकारी हैं

अनुभवों के लिए शैक्षिक नवाचार लाने की दिशा में काम किया जा रहा है। इसके अलावा लक्ष्यों और जुड़ाव को आकार देने में माता-पिता की आकांक्षाओं और समुदाय की साझा ज़िम्मेदारी और उत्तरदायित्व का सकारात्मक रूप से उपयोग करने के प्रयास भी किए जा रहे हैं। टीआरआई की शिक्षा क्षेत्र परिषद ने वांछित परिवर्तन लाने के लिए निम्नलिखित रास्तों का विस्तृत विवरण दिया है :

सामुदायिक कार्रवाई के लिए अवसरों का निर्माण करना

पिछले प्रयासों से हमें जो सीख मिली उसके आधार पर हमने अपने नए प्रयासों में समुदाय की भागीदारी को केन्द्र में रखा है। जिन समुदायों को अधिकतर निरक्षर माना जाता है, उन्हें बच्चों के अधिगम में योगदान देने में असमर्थ माना जाता है। इसलिए यह स्कूलों से सम्बन्धित निर्णय लेने की प्रक्रिया से अलग हो गया है। हम स्कूल प्रबन्धन समिति (एसएमसी) और गाँव/पंचायत शिक्षा समितियों जैसे अनिवार्य जुड़ाव से परे जाकर उसे विस्तारित करने का प्रयास कर रहे हैं। हम चाहते हैं कि समुदाय बच्चों को कक्षा के बाहर समर्थन प्रदान करने, माता-पिता को संगठित करने और गाँव में समर्थनकारी प्रिंट-समृद्ध वातावरण बनाने की ज़िम्मेदारी भी ले। जिस महत्त्वपूर्ण चुनौती को सम्बोधित किया जा रहा है वह है समुदाय का स्वत्व और माता-पिता का स्कूलों के साथ जुड़ाव स्थापित करना जो मौजूदा विश्वास के अभाव को दूर कर सकता है और शिक्षकों के मन में प्रयोजन का भाव ला सकता है। इस प्रकार हमारा प्रयास इस बात पर ध्यान केन्द्रित करता है कि सामुदायिक समूहों, पंचायत और उनके मुखियाओं के साथ काम करके उन्हें स्थानीय स्कूल प्रणाली की ज़िम्मेदारी लेने और उसे मज़बूत करने की ओर प्रवृत्त किया जाए। इसके अतिरिक्त समुदाय में से ही सामाजिक रूप से प्रेरित स्थानीय महिलाओं के एक कैडर को एसएमसी, पीआरआई-मंच जैसे सार्वजनिक प्रणाली इंटरफेस मंचों को प्रोत्साहित करने और समर्थन देने के लिए तैयार किया जा रहा है।

स्कूल के शिक्षकों के साथ समानान्तर जुड़ाव उनकी क्षमता का समर्थन करने और उन्हें समुदाय और पीआरआई से जोड़ने की कोशिश करता है जिससे कि वे उनकी सहायता व समर्थन के साथ अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकें। इस प्रकार परिवर्तन का सिद्धान्त **(अ)** 'सामुदायिक कार्रवाई' को शुरू करने **(आ)** माता-पिता की बेहतर भागीदारी **(इ)** शिक्षा प्रणालियों की वितरण क्षमता को मज़बूत करने की ओर ध्यान देता है। परिणाम और सामुदायिक नेतृत्व हमारे दृष्टिकोण के महत्त्वपूर्ण तत्व हैं, विशेष रूप से इसलिए क्योंकि हम यह चाहते हैं कि गाँवों, स्कूलों में हमारी उपस्थिति से परे भी हमारे प्रयास चलते रहें। अधिगम को बढ़ावा देने वाले वातावरण को बनाने वाली प्रक्रिया को संस्थागत बनाने के लिए हमें समुदाय के भावात्मक और प्रभावी जुड़ाव की आवश्यकता है।

इन प्रयासों के लिए समुदाय के साथ जुड़ाव के ऐसे नए तरीक़ों और नए आचारों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है, जो सामुदायिक स्वयंसेवकों की भागीदारी जैसे व्यावहारिक तरीक़ों से समर्थित हों। ऐसा करने के लिए शिक्षा के बारे में उनके दृष्टिकोण निर्माण करना आवश्यक है और साथ ही उन्हें बच्चों के जीवन-तंत्र तथा सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली की ज़िम्मेदारियों को आकार देने में स्कूल की भूमिका की सराहना करनी चाहिए। समुदाय आधारित संरचनाएँ – जैसे संस्थाओं के संघ और अन्य सामूहिक संगठन इस जुड़ाव के केन्द्र बिन्दु हैं। समुदाय में आयोजन और प्रक्रियाओं को महिलाओं द्वारा सुगमीकृत किया जाता है ताकि एक ऐसा वातावरण तैयार हो जो अधिगम को बढ़ावा दे और स्कूल के साथ समुदायों की भागीदारी शुरू हो। जुड़ाव की इस प्रक्रिया को संस्थागत बनाने के लिए उनकी क्षमताओं को मौजूदा कार्यात्मक संरचनाओं के साथ काम करने के लिए मज़बूत किया जाता है जैसे स्कूल प्रबन्धन और ग्राम पंचायत में स्थायी समितियाँ। यह इन संरचनाओं को समुदाय के लिए अधिक पारदर्शी और उत्तरदायी बनाने के लिए एक व्यापक आधार भी प्रदान करता है और इस प्रकार उन्हें स्कूल के विकास की प्रक्रिया में शामिल करता है।

इसके बाद हस्तक्षेप आरम्भ किए जाते हैं जो शिक्षा-विकास की पहल पर काम करने के लिए समुदाय आधारित संरचनाओं की क्षमताओं को विकसित करते हैं। बच्चों, माता-पिता और

सामुदायिक स्वयंसेवकों द्वारा डिज़ाइन की गई गतिविधियाँ स्थानीय समुदाय संगठन द्वारा लागू की जाती हैं, इसके लिए सूचना प्रदान करने की नियमित प्रक्रिया मौजूद है और प्रगति के बारे में समयोचित जानकारी देने की व्यवस्था भी है।

प्रगति

टीआरआई के प्रारम्भिक शिक्षा पायलट मध्य प्रदेश, झारखण्ड और पश्चिम बंगाल के 11 ब्लॉक में 2017 में शुरू हुए। प्रत्येक ब्लॉक में सामुदायिक सामूहिक संस्थाओं के साथ मिलकर शिक्षा संसाधन संगठन[2] द्वारा भागीदारी की प्रक्रिया की जाती है। मध्य प्रदेश में टीआरआईएफ ने शिक्षकों और सीआरसी के साथ काम करने और इस प्रयास के लिए एक सहायक वातावरण बनाने के लिए राज्य सरकार के साथ औपचारिक समझौता किया है। सभी संसाधन संगठन टीआरआई की शिक्षा क्षेत्र परिषद का हिस्सा हैं जो व्यापक रणनीति को एकीकृत करता है और समय-समय पर प्रगति का आकलन करता है।

इसने पारस्परिक अधिगम, सहकर्मी समर्थन और संयुक्त रूप से कार्य करने के अवसर दिए हैं। संसाधन संगठनों ने काम करने के पाँच तरीक़ों के लिए कार्यक्रम बनाए हैं, प्रत्येक ब्लॉक में स्कूलों की बेसलाइन स्थिति पूरी हो चुकी है जिससे सन्दर्भ-विशिष्ट रणनीतियों और गतिविधियों की जानकारी मिली है। आज 566 गाँवों में 731 समुदाय स्वयंसेवक अपने गाँवों में स्कूलों और ऑफ़-स्कूल प्रक्रियाओं को मज़बूत बनाने में लगे हुए हैं। महिला स्व-सहायता समूहों के मुखिया वाले 192 ग्राम संगठनों ने अपने गाँव के स्कूलों के लिए लक्ष्य निर्धारित किए हैं। 56 ज़िलों में समानान्तर सहायक अधिगम के स्थान जैसे कि पुस्तकालयों और शिक्षण केन्द्रों की शुरूआत की गई है और 110 गाँवों में ग्राम संगठन शिक्षकों का समर्थन करने के लिए बालमेलों का आयोजन करते हैं। सामुदायिक सदस्यों की इस तरह की सक्रिय भागीदारी के साथ 262 स्कूलों में एसएमसी के जुड़ाव को नियमित किया गया है और 176 गाँवों में एसएमसी ग्रामसभा/पंचायत से जुड़ी हुई हैं जहाँ शैक्षिक मुद्दों से सम्बन्धित सरोकारों को नियमित रूप से प्रस्तुत किया जाता है। 319 शिक्षकों के साथ शिक्षक-प्रशिक्षण और विभिन्न क्षमता निर्माण के प्रयास किए गए हैं जिनमें टीएलएम और वैकल्पिक कक्षा-प्रक्रियाओं का प्रभावी उपयोग शामिल है। मई 2018 में शुरू किया गया पहला वार्षिक डिपस्टिक (किसी समस्या के दायरे या गहराई का मापन) अध्ययन यह दिखाएगा कि क्या ऐसा शैक्षिक प्रयास अधिगम के बेहतर परिणाम दे सकता है जो सभी घटकों के साथ-साथ काम करता है जैसे बच्चे, माता-पिता, समुदाय, शिक्षक, स्कूल और जो समुदाय के नेतृत्व वाले बहु-आयामी प्रयास के सन्दर्भ में स्थित हो।

जिस क्षेत्र में यह स्पष्ट रूप से प्रगति कर रहा है वह है स्कूल के कार्यकलापों में समुदाय के सदस्यों की भागीदारी। एक महिला मुखिया ने परिवर्तन की इस इच्छा को पूरी तरह से अपना लिया है-'हम अपने जीवन के बारे में काफ़ी बुरा महसूस करते हैं, काश! हम पढ़ सकते...तो हमें 'गँवार' (अशिक्षित) नहीं कहा जाता, हम नहीं चाहते कि हमारे बच्चों को ऐसी स्थिति का सामना करना पड़े!' राजस्थान ब्लॉक के देवला गाँव की एक मुखिया रंजिता देवी ने समुदाय के लिए शिक्षा के महत्त्व को इस तरह से व्यक्त किया '...अगर बच्चों में ज्ञान और समझ है तो वे स्वच्छता के साथ जीवन जीते हैं, वे दूसरों के साथ बात कर सकते हैं और समझ सकते हैं कि दूसरे क्या कह रहे हैं। वे गाँव की सीमा के बाहर की चीज़ों को जान और समझ सकते हैं... वे जान सकते हैं कि कौन-सी सरकारी सहायता और योजनाएँ उपलब्ध हैं और इन योजनाओं का लाभ कैसे उठाया जाए।'

सुदूर ग्रामीण विद्यालयों के लिए कुछ आशाजनक संकेत दिखाई दे रहे हैं जैसे कक्षा में बेहतर उपस्थिति, शिक्षकों का स्कूलों और बच्चों के साथ अधिक समय व्यतीत करना, बच्चों के साथ माता-पिता की भागीदारी, शिक्षकों को मान्यता देने के सामुदायिक प्रयास, एसएमसी बैठकों की गुणवत्ता इत्यादि। समुदायों ने संसाधन एकत्रित किए हैं, बच्चों के लिए गतिविधि केन्द्र बनाए हैं और ग्रीष्मकालीन शिविर आयोजित किए हैं। बांकुरा में उत्साहित स्कूल शिक्षकों ने अपने अनुभवों, शिक्षण सम्बन्धी सर्वोत्तम तरीक़ों को साझा करने और अपने लेखन कौशल को पैना करने के लिए स्थानीय पत्रिका शुरू की है। मुकुन्दपुर प्राइमरी स्कूल के शिक्षक लक्ष्मण महतो ने कहा कि 'पत्रिका प्रगतिशील क्षेत्र की आवाज़ बन गई है... नियमित रूप से निकलने वाली इस पत्रिका में इस पूरे क्षेत्र की प्रगति और विचार-शक्ति की आवाज़ बनने की सम्भावना है और यह बात अच्छी शिक्षा का कारण बनने में मदद कर रही है।'

टीआरआई में यह प्रारम्भिक अनुभव हमें ग्रामीण स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए अभिसारी (convergent) कार्रवाई की शक्ति में विश्वास दिलाता है।

An Initiative of TATA TRUSTS

TRI TRANSFORM RURAL INDIA

---

[2]Eklavya (http://www.eklavya.in/); Vikramshila (http://www.vikramshila.org/); Prajayatna (www.prajayatna.org); Vidya Bhawan (http://www. vidyabhawan.org/) and Samavesh http://www.samavesh.org/)

जावेद सिद्दीकी एक प्रबन्धक के रूप में, ट्राँसफॉर्म रूरल इंडिया (टीआरआई) के शिक्षा क्षेत्र परिषद का कार्य सम्भालते हैं। वे साझेदारी की शुरुआत और उसे आगे बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार हैं। गहरी समझ तथा ज़मीनी-स्तर की रणनीतिक कार्रवाइयों के लिए फील्ड में सहायता भी देते हैं। प्राथमिक शिक्षा और विकास के क्षेत्र में उन्हें बीस साल का पेशेवर अनुभव है, जिनमें से ग्यारह वर्षों तक उन्होंने भारत भर में ग़ैर-सरकारी संगठनों और राज्य शिक्षा निकायों के अनुसन्धान सहयोगी के रूप में काम करते हुए विभिन्न कार्यक्रमों और परियोजना घटकों का प्रबन्धन किया। टीआरआई फ़ाउंडेशन में शामिल होने से पहले, जावेद ने एकलव्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन जैसे प्रमुख संगठनों के साथ विज्ञान-शिक्षा पर काम किया है। उन्होंने सरकारी और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं जैसे एससीईआरटी, बीजीवीएस महाराष्ट्र, दूसरा दशक राजस्थान, आर्च, नचिकेता ट्रस्ट आदि के लिए स्रोत व्यक्ति के रूप में भी काम किया है। जावेद ने एशियन इंस्टिट्यूट ऑफ़ मैनेजमेंट, फिलीपींस से विकास प्रबन्धन में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। इसके अलावा उन्होंने वनस्पतिशास्त्र में स्नातकोत्तर एवं ससेक्स विश्वविद्यालय, यू.के. से अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा और विकास में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है। उनसे *javed@trif.in* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए पहल

मनोज कुमार त्रिपाठी



शिक्षा, समाज का एक प्रमुख सरोकार है। स्वाभाविक रूप से हम एक व्यक्ति और समाज के रूप में हमेशा बेहतर शिक्षा के बारे में सोचते हैं जिससे व्यक्तियों का और अन्ततः समाज का समग्र विकास हो सके। आज गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के विचार ने गति पकड़ ली है। शिक्षाविदों और यहाँ तक कि आम लोगों के बीच भी यह शब्द सरोकार और बहस का विषय है। वास्तव में तो शिक्षा अपनी प्रकृति और परिणाम में गुणात्मक ही है। चर्चा या सरोकार का विषय तो उसकी प्रक्रिया, विषय-सामग्री आदि होना चाहिए। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न स्तरों पर कई हस्तक्षेप और अभिनव विचार लागू किए जा रहे हैं और उन्हें अभ्यास में भी लाया जा रहा है, विशेष रूप से प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में।

हमारे राज्य में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षकों के सतत पेशेवर विकास के लिए पच्चीस से अधिक क्षेत्रों की पहचान की गई है ताकि उनकी पेशेवर आवश्यकताओं और चुनौतियों को पूरा किया जा सके। इसके अलावा, उद्देश्य यह है कि कक्षा को आकर्षक बनाया जाए, कक्षा की गतिविधियों में प्रभावशीलता और जीवन्तता लाई जाए और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि बच्चों को एक ऐसा अनुकूल माहौल प्रदान किया जाए जहाँ वे अपने ज्ञान का निर्माण कर सकें।

कला एकीकृत शिक्षा (आर्ट इंटीग्रेटेड लर्निंग-एआईएल), साक्षरता से सम्बन्धित स्कूल तैयारी कार्यक्रम, प्रारम्भिक साक्षरता, गणना कौशल, आनन्ददायक रूप में अँग्रेज़ी जैसे पेशेवर विकास कार्यक्रम निरन्तर लागू किए जा रहे हैं जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकताओं को पूरा करने में काफ़ी प्रभावी और सहायक साबित हुए हैं।

कला एकीकृत शिक्षा कार्यक्रम (एआईएल) एनसीईआरटी के प्रमुख कार्यक्रमों में से एक है। इसे 2013 में बिहार में एससीईआरटी बिहार की पहल और यूनिसेफ़ के समर्थन के साथ शुरू किया गया था। मास्टर ट्रेनर्स के बैच एनसीईआरटी की विशेषज्ञ संसाधन टीम द्वारा प्रशिक्षित किए गए थे। तब से एआईएल कार्यक्रम में बढ़ोतरी कर दी गई और अब यह सीपीडी का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। प्रारम्भ में इसे पूर्ण समर्थन और उत्साह के साथ 20 ज़िलों के 200 स्कूलों में शुरू किया गया जिनमें से प्रत्येक ज़िले में 10 स्कूल हैं। शिक्षकों, सीआरसीसी एवं बीआरपी को एआईएल की शिक्षण प्रक्रिया का प्रशिक्षण दिया गया। इसके तात्कालिक परिणाम काफ़ी सकारात्मक हैं। वास्तव में सीखने की प्रक्रिया में कला के एकीकरण ने न केवल स्कूलों में एक दोस्ताना और आनन्ददायक वातावरण बनाया है, बल्कि यह कक्षा की गतिविधियों में जीवन्तता और आकर्षण को वापस लाने की एक गतिशील शैक्षणिक प्रक्रिया के रूप में भी स्थापित हो गया है। बच्चों की उपस्थिति, जुड़ाव और भागीदारी कई गुना बढ़ गई है, स्कूल के वातावरण में पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन जीवन्त चेतना सत्र (प्रातःकालीन प्रार्थना सभा) के रूप में साफ़ नज़र आता है।



बाल-संसद और प्रशिक्षित शिक्षकों के सक्षम नेतृत्व में बच्चे नियमित तालबद्ध तरीक़े से विभिन्न शैली में अलग-अलग आकार बनाते हैं। राज्य की प्रार्थना और राष्ट्रगान के अलावा चेतना सत्र में वे उत्साहजनक रूप से भक्ति और स्थानीय लोक-गीत भी गाते हैं जो उनकी संस्कृति का सार है। समाचार पढ़ना, स्थानीय समाचार लिखना और एकत्र करना, कविता पाठ, प्रेरक वार्ता, जन्मदिन और पर्व मनाना, सामाजिक और सांस्कृतिक समारोह आदि प्रातःकालीन प्रार्थना सभा के नियमित अंग बन गए हैं। दिलचस्प बात यह है कि चेतना सत्र की गतिविधियाँ इस तरह से डिज़ाइन की गई हैं कि उन्हें आसानी से विभिन्न विषयों, अवधारणाओं और कक्षा-गतिविधियों के साथ एकीकृत किया जा सकता है।

उदाहरण के लिए यदि बच्चे किसी विशेष दिन किसी विशेष आकार या डिज़ाइन में खड़े हैं तो हो सकता है कि यह कक्षा

1 से 8 के लिए आकार, माप और परिमाप के बारे में चर्चा और समझ का एक बिन्दु हो। प्राथमिक कक्षाओं के लिए यह अवलोकन, पहचान, आत्मसात्करण (assimilation), वर्गीकरण इत्यादि का विषय हो सकता है जबकि उच्च कक्षाओं के लिए यह परिमाप, क्षेत्रफल, मापन आदि का विषय है।

एआईएल, प्रचुर मात्रा में उपलब्ध स्थानीय संसाधनों के साथ स्थानीय कला और सांस्कृतिक घटकों को एकीकृत करने के लिए पर्याप्त गुंजाइश और अवसर प्रदान करता है। रंग और क्रेयॉन, रेत और मिट्टी, काग़ज़ और पत्तियाँ, कपड़े और परिधान, इस कार्यक्रम में शामिल हर चीज़ एक प्राकृतिक भावना प्रदान करती है। यह कार्यक्रम विभिन्न अवधारणाओं को बेहतर तरीक़े से समझने के लिए शिक्षण-अधिगम सामग्री



के निर्माण में मदद करता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी प्रक्रियाओं में बच्चों की सक्रिय भागीदारी होती है इसलिए वे इनके साथ पूरी तरह से जुड़ जाते हैं। अलग-अलग कक्षा-स्तरों और विभिन्न विषयों के साथ जोड़ने के लिए जब दृश्य और प्रदर्शन कलाओं के विभिन्न रूपों को पहचानकर कक्षा में उनका उपयोग किया जाता है तो कक्षा में एक जीवन्त वातावरण का निर्माण होता है, जो बच्चों के लिए दिलचस्पी और ख़ुशी से भरा होता है। शैक्षणिक दृष्टि से भी एआईएल बच्चों को कल्पना और व्यक्त करने, अपनी रचनात्मकता और अभिव्यक्ति को दर्शाने, अवधारणाओं को समझने, उपयुक्त कौशल विकसित करने जैसे और कई अन्य अवसर प्रदान करता है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का वातावरण निर्मित करने के लिए एससीईआरटी और डाइट द्वारा उचित प्रशिक्षण, अकादमिक इनपुट और समर्थन के साथ पूरे राज्य के ज़्यादातर स्कूलों में एआईएल के शिक्षणशास्त्र को अपनाया जा रहा है।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा में एक और दिलचस्प तथा अभिनव हस्तक्षेप है *चहक* जो स्कूल की तैयारी (स्कूल रेडिनस प्रोग्राम) का कार्यक्रम है। पहली बार स्कूल आने वाले बच्चों को स्कूल में अपना स्थान और पहचान प्राप्त होनी चाहिए। उन्हें स्कूल अपने घरों के जितना ही सुखद लगना चाहिए। स्कूल का वातावरण अनुकूल, मैत्रीपूर्ण और आनन्ददायक होना चाहिए, जिससे बच्चे स्कूल के साथ अन्तरंगता महसूस करें। यह कार्यक्रम अधिगम की सुनिश्चितता के लिए 'तैयार बच्चे और



तैयार स्कूल' की भावना पर आधारित है। *चहक* कार्यक्रम इस मिथक को तोड़ रहा है कि केवल शिक्षक ही अधिगम को सुनिश्चित कर सकता है। यह कार्यक्रम दृढ़ता से इस तथ्य को स्थापित करता है कि प्रत्येक बच्चे में सीखने की क्षमता होती है और वह सीखने के लिए तैयार होता है। यह 24 दिवसीय कार्यक्रम नए सत्र के प्रारम्भ में, ज़्यादातर नए प्रवेश लेने वाले बच्चों के साथ शुरू होता है। बच्चों के सन्दर्भ, पृष्ठभूमि और पिछले अनुभवों को ध्यान में रखते हुए यह कार्यक्रम इस तरह से डिज़ाइन किया गया है कि बच्चे बिना किसी हिचकिचाहट के स्कूल के वातावरण से परिचित हो सकें।



चहक की गतिविधियों के ज़रिए यह सुनिश्चित करने का प्रयास है कि बच्चों के लिए स्कूल एक स्नेहपूर्ण, आकर्षक और भयरहित स्थान हो, ख़ासकर उन बच्चों के लिए जो पहली बार स्कूल आ रहे हैं। जो बच्चे पहले कभी प्री-स्कूल नहीं गए हों, हाशिए वाली पृष्ठभूमि से हों और या जिन्हें पाँच या छह वर्ष की कच्ची उम्र में अपेक्षित मनोवैज्ञानिक समर्थन नहीं मिल पाया हो – यह कार्यक्रम उन बच्चों के लिए इन परिस्थितिजन्य कमियों की भरपाई करने की कोशिश भी करता है।

चहक कार्यक्रम, स्कूल और वहाँ के शिक्षकों के लिए बच्चों को समझने और उन्हें अपनाने की प्रक्रिया को भी आसान बनाता है। इस कार्यक्रम में कहानी कहना, खेल-कूद, सही हाव-भाव के साथ कविता-पाठ, अभिनय, गायन, नृत्य व नाटक, मिट्टी, रेत, क्रेयॉन और रंगों के साथ खेलना, स्केचिंग, पेंटिंग, अवलोकन और नेचर वॉक के माध्यम से आसपास के वातावरण की पहचान करना शामिल है।

बिहार बाल भवन किलकारी, बिहार शिक्षा परियोजना, एससीईआरटी बिहार और यूनिसेफ़ के समर्थन से राज्य के सभी स्कूलों में *चहक* कार्यक्रम लागू किया जा रहा है। कक्षा 1 और 2 के शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया गया है। शिक्षक न केवल प्रशिक्षण का आनन्द ले रहे हैं बल्कि बदलाव लाने के लिए अपने-अपने स्कूलों में एक आनन्दपूर्ण, जीवन्त और मैत्रीपूर्ण माहौल भी बना रहे हैं।



गुणवत्तापूर्ण शिक्षा हेतु एक अन्य पहल है - *खेले पढ़े बढ़े बिहार* जो खेल आधारित अधिगम कार्यक्रम है। यह सच है कि हर बच्चे में बहुत सारी क्षमता होती है और वह रचनात्मक ऊर्जा और शक्ति से भरा होता है। बच्चे प्रकृति से जिज्ञासु और अन्वेषणशील होते हैं, उनमें नेतृत्व करने के सहज गुण और सहयोग और मदद करने की प्रवृत्ति होती है। वे अपनी पूरी ताक़त और क्षमता के साथ अपने इच्छित तरीक़े से कार्य करने की कोशिश करते हैं। उनकी संलग्नता और गतिविधियों को देखकर हम इसका अनुभव कर सकते हैं ख़ासकर तब जब वे खेल रहे हों। उनके इस गुण को देखकर हम यह महसूस कर सकते हैं कि उनके सामर्थ्य और गुणों को अधिगम के संवर्धन के लिए प्रभावी ढंग से प्रयोग में लाया जा सकता है।

खेल-कूद में उन्हें अपने उत्साह, जोश और भागीदारी की पूर्ण क्षमता दिखाने के अवसर मिलते हैं। इसी धारणा के साथ राज्य में खेल-आधारित-अधिगम का कार्यक्रम *खेले पढ़े बढ़े बिहार* शुरू किया गया है। इस कार्यक्रम की ख़ासियत यह है कि इसमें बच्चों के अनुकूल विभिन्न खेलों को शामिल किया गया है जो गणित, विज्ञान और भाषायी कौशलों की अवधारणाओं के साथ सही ढंग से एकीकृत किए गए हैं। खेल आधारित अधिगम की थीम 'विकास के लिए खेल' है। इसमें विभिन्न श्रेणियों के लगभग सभी खेलों और खेल सम्बन्धी गतिविधियों को शामिल किया गया है। खेलों को इस तरह से डिज़ाइन और संशोधित किया गया है कि बाहर खेले जाने वाले खेल आसानी से कक्षा के अन्दर भी एक छोटी-सी जगह में खेले जा सकते हैं। इसमें स्वास्थ्य और आरोग्य, स्वच्छता और शारीरिक साक्षरता भी शामिल है। स्थानीय विशिष्ट खेलों के महत्त्व को समझते हुए उनका चयन भी किया गया है ताकि बच्चे अपनी रुचि के अनुसार, रचनात्मकता के साथ और खेल-खेल में ही सीख सकें।

यह कुछ पहल हैं जो राज्य में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की माँग और चुनौतियों को पूरा करने के लिए चलाई जा रही हैं। इन कार्यक्रमों की लागत कम है और यह स्थानीय संसाधनों पर आधारित हैं, इसलिए स्कूल, शिक्षक, बच्चों और यहाँ तक कि माता-पिता ने भी इन्हें आगे बढ़कर अपनाया है और इनके साथ जुड़ गए हैं।



सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन सभी कार्यक्रमों की प्रकृति समावेशी है और किसी भी प्रकार के अवरोध के बिना इनमें सभी की भागीदारी और जुड़ाव के लिए पर्याप्त अवसर हैं। इसमें कोई शक़ नहीं कि यह कार्यक्रम सरल, रोचक और सहज हैं क्योंकि वे सभी को शामिल करने का अवसर प्रदान करते हैं। उनका प्रभाव अधिक स्थितिपरक और तत्काल होता है जिसकी तुलना अनुभवजन्य आँकड़ों के साथ भी नहीं की जा सकती।

प्रत्येक दिन एक नई आशा, अपेक्षा और अनुभवों से भरा नया क्षितिज साथ लेकर आता है। बच्चे अपने अनुभवों और स्थानीय संसाधनों के साथ इन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता को आगे बढ़ाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। यह सभी कार्यक्रम समुदाय को क़रीब लाने के अवसर प्रदान करते हैं और कई जगहों पर चलाए जा रहे हैं।

मनोज कुमार त्रिपाठी वर्तमान में सरकारी स्कूल, भेल डुमरा, आरा, भोजपुर, बिहार में प्रधानाध्यापक हैं। वे डाइट पिरौटा, भोजपुर में अतिथि विद्वान हैं। वे प्राथमिक कक्षाओं की विज्ञान-पुस्तकों, डीएलएड की पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और स्व-अधिगम सामग्री तथा सेवा-पूर्व व सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण मॉड्यूल के विकास के साथ जुड़े हुए हैं। वे एससीईआरटी बिहार एवं बिहार शिक्षा परियोजना परिषद के ट्रेनर, विषय-विशेषज्ञ और राज्य संसाधन समूह के सदस्य हैं। उनसे *manojtripathy365@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

शिक्षकों के 'प्रशिक्षण' के लिए सरकारी पहलें : सिद्धान्त और क्रियान्वयन

निमरत खण्डपुर



सन्दर्भ

शिक्षक सभी शैक्षिक सुधारों का केन्द्र होते हैं – यह विचार शैक्षिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन का अन्तर्निहित सिद्धान्त है। इसलिए सामान्यतया शिक्षकों को सक्षम करना शिक्षा की अधिकांश सरकारी पहलों का पूरक है। यहाँ पर पूरक शब्द का प्रयोग बहुत सोच-समझकर किया गया है – हालाँकि प्रयोजन तो यह है कि शिक्षकों को परिवर्तन लाने के लिए सक्षम किया जाए, लेकिन फिर भी शिक्षक एक प्रमुख भूमिका निभाने के बजाय पूरक बनकर रह जाते हैं। इसका स्पष्ट उदाहरण है राज्यों में सतत और व्यापक मूल्यांकन का क्रियान्वयन। अधिकतर राज्यों में अच्छे अध्यापन का सुदृढ़ीकरण एक ऐसा 'कार्यक्रम' बन गया जो निश्चित नमूनों या टेम्पलेट और नज़दीकी निगरानी पर आधारित था। अधिगम में अपने विद्यार्थियों की मदद करने के लिए शिक्षक और उसकी स्वायत्तता में विश्वास करने की बजाय हमने उन पर अतिरिक्त काग़ज़ी कार्य का बोझ डाल दिया जो उनकी अप्रसन्नता का कारण बन गया।

शिक्षक पर विश्वास में कमी के कई कारण हैं। जैसे पाठ्यक्रम, सामग्री और प्रक्रियाओं के शीर्ष-पाद संचरण (top-down percolation) के माध्यम से शिक्षक की स्थिति के महत्त्व को कम करना, जिस परितंत्र में शिक्षक काम करते हैं उसमें सुविधा की कमी; जिसकी वजह से हमारी कक्षाओं में पुराने तरीक़ों का उपयोग होता है और अधिगम के परिणाम हमेशा ख़राब ही रहते हैं।

शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए सरकार द्वारा निर्मित अनेक पहलों पर विचार करें तो स्थिति और भी अधिक विडम्बनापूर्ण हो जाती है जिसमें इसी उद्देश्य के लिए पूरी तरह से समर्पित विकेन्द्रीकृत संरचनाएँ भी शामिल हैं। यूँ तो इन संरचनाओं का प्रयोजन शिक्षकों के सेवा-पूर्व और सेवाकालीन व्यावसायिक विकास का सुगमीकरण करना है लेकिन इस लेख में शिक्षकों के सेवाकालीन व्यावसायिक विकास या 'प्रशिक्षण' (आमतौर पर शिक्षकों के अधिगम के लिए की जाने वाली औपचारिक गतिविधियों के लिए उपयोग किया जाने वाला शब्द) से सम्बन्धित पहलों पर चर्चा की जाएगी।

सबसे पहले इस प्रश्न को सम्बोधित करने की ज़रूरत है कि अगर शिक्षकों को अपनी कक्षाओं में परिवर्तन लाने में सक्षम होना है तो उन्हें किस तरह की सहायता चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर देने के बाद शिक्षक पेशेवर विकास की दिशा में की गई पहलों के वास्तविक क्रियान्वयन की समीक्षा इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर की जाएगी।

क्षमता निर्माण सिद्धान्तों की रूपरेखा

सिद्धान्त

सेवारत शिक्षक कैसे सीखते हैं - इससे सम्बन्धित साहित्य की समीक्षा और कई वर्षों की सीख कुछ सिद्धान्त हमारे समक्ष रखती है। फिर यही सिद्धान्त शिक्षकों में क्षमता निर्माण करने हेतु एक रूपरेखा तैयार करने के लिए आधार प्रदान करते हैं।

पहला सिद्धान्त यह है कि व्यावसायिक विकास गतिविधियों में शिक्षक की भागीदारी कक्षा-शिक्षण और विद्यार्थी-अधिगम में किसी भी बदलाव को प्रभावित करने के लिए अपेक्षित है। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि शिक्षकों के पास वर्तमान नीति और शिक्षा सम्बन्धी लेखों के आलोक में अपने स्वयं के शिक्षण अभ्यासों की जाँच करने के बहुत कम अवसर होते हैं।

किन्तु इस सिद्धान्त के संचालन में ध्यान देने की ज़रूरत है। अभ्यास में किसी भी बदलाव के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी, पाठ्यक्रम, शिक्षण-अधिगम, मूल्यांकन और अपनी क्षमताओं के बारे में शिक्षकों के व्यक्तिगत सिद्धान्तों में बदलाव आए। इसके लिए, शिक्षकों को अतिरिक्त या अलग दृष्टिकोण अपनाने और/या जानकारी प्राप्त करने तथा इन्हें अपने मौजूदा सिद्धान्तों के साथ जोड़ने में सहायता करने के लिए गहन जुड़ाव की आवश्यकता है। शिक्षण एक जटिल गतिविधि है, जिसमें व्यापक विविधता और शिक्षण-अधिगम की ऐसी विशिष्ट स्थितियाँ हैं जिनका सामना करने के लिए कोई प्रशिक्षण शिक्षकों को तैयार नहीं कर सकता। साथ ही शिक्षकों को इन सीखी हुई बातों को अपने शिक्षण-अभ्यासों में लागू करने के लिए और इस अनुप्रयोग के प्रभाव की समीक्षा करने के लिए समय की आवश्यकता होती है। फिर उन्हें इन अनुभवों को अपने किसी अनुभवी साथी के साथ साझा करके सामने आई चुनौतियों का सामना करने के लिए समाधान भी ढूँढ़ना होता है। संक्षेप में कहा जाए तो उन्हें अपने अभ्यास के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तन लाने से पहले जिस आत्मविश्वास

की ज़रूरत होती है, उसे विकसित करने के लिए समय और समर्थन की आवश्यकता हो सकती है।

इस परिदृश्य में, अल्पावधि वाले आमने-सामने के प्रशिक्षणों को शिक्षकगण ज्ञान और नए कौशल के अपेक्षाकृत अलग-अलग टुकड़े हासिल करने के ऐसे अवसर मानते हैं जिन्हें आसानी से अभ्यास में परिवर्तित किया जा सकता है - परिणामस्वरूप सुधार पर किसी भी प्रयास को एक ऐसे नए 'कार्यक्रम' के रूप में देखा जाता है जिसे लागू करने के लिए इन तीन या चार चीज़ों को करना है। इससे समझ में कोई गहन परिवर्तन प्रभावित नहीं होता है; अतः अभ्यास में परिवर्तन या तो टिक नहीं पाता या ऐसा वास्तविक परिवर्तन बहुत कम होता है जिससे सुधार हो सके। इसलिए, किसी भी वास्तविक परिवर्तन के लिए, शिक्षकों को पेशेवर विकास की गतिविधियों के साथ दीर्घकाल तक जुड़ना होता है।

दूसरा सिद्धान्त पहले सिद्धान्त से ही निकलता है। परिवर्तन में समय लगता है, ख़ासकर जब शिक्षकों के रोज़मर्रा के कार्यों की माँग उनके नए अधिगम से टकराती है। ऐसी स्थिति में उनमें सैद्धान्तिक दृढ़ विश्वास से अधिक यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए कि परिवर्तन आवश्यक और सार्थक है - उन्हें निरूपण, उदाहरण और संवाद की आवश्यकता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षकों को अपने अधिगम के अनुप्रयोग से सम्बन्धित विशिष्ट और व्यक्तिगत फीडबैक की आवश्यकता होती है। इसलिए पेशेवर विकास गतिविधियों से सीखी हुई बातों के क्रियान्वयन के लिए लगातार संवाद और हस्तक्षेप महत्त्वपूर्ण है।

तीसरा और अन्तिम सिद्धान्त यह है कि उपर्युक्त सिद्धान्तों को यथार्थ रूप देने के लिए शिक्षकों को स्कूल की नीति और प्रक्रियाओं पर प्रभाव डालने में सक्षम होना चाहिए। इसके लिए स्कूल का वातावरण सहायक होना चाहिए न कि ऐसा कि जिसमें रिकॉर्ड और परीक्षाओं में शिक्षार्थियों के अंक जैसी मूर्त या ठोस चीज़ों की निगरानी पर ध्यान दिया जाता हो। उन्हें स्वीकारी माहौल वाले एक ऐसे मंच की आवश्यकता है जिसमें वे अपनी सफलताओं, सरोकारों और चुनौतियों को व्यक्त कर सकें और इस तरह से कार्यक्रमों की योजना बनाने और रोलआउट में योगदान कर सकें। साथ ही उन्हें अपने अनुभवों के अनुरूप विशिष्ट सहायता की भी आवश्यकता होती है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें विश्वास की ज़रूरत है।

घटक

इन तीन सिद्धान्तों के आधार पर, शिक्षकों की निर्माण क्षमता की जो रूपरेखा उभरकर सामने आती है उसमें कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण घटक हैं जो कार्यक्रमों के लिए सामान्य हैं।

सबसे पहले एक समर्थकारी परितंत्र की आवश्यकता है जो शिक्षकों को इस बात की अनुमति दे कि वे अपने अधिगम की बागडोर अपने हाथों में लें। शिक्षक पेशेवर विकास की वर्तमान स्थिति में शिक्षकों से सम्बन्धित अभ्यासों की व्यापक समीक्षा और सुधार की आवश्यकता है। इसके लिए जहाँ उचित सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा अत्यावश्यक है, वहीं सेवाकालीन शिक्षकों के व्यावसायिक विकास को जारी रखने के महत्त्वपूर्ण घटक इस प्रकार हैं : कार्य करने की ऐसी परिस्थितियाँ और संस्कृति, क्रियाविधि और समर्थन जो विशेष रूप से डिज़ाइन की गई हों। इसके साथ व्यक्तिगत प्रयास, स्व की भावना और सहकर्मियों से सीखने की संस्कृति भी आवश्यक है।

पेशेवर विकास की गतिविधियों के निर्माण में सीखने के कई तरीक़े शामिल होने चाहिए, उदाहरण के लिए कार्यशालाएँ, पढ़ना, चर्चाएँ, सम्पर्क यात्राएँ, अधिगम समुदाय, कक्षा में समर्थन आदि और साथ में यह भी सुनिश्चित करना चाहिए कि गतिविधियों में एकीकरण और सुसंगतता हो। सम्बन्धित साहित्य की एक समीक्षा से पता चलता है कि शिक्षक-अधिगम को बढ़ावा देने वाली गतिविधियों में ये बातें शामिल हैं : कक्षा-अभ्यास से सम्बन्धित चर्चाओं को सुनना, सहकर्मियों का अवलोकन करना, अपने अवलोकन के बाद तत्सम्बन्धी फीडबैक प्राप्त करना, पूरक सामग्री तक पहुँच एवं विद्यार्थी गतिविधियों के उदाहरण, पेशेवर पठन के साथ जुड़ना, अपने से अधिक विशेषज्ञ के साथ अभ्यास पर चर्चा करना, विषय सीखने का प्रामाणिक अनुभव, अभ्यास के व्यक्तिगत सिद्धान्तों और उनके प्रभावों पर चर्चा, विद्यार्थी की समझ और परिणामों की जाँच, वर्तमान अभ्यास का विश्लेषण और परिवर्तन की योजना तथा सहकर्मियों के साथ उन मुद्दों पर चर्चा करना जिन्हें पारस्परिक रूप से या व्यक्तिगत रूप से पहचाना गया है। इसलिए इन गतिविधियों को आमने-सामने के प्रशिक्षण के लिए सीमित करना प्रतिकूल हो सकता है।

एक और घटक शिक्षक के विकल्प निर्धारण का है कि वह किस गतिविधि में भाग ले, विषय-सामग्री की सिफ़ारिश करे, मदद लेनी है या नहीं और लेनी हो तो किससे ले आदि क्योंकि इस प्रकार शिक्षक अपने विकास की स्वायत्तता बरकरार रख पाते हैं। फ़ोकस इस बात पर नहीं होना चाहिए कि शिक्षक को सामग्री के बारे में 'आवश्यकता से अधिक समझाया' जाए और इस तरह से उद्देश्यों को पूरा कर दिया जाए, वरन शिक्षक में आत्म-चिन्तन और स्व-अधिगम की आदतें डालने में उनकी मदद करनी चाहिए। पेशेवर विकास की गतिविधियों को चाहिए कि अभ्यास में सुधार करने के साथ-साथ वे शिक्षकों की धारणाओं एवं मान्यताओं को एक आकार देने में भी मदद करें – रीति-रिवाजों, परम्पराओं और प्रथाओं पर सवाल उठाने के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए और ऐसा

करने के लिए तर्कपूर्ण पूछताछ की सार्थक प्रक्रिया का उपयोग करना चाहिए।

इस दृष्टि से अगले खण्ड में शिक्षक पेशेवर विकास की दिशा में कुछ बड़ी राष्ट्रीय पहलों की जाँच की जाएगी।

शिक्षक पेशेवर विकास का समर्थन करने के लिए सरकार की पहलें

राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर शिक्षक पेशेवर विकास सम्बन्धी पहलों में से दो प्रमुख हैं। पहली है शिक्षक-शिक्षा के पुनर्गठन और पुनर्विन्यास के लिए केन्द्र प्रायोजित योजना जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनपीई, 1986, 1992 में संशोधित) के अनुसार 1987 में शुरू की गई और जिसे 2012 में और मज़बूत किया गया। दूसरी है 2001 में शुरू की गई सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) और 2009 में शुरू की गई राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान (आरएमएसए) से सम्बन्धित पहलें।

इन पहलों के परिणामस्वरूप कई स्तरों पर शिक्षकों के अकादमिक समर्थन के लिए संरचनाएँ बनाई गईं। राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद और राष्ट्रीय शैक्षिक योजना और प्रशासन विश्वविद्यालय (एनयूईपीए) तथा राज्य स्तर पर राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद हैं। कुछ राज्यों में नाम अलग हो सकते हैं, उदाहरण के लिए, मेघालय में एससीईआरटी के कार्यों को शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण निदेशालय द्वारा किया जाता है, जबकि कर्नाटक में राज्य शिक्षा अनुसन्धान और प्रशिक्षण विभाग द्वारा किया जाता है। ज़िला स्तर पर ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान (डायट) हैं।

इसके अलावा, उन्नत शिक्षा विद्या संस्थान (आईएएसई) और शिक्षक-शिक्षा के कॉलेजों को शिक्षक-शिक्षा के मौजूदा संस्थानों में शिक्षक पेशेवर विकास के लिए राज्य स्तरीय संसाधन संस्थान के रूप में पहचाना गया है। इसके अलावा खण्ड और संकुल (ब्लॉक और क्लस्टर) स्तर पर क्रमशः ब्लॉक संसाधन केन्द्र (बीआरसी) और क्लस्टर संसाधन केन्द्र (सीआरसी) शिक्षक के क़रीबी व विशिष्ट केन्द्र हैं। विभिन्न स्तरों पर इन संस्थानों का कार्य यह निर्धारित करना है कि शिक्षकों और उनके शिक्षकों की क्षमता निर्माण के लिए क्या चीज़ अर्थपूर्ण होगी और फिर ऐसे कार्यक्रमों की योजना बनाना जो इन आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। हालाँकि प्रारम्भिक रूप से इस संरचना के भीतर अधिकांश संस्थान प्राथमिक शिक्षा के लिए स्थापित किए गए थे, लेकिन अब उनका अधिदेश माध्यमिक शिक्षा को भी शामिल कर रहा है।

इस लेख में एससीईआरटी से शुरू करते हुए प्रत्येक राज्य स्तरीय संस्थानों की भूमिका के बारे में संक्षिप्त सारांश प्रस्तुत किया जाएगा। निशुल्क और अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के बाद एससीईआरटी को अधिकांश राज्यों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लिए 'अकादमिक प्राधिकरण' के रूप में अधिसूचित किया गया है। एससीईआरटी को व्यापक रूप से नीति तैयार करने, परिप्रेक्ष्य योजना, पाठ्यक्रम और सामग्री विकास व शिक्षक तथा स्कूल शिक्षा की समीक्षा, विविध दृष्टिकोणों के माध्यम से स्कूल सुधार की सुविधा प्रदान करने और सेवाकालीन-शिक्षकों के पेशेवर विकास में सहायता करने का कार्य करना होता है। एससीईआरटी के लिए भी यह आवश्यक है कि वह इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए आवश्यक अनुसन्धान, प्रलेखीकरण, प्रसार और आवश्यक डेटाबेस का रख-रखाव करे। पहले तो एससीईआरटी को चाहिए कि वह सेवाकालीन-शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए उनकी ज़रूरतों को समझने के लिए विशेष रूप से अध्ययन करे जिसके लिए कक्षा की प्रक्रियाओं और हितधारकों के साथ जुड़कर योजना बनानी होगी और सेवाकालीन पेशेवर विकास की गतिविधियों को विभिन्न तरीक़ों से क्रियान्वित करना होगा या उनके क्रियान्वयन में सहायता करनी होगी। इसके लिए संसाधकों की पहचान, सम्बन्धित सामग्रियों का विकास और अनुवर्ती कार्रवाई और निरन्तर समर्थन प्रदान करना होगा। इस प्रकार एससीईआरटी को एक मज़बूत संस्थागत सम्पर्क बनाए रखना चाहिए (उदाहरण के लिए आरएमएसए, एसएसए, डायट, सीटीई, आईएएसई, शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे एनजीओ आदि) ताकि राज्य में चल रहे सभी समान प्रयासों में संयोजन बना रहे।

आईएएसई से यह अपेक्षित है कि वह प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय के लिए शिक्षक-शिक्षकों की तैयारी और सतत पेशेवर विकास का समर्थन और कार्यान्वयन करे, सामग्री विकसित करे और पाठ्यचर्या के क्रियान्वयन का समर्थन करे, स्कूल और शिक्षक-शिक्षा के सभी स्तरों पर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए अनुसन्धान का संचालन करे और परामर्श दे। सीटीई का भी यही कार्य है, जिसमें माध्यमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

ज़िला स्तरीय श्रेणी को जोड़ने के इरादे से डायट का प्रस्ताव रखा गया था। यह कल्पना की गई थी कि इससे व्यापक क्षेत्र सम्मिलित हो पाएँगे और समर्थन भी बेहतर रहेगा क्योंकि डायट भौगोलिक दृष्टि से स्कूलों के क़रीब होते हैं और इसलिए वे ज़िला विशेष की ज़रूरतों और समस्याओं को अच्छी तरह से समझ सकेंगे। इसके मूल में यह विचार था कि शिक्षा प्रणाली के लिए अकादमिक और संसाधन सम्बन्धी समर्थन को विकेन्द्रीकृत किया जाए। डायट से यह अपेक्षा की जाती है कि वे ज़िला विशिष्ट योजना को शुरू करें, सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा प्रदान करें, प्रासंगिक अनुसन्धान का संचालन करें और उसके बारे में सलाह दें तथा फील्ड में

प्रत्यक्ष हस्तक्षेप व स्कूल के सुधार कार्यों के साथ संलग्न हों।

ब्लॉक स्तर पर खण्ड संसाधन केन्द्र या बीआरसी अकादमिक संसाधनों के भण्डार के रूप में कार्य करते हैं जिसमें प्री-स्कूल की सामग्री और विशेष आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए सामग्री भी होती है। उन्हें शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए लक्षित गतिविधियों और विभिन्न विषयों तथा थीम के संसाधकों से सम्बन्धित डेटाबेस को बनाए रखना और अद्यतन करना होता है। उन्हें शैक्षिक मुद्दों और स्कूल के विकास से सम्बन्धित अन्य मुद्दों और कार्यक्रमों के अनुवर्ती अनुपालन के लिए ऑन-साइट अकादमिक सहायता प्रदान करने के लिए स्कूलों का दौरा भी करना होता है। स्कूल के दौरे और हितधारकों के साथ बातचीत से शिक्षकों की ज़रूरतों का पता लगाने के बाद उसके आधार पर सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण का आयोजन करने के अलावा उन्हें अन्य संसाधन संस्थानों का समर्थन भी करना होता है। ज़ाहिर है कि ऐसा करने के लिए उन्हें नियमित रूप से स्कूल का दौरा करना होगा और शिक्षकों के कार्य और स्कूल की प्रक्रियाओं के साथ निकटता से जुड़ना होगा। इसके अलावा उन्हें शैक्षिक मुद्दों पर चर्चा करने और स्कूल की विकास-योजना के डिज़ाइन, क्रियान्वयन और समीक्षा में शामिल होने के साथ स्कूल के बेहतर कार्य निष्पादन के लिए रणनीतियों को डिज़ाइन करने के लिए सीआरसी में आयोजित मासिक शिक्षक बैठकों में भाग लेना चाहिए। अन्त में उन्हें ब्लॉक/क्लस्टर के लिए एक व्यापक गुणवत्ता सुधार योजना तैयार करनी होगी और स्कूल प्रबन्धन समिति (एसएमसी) समेत प्रासंगिक निकायों के परामर्श से समयबद्ध तरीक़े से इसे लागू करना होगा।

सीआरसी शिक्षक के सबसे क़रीबी हैं और वे नीति और कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के केन्द्र में हैं। आमतौर पर एक संकुल में 8-10 स्कूल होते हैं – इसलिए शिक्षकों को केन्द्रित, विशिष्ट और निरन्तर समर्थन के अवसर मिल पाते हैं। बीआरसी की तरह, सीआरसी शिक्षकों के लिए पर्याप्त संसाधन/सन्दर्भ सामग्री के साथ अकादमिक संसाधन केन्द्र के रूप में अधिक समीपस्थ तरीक़े से कार्य करते हैं। समन्वयकों को नियमित रूप से स्कूल का दौरा करने और शिक्षकों को ऑनसाइट अकादमिक सहायता प्रदान करना होता है। एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है अकादमिक मुद्दों और डिज़ाइन की रणनीतियों पर चर्चा करने के लिए मासिक बैठकों का आयोजन करना जिससे कि स्कूल का कार्य निष्पादन बेहतर तरीक़े से हो सके। इन बैठकों का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह भी हो सकता है कि औपचारिक और अनौपचारिक अधिगम समुदायों का गठन हो जाए। इसके अलावा उन्हें स्कूल के सुधार के लिए एसएमसी और अन्य स्थानीय निकायों के साथ समन्वय करना होता है तथा स्कूल विकास योजना का विकास और निगरानी भी करनी होती है। क्लस्टर में विभिन्न स्कूलों के साथ जुड़ने के लिए सीआरसी समन्वयकों को धन्यवाद क्योंकि वे विभिन्न स्कूलों के बीच सम्बन्ध बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। एक अन्य दिलचस्प पहलू यह है कि ज़्यादातर राज्यों में बीआरसी और सीआरसी समन्वयक स्वयं शिक्षक रहे हैं - तो उनके अलावा और कौन अपने साथी शिक्षकों की आवश्यकताओं और माँगों को बेहतर रूप से समझ सकता है?

यदि एक व्यापक समग्र के रूप में राज्यों के भीतर की संरचना को देखा जाए तो शिक्षकों के पेशेवर विकास का दायरा ज़बरदस्त है। यह शिक्षकों की क्षमता निर्माण के लिए राज्य स्तर के कार्यक्रमों से लेकर ब्लॉक और क्लस्टर के लिए विशिष्ट कार्यक्रमों तक फैला हुआ है। क्लस्टर स्तर की बैठकें इस बात के अवसर देती हैं कि स्कूल और शिक्षक अपनी चुनौतियों और अच्छे अभ्यास को साझा कर सकें और ये बातें बड़े अनूठे तरीक़े से सन्दर्भित समर्थन प्रदान करती हैं।

स्कूल के दौरे कुछेक स्कूलों में शिक्षकों के लिए विशिष्ट चुनौतियों, कार्यक्रम के क्रियान्वयन की प्रभावशीलता की समीक्षा, शिक्षकों की ज़रूरतों की पहचान आदि से सम्बन्धित ऑनसाइट सहयोग के अवसर बन सकते हैं। राज्य स्तर पर व्यापक कार्यक्रमों से लेकर बहुत विशिष्ट कार्यक्रम सम्भव हैं जो ज़िले, ब्लॉक और क्लस्टर या यहाँ तक कि स्कूल के स्तर पर शिक्षकों की ज़रूरतों और सन्दर्भ के अनुरूप हों। ये कार्यक्रम राज्य में शैक्षिक प्रक्रियाओं के बीच सुसंगतता और एकजुटता बनाने में मदद करेंगे। शिक्षक बीआरसी और सीआरसी समन्वयकों के साथ बातचीत के माध्यम से, क्लस्टर स्तर की बैठकों के माध्यम से, और यहाँ तक कि डायट (भौगोलिक निकटता और उसकी भूमिका की प्रकृति की दृष्टि से) के माध्यम से अपनी बात कह सकते हैं। शिक्षकों की यह आवाज़ नीति तैयार करने और कार्यक्रमों व गतिविधियों के डिज़ाइन में अपना योगदान दे सकती है। शिक्षक विभिन्न संसाधकों से भी सहयोग प्राप्त कर सकते हैं और विभिन्न प्रकार के शिक्षण-अधिगम संसाधनों तक पहुँच सकते हैं क्योंकि सन्दर्भ के बारे में उनकी समझ और कक्षाओं से उनकी निकटता को देखते हुए अन्ततः उनसे यह अपेक्षित है कि वे भी संसाधक के रूप में कार्य करेंगे और शिक्षण-अधिगम संसाधनों के विकास में अपना योगदान देंगे।

इस प्रकार इन पहलों में ऊपर दिए गए सिद्धान्तों की पूर्ति होती है : प्रशिक्षणों से परे पेशेवर विकास गतिविधियों में भाग लेने के लिए शिक्षकों के लिए संस्थागत संरचनाएँ हैं, जो राज्य द्वारा निर्दिष्ट और व्यक्तिगत ज़रूरतों से प्रेरित हैं। शिक्षकों के पास अधिगम के साथ जुड़ने का समय होता है और जब भी वे क्रियान्वयन में चुनौती महसूस करते हैं तो वे सहयोग चाहते हैं। और जैसा कि पहले कहा गया है, उनके पास आवाज़ है और

जब कभी भी वे अपनी ज़रूरतों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने में असमर्थ होते हैं तो यह अपेक्षा की जाती है कि ज़रूरतों की पहचान के लिए व्यवस्थित प्रक्रियाएँ मौजूद हों। जबकि वास्तविकता बिल्कुल अलग है।

क्रियान्वयन की वास्तविकता

राज्य के भीतर शिक्षक-शिक्षा के लिए संसाधन संस्थानों की स्थिति से सम्बन्धित रिपोर्टों की समीक्षा करने पर कुछ आम अवलोकन सामने आते हैं। पहला यह है कि एससीईआरटी से लेकर सीआरसी तक सभी संस्थानों में रिक्तियों की समस्या है। अक्सर जहाँ पद भरे भी जाते हैं वहाँ नियुक्ति संविदात्मक और कम अवधि के लिए हो सकती है (कभी-कभी तो तीन महीने के लिए भी) जिससे असुरक्षा की भावना पैदा होती है और इससे दीर्घकालिक योजनाएँ प्रभावित होती हैं। इन संस्थानों के सदस्यों के लिए पेशेवर विकास सम्बन्धी गतिविधियाँ बहुत कम हैं।

बुनियादी ढाँचा ख़राब है, अधिगम के संसाधन कम हैं - पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ या तो नहीं हैं या उनकी गुणवत्ता ख़राब है। संस्थानों के भीतर आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं और अधिकतर राज्यों में शिक्षक पेशेवर विकास के लिए एक सुसंगत योजना नहीं है।

अधिकांश राज्यों में आईएएसई, सीटीई और डायट जैसे संस्थानों का ध्यान सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा पर है, राज्यों में सेवाकालीन में पेशेवर विकास सम्बन्धी गतिविधियों को, आमतौर पर सोपानी (कैस्केड) तरीक़े से, अनिवार्य रूप से आयोजित किया जा रहा है न कि प्रासंगिक आवश्यकता के अनुसार। अनुसंधान एक बेहद उपेक्षित क्षेत्र बना हुआ है जिसके परिणामस्वरूप मौजूदा तरीक़े ही अपनाए जा रहे हैं और प्रासंगिक सिद्धान्तों का विकास भी नहीं किया जा रहा। पाठ्यचर्या विकास अनिवार्य रूप से होता है, लेकिन स्कूलों के लिए सामग्री का विकास काफ़ी हद तक पाठ्यपुस्तकों के विकास तक ही सीमित है। कुछ राज्यों ने क्लस्टर मीटिंग को संस्थागत बनाया है जहाँ शिक्षक एक-दूसरे के साथ और अधिकारियों के साथ बातचीत कर सकते हैं लेकिन ये भी कम ही हैं।

इससे भी अधिक चिन्ता की बात यह है कि सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले शिक्षकों का प्रतिशत घट रहा है। एकीकृत ज़िला सूचना शिक्षा प्रणाली (यूडीआईएसई) के आँकड़ों से पता चलता है कि 2010-11 में, 40.21% शिक्षकों को सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त हुआ; 2015-16 में यह प्रतिशत घटकर 14.9% हो गया। यू.डी.आई.एस.ई 2014-15 और 2015-16 के आँकड़ों की तुलना से पता चलता है कि सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले शिक्षकों का कुल प्रतिशत 18.34% से घटकर 14.90% हो गया। सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले सरकारी स्कूल के शिक्षकों का प्रतिशत 2014-15 और 2015-16 में क्रमशः 27.90% और 23.17% था। सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले सहायता प्राप्त स्कूलों के शिक्षकों का प्रतिशत क्रमश: 15.55% और 13.21% था। और सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले ग़ैर-सहायता प्राप्त स्कूलों के शिक्षकों का प्रतिशत क्रमश: 1.82% और 1.11% था।

सेवाकालीन प्रशिक्षण की सामग्री और प्रक्रियाओं की एक समीक्षा से पता चलता है कि प्रशिक्षण का फ़ोकस अत्यधिक विषय-उन्मुख और शैक्षणिक है : समावेशी शिक्षा, जीवन कौशल और नेतृत्व जैसे क्षेत्रों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। अधिकतर राज्यों में प्रशिक्षण के विकास के लिए आवश्यकताओं का निर्धारण नहीं किया जाता जो चिन्ता का विषय है, और आमतौर पर डिज़ाइन के निर्धारण में शिक्षकों का योगदान सीमित होता है। शिक्षकों ने बताया कि व्याख्यान, सम्पूर्ण समूह चर्चा जैसे पारम्परिक अनुदेशात्मक तरीकों के व्यापक उपयोग के बावजूद वे प्रशिक्षण कार्यक्रम से सन्तुष्ट थे और उन्होंने संसाधकों के प्रयासों की सराहना की लेकिन साथ में प्रतिभागियों की बड़ी संख्या, प्रशिक्षण के स्थान आदि के कारण उत्पन्न सीमाओं को भी स्वीकार किया। उन्होंने बताया कि वे पूर्व-ज्ञान के समेकन के साथ कौशलों और अभिवृत्तियों, विचारों और नए ज्ञान का अधिग्रहण कर पाए। लेकिन जो कुछ सीखा वह शिक्षक-अभ्यास में व्यावहारिक दृष्टि से सीमित रूप से ही आ पाया जिसका कारण था प्रशिक्षण की गुणवत्ता, प्रेरणा की कमी, पहले से मौजूद अभिवृत्तियाँ, प्रतिभागियों का बड़ा समूह, स्कूलों में सीखने के संसाधनों व सुविधाओं की कमी और सीमित अनुवर्ती कार्रवाई और सहयोग। शिक्षकों के अनुसार इन प्रशिक्षणों का सकारात्मक परिणाम यह था कि इससे समान रुचि रखने वाले सहयोगियों के नेटवर्क का विकास हुआ, प्रधानाध्यापकों की भागीदारी और अभिनव रणनीतियों और संसाधनों का उपयोग देखने में आया। दिलचस्प बात यह है कि बीआरसी को मुख्य रूप से प्रशिक्षण के 'स्थान' के रूप में देखा जाता था।

एक अवलोकन यह भी सामने आता है कि शिक्षकों और शिक्षक-शिक्षकों के लिए एकल प्रशिक्षण के स्थान पर निरन्तर पेशेवर विकास के बारे में सोचने की ज़रूरत है। विडम्बना यह है कि प्रतिमान के इस तरह के बदलाव को सुविधाजनक बनाने के लिए संरचनाएँ मौजूद हैं। इस प्रकार भारत में शिक्षकों के सार्थक और टिकाऊ व्यावसायिक विकास के अवसर कहीं खो से गए हैं।

निष्कर्ष

हालाँकि कुल तस्वीर निराशाजनक दिखाई देती है पर कुछ ऐसे राज्य, व्यक्ति और ग़ैर-सरकारी संगठन हैं जो नवाचारों का संचालन कर रहे हैं। स्वैच्छिक शिक्षक मंच, शिक्षक-अधिगम केन्द्र, डायट द्वारा संचालित अभिनव कार्यक्रम और शिक्षकों द्वारा किए जाने वाले व्यक्तिगत प्रयास- इन सबसे सेवाकालीन पेशेवर विकास के ऐसे प्रतिदर्श मिलते हैं जिन्हें मौजूदा संरचनाओं में एकीकृत किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि संसाधन संस्थानों के लिए जो प्रतिमान हैं, उन्हें बदला जाए ताकि वे शिक्षकों के पेशेवर विकास की गतिविधियों को सिर्फ़ प्रशिक्षण नहीं बल्कि उससे अधिक मानें। और सरकार को चाहिए कि वह शिक्षकों को क्रियान्वयन की योजनाओं के पूरा होने और उत्तरदायित्व-वाहक के रूप में नगण्य नहीं वरन शिक्षा-नीतियों और कार्यक्रमों के लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए महत्त्वपूर्ण माने।

Bibliography:

1 Chand, V.S., Choudhury, G.A., Joshi, S.D., Patel, U.M. (2011). Learning from innovative primary school teachers of Gujarat. A casebook for teacher development. Ahmadabad: Gujarat Educational Innovations Commission, Government of Gujarat & Ravi J Mathai Centre for Educational Innovation, Indian Institute of Management

2. Jackie Walkington, J. (2005). Becoming a teacher: encouraging development of teacher identity through reflective practice. *Asia-Pacific Journal of Teacher Education, 33, 1*

3. MHRD. (2011). *Approaches to school support and improvement. Guidelines for BRC and CRC. Draft report for discussion.* Available at: http://teacher-ed.hbcse.tifr.res.in/resources/documents/brc-crc-guidelines

4. MHRD. (2012). Restructuring and reorganization of the Centrally Sponsored Scheme on Teacher Education. Guidelines for Implementation. New Delhi: MHRD

5. MHRD. (2013-2017). Reports of the Joint Review Missions on Teacher Education. Available at http://www.teindia.nic.in/jrm.aspx

6. MHRD. (2015). *Rashtriya Madhyamik Shiksha Abhiyan (RMSA). Fifth Joint Review Mission. Aide Memoire.* New Delhi: MHRD. Personal Communication

7. MHRD. (2015). *Sarva Shiksha Abhiyan. Twenty Second Joint Review Mission. Aide Memoire.* 2nd – 16th December, 2015. Personal Communication

8. NCERT. (2016). *Evaluation on in-service training programmes of NCERT. A report.* New Delhi: NCERT. Available at http://www.ncert.nic.in/announcements/tendors/pdf_files/combine.pdf

9. Opfer, V.D, Pedder, D. (2011). Conceptualizing teacher professional learning. *Review of Educational Research, Vol. 81, 3*

10. Poekert, P.E. (2012). Examining the impact of collaborative professional development on teacher practice. *Teacher Education Quarterly, Fall*

11. RMSA Technical Cooperation Agency. (2016). *Formative Evaluation: RMSA In-Service Teacher Training.* New Delhi: NCERT. Available at: http://rmsaindia.gov.in/administrator/components/com_pdf/pdf/4395dfa0494d4f3f2438455e95e85384-RMSA-TCA-2.19%20Formative%20Evaluation%20RMSA%20In%20service%20Teacher%20Training%20Evaluation.pdf

12. RMSA Technical Cooperation Agency. (2016). *RMSA In-Service Teacher Training Evaluation.* New Delhi: NCERT. Available at: (http://rmsaindia.gov.in/administrator/components/com_pdf/pdf/123a09b6c8fd4174ed58c3b9c1213dcc-RMSA-Teacher-In-service-Teacher-Training-Evaluation-Summary-Report.pdf

13. Timperley, H., Wilson, A., Barrar, H. Fung, I. (2007). *Teacher professional learning and development: Best evidence synthesis iteration.* Wellington, New Zealand: Ministry of Education. Available at http://educationcounts.edcentre.govt.nz/goto/BES

14. Vescio, V., Ross, D., Adams, A. (2008). A review of research on the impact of professional learning communities on teaching practice and student learning. *Teaching and Teacher Education 24*

निमरत खण्डपुर पिछले सात सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के साथ हैं और वर्तमान में स्कूल ऑफ़ कंटिन्युइंग एजुकेशन एवं यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेंटर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में कार्यरत हैं जहाँ वे पेशेवर विकास कार्यक्रमों में योगदान देती हैं। वे शिक्षा नीति, शिक्षक-शिक्षा और मूल्यांकन के क्षेत्र में काम कर रही हैं और उन्होंने शिक्षक-शिक्षा पाठ्यक्रम के विकास में भी योगदान दिया है। उनसे *nimrat.kaur@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

सरकार की दोषपूर्ण राह बनाम शिक्षा कार्यक्रमों का पथ : डीपीईपी और एसएसए से मिली सीख

रश्मि शर्मा



भारत में ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) और इसके बाद सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) प्रारम्भिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम रहे हैं। डीपीईपी का उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना था, जबकि एसएसए का लक्ष्य प्रारम्भिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाना था। दोनों ने शिक्षा में जेंडर और सामाजिक असमानताओं को कम करने तथा सीखने के स्तर में सुधार करने की कोशिश की। जैसे-जैसे ये कार्यक्रम आगे बढ़े, वे न केवल नीति को लागू करने में, बल्कि उसे बनाने और संस्थागत ढाँचे को बदलने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण थे। डीपीईपी और एसएसए के अन्तर्गत नए स्कूल और सहायक संस्थान स्थापित किए गए, शिक्षकों के सम्बन्ध में नई नीतियाँ विकसित हुईं और शैक्षणिक अभ्यास यानी पाठ्यपुस्तकें, शिक्षण पद्धति, विद्यार्थी मूल्यांकन आदि प्रभावित हुए।

एक भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी के रूप में, मुझे डीपीईपी और एसएसए में काम करने में ख़ुशी हुई क्योंकि मुझे प्रारम्भिक शिक्षा में गहरी दिलचस्पी थी। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इस अनुभव ने मेरे भीतर मेरे मूल कार्य, अर्थात सरकार के कार्य, में नए सिरे से दिलचस्पी पैदा की। जब मैंने पाठ्यपुस्तक लेखन, शिक्षक प्रशिक्षण, विद्यार्थी मूल्यांकन जैसे शैक्षणिक मुद्दों पर सरकार के भीतर और बाहर के सहयोगियों के साथ मिलकर कार्य किया तो विभिन्न ग़ैर-शैक्षणिक 'घटनाएँ' हुईं, जिन्होंने शिक्षण और अधिगम के बारे में हमारे सरोकारों को धूमिल कर दिया और हमारे प्रयासों को एक अप्रत्याशित दिशा में ले गईं। यह बात मेरे सामने स्पष्ट हो गई कि प्रारम्भिक शिक्षा की गुणवत्ता सरकार के काम करने के तरीक़े पर उतना ही निर्भर करती है जितना कि पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकों और शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर और शिक्षा में सुधार के लिए सरकार का सुधार एक आवश्यक शर्त है।

डीपीईपी को 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद 1994 में शुरू किया गया था। आर्थिक सुधार विदेशी मुद्रा के संकट के सन्दर्भ में किए गए थे, जिसके लिए सरकार ने अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष (IMF) से आपातकालीन ऋण की माँग की थी। आईएमएफ की शर्तों के मुताबिक अर्थव्यवस्था को उदारीकृत किया जाना चाहिए था अर्थात उद्योगों के लिए लाइसेंस और कोटा भंग करना था और शुल्क बाधाओं को कम किया जाना था, साथ ही सरकारी व्यय को भी नियंत्रित करना था। इसका मतलब था प्रारम्भिक शिक्षा सहित सामाजिक क्षेत्र पर वित्तीय दबाव। नीति निर्माताओं को यह आशंका थी कि इस तरह की बजटीय कटौती से समाज के सबसे ग़रीब तबक़े को नुकसान होगा और शिक्षा के क्षेत्र में प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को रोक दिया जाएगा, जिसे भारतीय संविधान के निर्देश सिद्धान्तों में अनिवार्य किया गया था। इसके अलावा, इस समय, भारत प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए कई अन्तरराष्ट्रीय समझौतों के लिए हस्ताक्षरकर्ता बन गया था। अतः सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के लिए बाहरी फंडिंग एजेंसियों जैसे यूरोपीय संघ, विश्व बैंक आदि से वित्तीय सहायता लेने का फैसला किया, जो कि पिछड़े ज़िलों में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए एक बाहरी सहायता कार्यक्रम यानी डीपीईपी के रूप में सामने आया।

डीपीईपी उस समय के सरकारी कार्यक्रमों से कई मायनों में भिन्न था। यह विभागीय प्रशासन के बजाय एक परियोजना संरचना के माध्यम से लागू किया गया था। कार्यक्रम के प्रबन्धन के लिए परियोजना कार्यालयों को राज्य और ज़िला स्तर पर स्थापित किया गया था, जो सरकारी विभागों के कार्यालयों से अलग थे। यह निर्णय दो कारकों से प्रेरित था। व्यावहारिक कारण यह था कि डीपीईपी को विभिन्न बाहरी एजेंसियों द्वारा वित्तपोषित किया गया था और एक अलग परियोजना संरचना के कारण फंडिंग एजेंसियों द्वारा व्यय पर नज़र रखने का काम और परियोजना की निगरानी बेहतर तरीक़े से हो सकी। लेकिन दीर्घकालिक अर्थ में, अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह विश्वास था कि नियमित सरकारी कार्यालय और संस्थान डीपीईपी में परिकल्पित विकास कार्यों के लिए सक्षम नहीं थे। परियोजना के दृष्टिकोण के समर्थकों ने तर्क दिया कि शिक्षा का प्रशासनिक ढाँचा पूरी तरह से रोज़मर्रा की गतिविधियों में व्यस्त था जैसे कि वेतन का वितरण, परीक्षाओं का आयोजन, स्कूल का उदासीन निरीक्षण आदि। शैक्षिक संस्थानों में वास्तविक विशेषज्ञता और नवाचार की इच्छा का अभाव था। इसके विपरीत अच्छी गुणवत्ता वाली प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए समुदाय को प्रेरित करने की ज़रूरत थी ताकि जो बच्चे स्कूल नहीं जाते थे, उन्हें वापस स्कूल में लाया जा सके विशेष रूप से लड़कियों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के बच्चों तथा विकलांग बच्चों को। इसके अलावा कक्षा को दिलचस्प और आकर्षक बनाना भी ज़रूरी था।

जब मैंने मध्य प्रदेश में राज्य शैक्षिक अनुसन्धान एवं प्रशिक्षण परिषद (एससीईआरटी) में निदेशक के रूप में कार्य करना शुरू किया तब पहली बार डीपीईपी से मेरा परिचय हुआ। मैंने स्पष्ट रूप से यह देखा कि ये समस्याएँ हमारे मौजूदा संस्थानों की वास्तविक समस्याएँ थीं। एससीईआरटी को इस प्रकार की नई पाठ्यपुस्तकें बनाने का काम दिया गया जो गतिविधि-आधारित अधिगम और शिक्षक प्रशिक्षण को बढ़ावा दें। वास्तव में, एससीईआरटी के पास इस प्रक्रिया का मार्गदर्शन करने वाला कोई नहीं था। एससीईआरटी ने पूर्व स्थापित अभ्यास के साथ बड़े असावधानीपूर्ण रूप से पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया, जो नीरस थीं, किसी भी विचार-आधारित शैक्षणिक रणनीति पर आधारित नहीं थीं और यहाँ तक कि उनमें मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियाँ भी बहुत थीं! अतः अच्छी गुणवत्ता वाली, गतिविधि आधारित पाठ्यपुस्तकें बनाने के लिए यह आवश्यक हो गया कि ग़ैर-सरकारी संगठनों और सरकारी क्षेत्र के बाहर वाले विशेषज्ञों के साथ गहराई से जुड़ा जाए। एससीईआरटी संकाय को, सुधार का नेतृत्व करने के बजाय, नए शैक्षणिक अभ्यासों में भाग लेने और रुकावट पैदा न करने के लिए मनाना पड़ा। हालाँकि संकाय के कुछ सदस्य इस कार्य में शामिल हुए और कड़ी मेहनत भी की लेकिन दूसरे लोग कार्य करने के लिए अनिच्छुक थे।

इस अनुभव से यह बात साफ़ हो गई कि राज्य सरकार ने एससीईआरटी को एक उत्कृष्ट संस्थान के रूप में विकसित करने पर कोई ध्यान नहीं दिया। एससीईआरटी में कार्यरत लोग आमतौर पर कॉलेज के शिक्षक थे। वे एससीईआरटी में इसलिए नहीं थे क्योंकि वे स्कूली शिक्षा में रुचि रखते थे या कोई विशेष दक्षता रखते थे, बल्कि इसलिए थे क्योंकि वे भोपाल में रहना चाहते थे और अपनी मनचाही तैनाती करवा पाने की स्थिति में थे। कुछ तो ऐसे थे जो किसी भी तरह के काम में रुचि नहीं दिखाते थे, कुछ लोग हमेशा की तरह नीरस पाठ्यपुस्तकों और शिक्षक प्रशिक्षण मॉड्यूल को बनाने का काम करके ख़ुश थे और कुछ लोग जो काम करने को तैयार थे उन्हें न तो नई जानकारी के अवसर मिल पाते थे और न ही प्रोत्साहन मिलता था। अब जब सरकार ने प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने का प्रयास किया तो उसे अपने इस संस्थान से बहुत कम मदद मिली। मानव संसाधन की यह समस्या न केवल एससीईआरटी में बल्कि पूरी प्रणाली में दिखाई दे रही थी। प्रशासनिक कार्यालयों में प्रशिक्षित शैक्षिक प्रशासकों की कमी थी और जेंडर, सामुदायिक जुटाव एवं विकलांग बच्चों की शिक्षा जैसे विषयों के विशेषज्ञों का भी अभाव था। प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए मूलतः एक अलग प्रकार की संस्थागत सहायता संरचना की आवश्यकता थी।

इस स्थिति को देखते हुए दो तरीक़े सम्भव थे। एक, सरकार मौजूदा संस्थानों में सुधार कर सकती थी। दो, एक ऐसी अलग परियोजना संरचना स्थापित करना जिसमें बेहतर विशेषज्ञता और काम करने के अच्छे तरीक़े हों। पहली सम्भावना पर कभी गम्भीरता से विचार ही नहीं किया गया। राजनीतिक ज़रूरतों के साथ-साथ फंडिंग एजेंसियों का दबाव था कि कार्य जल्दी हो, नए स्कूलों का निर्माण किया जाए, पाठ्यपुस्तकें बदली जाएँ, शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाए आदि। प्रणाली को बदलने में समय लगता। इसके अलावा ऐसा करना मुश्किल भी था। इसका मतलब यह भी था कि सही लोगों को सही स्थानों पर लाया जाए। नियमित संरचना में पसन्दीदा लोगों को अच्छे पदों पर रखा गया, जिसमें योग्यता पर कम ध्यान दिया गया और इस अभ्यास को बदलने का मतलब सत्ता के मौजूदा समीकरणों को गड़बड़ा देना था। इसका मतलब यह था कि आदेश और नियंत्रण शैली की बजाय सोच-विचार और लोकतांत्रिक तरीक़े से काम किया जाए जिससे सत्ता में रहने वाले प्रभावित होते। इन कठिनाइयों को देखते हुए डीपीईपी को एक परियोजना संरचना के माध्यम से लागू किया गया था।

परियोजना वाली रणनीति ने एक हद तक काम भी किया। कई गतिविधियाँ यानी नए स्कूल, बेहतर पाठ्यपुस्तकें, बड़े पैमाने पर शिक्षक-प्रशिक्षण, सामुदायिक जुटाव, स्कूल न आने वाले बच्चों के नामांकन आदि के लिए विभिन्न प्रकार की रणनीतियों का सहारा लिया गया।

ऐसा क्यों हुआ? नई परियोजना संरचना पुरानी सरकारी संरचनाओं की तुलना में अधिक जीवन्त क्यों थी? डीपीईपी के कर्मचारियों में जेंडर, वंचित समूहों के बच्चों, विकलांग बच्चों, सामुदायिक जुटाव आदि विषयों के विशेषज्ञ थे, जबकि नियमित सरकारी कार्यालयों और संस्थानों में ऐसे शिक्षक थे जिन्हें पदोन्नत किया गया था और अपने नए कार्यों को करने के लिए उन्हें दुबारा कोई प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। डीपीईपी में, संरक्षक आधारित स्थानांतरण और तैनाती की प्रथाओं (जो नियमित प्रणाली की ख़ासियत थी) के विपरीत यथासम्भव सर्वोत्तम लोगों को भर्ती करने का प्रयास किया गया। दूसरे शब्दों में, डीपीईपी में मानव संसाधन प्रबन्धन में लोगों की तैनाती के लिए सरपरस्ती की बजाय योग्यता और आवश्यक विशेषज्ञता को ध्यान में रखा गया। ग़ैर-सरकारी संगठनों और संसाधकों के साथ निरन्तर जुड़ाव से इसे और समर्थन मिला ताकि सरकार के बाहर से भी विशेषज्ञता प्राप्त की जा सके।

भले ही डीपीईपी ने काम करने के नए तरीक़े अपनाए किन्तु नियमित विभागीय संरचना में इसी तरह के बदलाव लाने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए। वास्तव में विभागीय संरचना और कमज़ोर हो गई क्योंकि यह केवल बंधा-बंधाया काम करती रही जैसे कि वेतन का वितरण और परीक्षा आयोजित करना। नियमित विभागीय कार्यालयों में काम करने वाले

लोगों को नए विचारों के बारे में प्रशिक्षित या सूचित नहीं किया गया था और वे निरुत्साहित हो गए क्योंकि उन्हें लगा कि उन्हें नई पहलों से बाहर रखा गया है (और ऐसा किया भी गया था)। यह बहिष्करण ज़मीनी स्तर से राष्ट्रीय स्तर तक दिखाई देता था। उनमें से कई लोग डीपीईपी पहलों की आलोचना करने लगे और परियोजना के लिए मुश्किलें पैदा करने लगे। अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि मौजूदा प्रणाली में दीर्घकालिक परिवर्तन लाने का एक अवसर खो गया था। अब यह सोचना कि यदि परियोजना संरचना में विशेषज्ञों को काम पर रखने की पद्धति को नियमित विभागीय संरचना का हिस्सा बनाया जाता, योग्यता आधारित स्थानान्तरण और तैनाती को अनिवार्य बनाया जाता और पूरे विभागीय ढाँचे को पुनः प्रशिक्षित किया जाता तो क्या होता – यह एक काल्पनिक प्रश्न बना हुआ है।

जब 2000 में एसएसए ने डीपीईपी का स्थान लिया तो कुछ महत्त्वपूर्ण बदलाव हुए। पहला, 2000 में जब एसएसए आरम्भ किया गया था तब भारतीय अर्थव्यवस्था तेज़ी से बढ़ने लगी थी और सरकारी राजस्व में काफ़ी वृद्धि हुई थी। इसका मतलब यह था कि सरकार सामाजिक क्षेत्र पर अधिक धनराशि खर्च कर सकती थी। अतः एसएसए बाहर से नहीं वरन केन्द्र सरकार द्वारा वित्तपोषित था, जिसमें राज्य सरकारें एक छोटा-सा हिस्सा देती थीं। बाद के वर्षों में एसएसए के लिए उपलब्ध धन और, इसके माध्यम से, प्रारम्भिक शिक्षा में निवेश तेज़ी से बढ़ा। हालाँकि कई नए स्कूल खोले गए हैं, स्कूल के बुनियादी ढाँचे में व्यापक सुधार हुआ है, और प्राथमिक शिक्षा में नामांकन क़रीब-क़रीब सार्वभौमिक हो गया है, फिर भी आज बच्चों के सीखने का स्तर असन्तोषजनक ही है, और धनी बच्चे निरन्तर निजी स्कूलों में भर्ती हो रहे हैं। भारी निवेश के बावजूद एक सुव्यवस्थित प्राथमिक शिक्षा प्रणाली अभी भी पहुँच से बाहर है। सरकारी कामकाज में लगातार ख़राबी के कारण डीपीईपी ने जवाबी कार्रवाई के लिए अल्पकालिक उपाय किए, लेकिन लम्बी अवधि के उपायों को सम्बोधित करने में विफल रहा। डीपीईपी ने संस्थागत कमियों के ख़िलाफ़ बचाव के जो प्रयत्न किए, एसएसए में उन्हें अधूरा ही छोड़ दिया गया था।

एक राष्ट्रीय कार्यक्रम होने के नाते एसएसए इस परियोजना संरचना को समाप्त कर सकता था। हालाँकि कार्यक्रम के समर्थकों ने डीपीईपी की परियोजना संरचना की आलोचना की लेकिन एसएसए में इसे बरकरार रखा गया। सिर्फ़ इसलिए कि पक्ष-विपक्ष और सम्भावनाओं पर गहराई से चर्चा नहीं की गई थी। वास्तव में डीपीईपी से प्राप्त सकारात्मक और नकारात्मक शिक्षा पर बहुत कम ध्यान दिया गया। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों को अत्यधिक व्यक्तिवादी तरीक़े से तैयार किया जाता है। पिछले अनुभवों का किस हद तक और कितनी गहराई से विश्लेषण किया गया है और उससे क्या सीख मिली – ये सारी बातें बहुत परिवर्तनशील हैं। एसएसए को तैयार करते वक्त डीपीईपी परियोजना संरचनाओं के गुणों और कमज़ोरियों की बहुत कम जाँच-पड़ताल की गई। अन्त में वे एसएसए संरचना बन गए और जैसे-जैसे एसएसए डीपीईपी के ज़िलों से आगे बढ़ा, इसी तरह की संरचनाएँ नए ज़िलों में स्थापित की गईं। फिर एक बार, दीर्घकालिक संस्थागत समस्याओं को दूर करने का कोई प्रयास नहीं किया गया।

साथ ही डीपीईपी संरचनाओं को प्रभावी बनाने वाले कई सकारात्मक अभ्यासों को छोड़ दिया गया। चूँकि एसएसए बाहरी रूप से नहीं वरन घरेलू रूप से वित्तपोषित कार्यक्रम था, इसलिए सरकार के भीतर लोगों की भर्ती और नौकरी पर लगाने की प्रक्रिया मौजूदा तरीक़ों के साथ अधिक तालमेल रखती थी। अतः समय के साथ-साथ योग्यता आधारित भर्ती और तैनाती, जो डीपीईपी की विशेषता थी, का स्थान संरक्षक आधारित तैनाती ने ले लिया। इसके अलावा डीपीईपी की तुलना में, एसएसए के अधिकारियों का प्रणाली के बाहर के विशेषज्ञों के साथ बहुत कम जुड़ाव था, इसलिए नए विचारों और तरीकों का प्रवाह भी अवरुद्ध हो गया। जैसा कि अन्य सरकारी कार्यक्रमों के साथ होता है, पूरा ध्यान बुनियादी ढाँचे के निर्माण पर केन्द्रित किया गया। परिणामस्वरूप जो जीवन्तता डीपीईपी की विशेषता थी, वह काफ़ी हद तक कहीं खो गई।

सच पूछा जाए तो डीपीईपी और एसएसए ने शिक्षकों की गुणवत्ता घटाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। डीपीईपी के साथ एक महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि 'पैरा' शिक्षक, संविदा कर्मचारी, नियुक्त किए जाने लगे जिनका वेतन बहुत कम था। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि कई राज्यों को प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए बड़ी संख्या में अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता थी, लेकिन अधिकांश राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति ख़राब थी। जैसे-जैसे प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने का दबाव बढ़ा, राज्यों ने शिक्षकों की लागत में कमी लाने का प्रयास किया ताकि वे अधिक शिक्षकों को काम पर रख सकें और पैरा-शिक्षक नियुक्त करने लगे। मध्य प्रदेश में, नियमित शिक्षकों को 'मृत संवर्ग' या 'डाइंग कैडर' घोषित किया गया था और रिटायर होने के बाद पैरा-शिक्षकों द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। मध्य प्रदेश की 'शिक्षा गारंटी योजना' ने कम वेतन वाले, समुदाय के संविदा शिक्षकों की अवधारणा को आर्थिक तंगी के लिए एक प्रतिक्रिया के रूप में नहीं बल्कि वांछनीय मानते हुए उसे बढ़ावा दिया और कई लोगों ने इसकी प्रशंसा भी की। सभी राज्यों ने मध्य प्रदेश की तरह पैरा-शिक्षकों को उत्साह के साथ तो नहीं अपनाया, लेकिन लगभग सभी ने कुछ पैरा-शिक्षकों को काम पर रखा।

पैरा-शिक्षकों की नियुक्ति एक बहुत ही विवादित मुद्दा था। इस विचार का समर्थन करने वालों ने तर्क दिया कि नियमित शिक्षक आत्म-सन्तुष्ट थे क्योंकि उनकी नौकरी स्थायी थी, वे अक्सर अनुपस्थित रहते थे, प्रतिबद्धता के साथ नहीं पढ़ाते थे और उन्हें अच्छा वेतन देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। लेकिन इस बात की सम्भावना अधिक थी कि समुदाय का एक अनुबन्धित, कम वेतन पाने वाला शिक्षक स्कूल के लिए प्रतिबद्ध हो। जो लोग पैरा-टीचर्स के ख़िलाफ़ थे, उनका तर्क था कि शिक्षकों को अधिक पेशेवर बनाने की ज़रूरत है। कम वेतन वाले, कम योग्यता वाले पैरा-शिक्षकों को नौकरी पर रखने का मतलब था सरकारी स्कूलों में जाने वाले ग़रीब बच्चों को हानि पहुँचाना। लेकिन इस सवाल पर भी शायद ही कभी तर्कसंगत रूप से बहस की गई हो। उदाहरण के लिए, इस तथ्य पर कम ध्यान दिया गया कि शिक्षकों का राजनीतिकरण, तैनाती में संरक्षण और अच्छे काम को मान्यता न देना आदि वेतन और स्थायित्व से अधिक महत्त्वपूर्ण मुद्दे हो सकते हैं। यही नहीं नीतियों को थोड़े-से विश्लेषण और चिन्तन के बाद अक्सर रातोंरात बदल दिया जाता था।

एसएसए ने शुरू में ही पैरा-शिक्षकों के लिए वेतन का भुगतान प्रदान करके मौन रूप से उनका समर्थन किया और पैरा शिक्षकों की नियुक्ति की संख्या में तेज़ी से वृद्धि हुई इस तथ्य के बावजूद कि जिस आर्थिक तंगी ने पैरा शिक्षकों की नियुक्ति को बढ़ावा दिया था वह अब थी ही नहीं। लेकिन, समय के साथ, पैरा शिक्षकों ने सुरक्षित रोज़गार और बेहतर वेतन के लिए यूनियनों का गठन किया। इसके बाद, राज्य सरकारों को कई रियायतें देनी पड़ीं जैसे पैरा-शिक्षकों की तनख़्वाह बढ़ाना और कार्यकाल को अधिक सुरक्षित बनाना। इसका मतलब यह था कि सबसे ख़राब तरीक़े को अपनाना : कम-वेतन वाली संविदात्मक नौकरियों को विज्ञापित किए जाने पर कम योग्य लोगों को शिक्षक के रूप में काम पर रखा गया। लेकिन उनके वेतन में वृद्धि करनी पड़ी, कार्य-निष्पादन के आधार पर नहीं, बल्कि उनके आन्दोलन की सफलता के कारण। कई पैरा-शिक्षक भी अर्ध-स्थायी हो गए और इसका परिणाम यह हुआ कि ख़राब कार्य-निष्पादन के कारण शिक्षक को हटाने का पूरा विचार निरर्थक हो गया। इसके अलावा, शिक्षकों से सम्बन्धित नीतियों में लगातार बदलाव आता रहा और स्कूल प्रणाली अब ऐसे शिक्षकों की बड़ी संख्या के साथ काम करती रही जो असन्तुष्ट थे और अक्सर आन्दोलन करते रहते थे।

चूँकि संस्थाओं में मूलतः कोई बदलाव नहीं आया इसलिए अन्य क्षेत्रों में भी असफलताएँ मिलीं। उदाहरण के लिए डीपीईपी ने सन्दर्भ-विशिष्ट, विकेन्द्रीकृत योजना को बढ़ावा दिया और प्रत्येक वर्ष प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लक्ष्य के साथ ज़िला स्तर की योजनाएँ तैयार की गईं। डीपीईपी कार्यक्रम के दिशा-निर्देश बहुत कम थे, केवल इस बारे में कुछ निर्देश थे कि 'क्या करें और क्या नहीं' क्योंकि प्रत्येक ज़िले से यह अपेक्षा की गई थी कि वे अपनी स्वयं की समस्याओं के सन्दर्भ में अपनी रणनीति तैयार करें। उदाहरण के लिए - स्कूल न जाने वाले बच्चों के नामांकन के लिए विविध तरीक़े अपनाए जा सकते थे जैसे समुदाय को मुद्दे से जोड़ने और उन्हें संवेदनशील बनाना या वैकल्पिक शिक्षा केन्द्र शुरू करना या एक ब्रिज कोर्स शुरू करना ताकि बच्चे औपचारिक स्कूलों में शामिल हो सकें आदि। यह बात सामान्य सरकारी योजनाओं के विपरीत थी जहाँ रणनीतियाँ पहले से तय होती थीं। उदाहरण के लिए डीपीईपी से पहले ग़ैर-औपचारिक शिक्षा (एनएफई) की योजना ने स्कूल न जाने वाले बच्चों के नामांकन के लिए एक एकल रणनीति निर्धारित की और निर्धारित लागत के साथ ग़ैर-औपचारिक शिक्षा केन्द्र शुरू किए। इस बात को ध्यान में रखा गया कि कुछ मामलों में बच्चों को स्कूलों में भेजने के लिए समुदाय को जुटाना या बड़े भाई-बहनों को स्कूल जाने की स्वतंत्रता देने के लिए शिशुओं की देखरेख की सुविधा प्रदान करना बेहतर रणनीति हो सकती है।

चूँकि डीपीईपी में हर साल ज़िला योजना तैयार की जाती थी, इसलिए उन पर सभी स्तरों पर गहराई से चर्चा की जाती और उनका विश्लेषण किया जाता था। स्कूल न जाने वाले बच्चों को दाख़िला देने के लिए कई नई रणनीतियाँ सामने आईं। हालाँकि शुरू से ही प्रवृत्ति यही थी कि राज्य स्तर पर निर्णय लिए जाएँ ताकि किसी राज्य विशेष की सभी ज़िला योजनाएँ समान दिखें। ऐसा दो कारणों से हुआ। एक तो ज़िला स्तर पर क्षमता की कमी थी। ज़िला कार्यालयों में स्टाफ सीमित था। इसके अलावा, ज़िले के अधिकारी योजना बनाने के आदी नहीं थे और अक्सर वे बहुत अच्छी योजनाएँ नहीं बनाते थे। ऐसे मामलों में राज्य के अधिकारियों ने हस्तक्षेप किया। दूसरे, सरकारी विभाग आमतौर पर इस प्रकार कार्य करते थे : राज्य के अधिकारी ज़िला अधिकारियों को निर्देश देते थे। इसलिए राज्य के साथ-साथ ज़िला स्तर के अधिकारियों के लिए भी ये भूमिकाएँ बड़ी आरामदेह थीं। हालाँकि, इस परियोजना में विकेन्द्रीकृत योजनाएँ बनाने के लिए लगातार दबाव बना रहा और इसके कारण कम-से-कम कुछ सन्दर्भ -आधारित योजनाएँ और रणनीतियाँ बनीं।

एसएसए ने विकेन्द्रीकृत ज़िला स्तर की योजना को बनाए रखा और वास्तव में ग्रामीण स्तर की योजना को बढ़ावा देने की माँग की। लेकिन व्यवहार में, एसएसए का नियोजन और भी अधिक ऊपर से संचालित हो गया। पहली बात तो यह कि एसएसए के दिशानिर्देश डीपीईपी दिशानिर्देशों से बहुत अलग थे। जैसा कि ऊपर कहा गया है, डीपीईपी के दिशानिर्देश विशिष्ट गतिविधियों के बारे में नहीं बताते या निश्चित इकाई लागतों को निर्धारित नहीं करते जो लचीलेपन के लिए

सहायक हैं। एसएसए दिशानिर्देशों में ये दोनों बातें शामिल थीं क्योंकि यह सामान्य सरकारी अभ्यास था और वित्त विभागों ने इस पर ज़ोर दिया। एसएसए सामान्य सरकारी कार्यक्रमों की तुलना में अधिक लचीला था और वह इस अर्थ में कि इसने व्यापक गतिविधियों की अनुमति दी और साथ ही ज़िलों को इस बात की अनुमति दी कि वे इन गतिविधियों में से चयन कर लें। चूँकि गतिविधियों और इकाई लागतों को पहले से ही निर्धारित कर दिया गया था, इसलिए ज़िला योजनाओं ने बस इन गतिविधियों को दोहराया और संख्याएँ दे दीं। एसएसए पर नियमित सरकारी प्रणाली का अधिक नियंत्रण होने के कारण टॉप-डाउन अभ्यास और मज़बूत हो गए।

इसी तरह डीपीईपी में किए गए गम्भीर शैक्षणिक सुधारों को भी नुकसान पहुँचा। कई राज्यों में, डीपीईपी के तहत नई, गतिविधि-आधारित पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं। लेकिन यह एक कठिन संघर्ष था। कभी-कभी नई पाठ्यपुस्तकों की कड़ी आलोचना भी हुई क्योंकि उनमें अधिगम के नए और अपरिचित तरीक़े पेश किए गए थे। जब शिक्षकों को गतिविधि-आधारित अधिगम के लिए प्रशिक्षित किया गया तो उन्हें भी अवधारणाओं को समझने में कठिनाई हुई। चूँकि एससीईआरटी संकाय और शिक्षा विभागों की क्षमता का पर्याप्त रूप से विकास नहीं किया गया था इसलिए कई अधिकारी और अध्यापक-शिक्षक इन बदलावों के विरोधी थे। अक्सर जब सरकारें या नौकरशाह प्रभारी बदलते थे तो नई पाठ्यपुस्तकों को त्याग दिया जाता था। एसएसए में शिक्षा और शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान देना और भी कम हो गया क्योंकि नियमित प्रशासकों और अध्यापक-शिक्षकों से पदों को तेज़ी से भरा गया और सरकार के बाहर वाले विशेषज्ञों के साथ परामर्श लेना भी कम हो गया। जो शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम कभी बहुत ध्यानपूर्वक और प्रतिबद्धता के साथ आयोजित किए जाते थे वे एक बंधे-बंधाए काम और यहाँ तक कि भ्रष्टाचार का स्रोत भी बन गए। अन्ततः एसएसए का ध्यान नए स्कूलों की स्थापना, बुनियादी ढाँचे का निर्माण, नए शिक्षकों को काम पर रखने और विद्यार्थियों को मुफ़्त पाठ्यपुस्तकें, वर्दी आदि प्रदान करने पर केन्द्रित हो गया। ये काम भी महत्त्वपूर्ण थे, लेकिन चूँकि कक्षा की प्रक्रिया में सुधार नहीं हुआ इसलिए उच्च-गुणवत्ता वाली स्कूल प्रणाली भी समझ से बाहर ही रही।

मेरे हिसाब से डीपीईपी और एसएसए से सीखा जाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण सबक़ सरकारी कामकाज के बारे में है। सरकार में मानव संसाधन और कार्यशैली से सम्बन्धित गहरी समस्याएँ हैं। मानव संसाधन की संरचना ही समस्याग्रस्त है। कई क्षेत्रों में आवश्यक विशेषज्ञता की कमी है। इसके अलावा, मौजूदा मानव संसाधनों का प्रबन्धन योग्यता पर आधारित नहीं है। किसी अधिकारी को योग्यता के आधार पर भर्ती किया जा सकता है, लेकिन इस बात की सम्भावना भी है कि वह अपने करियर के दौरान, तैनाती और यहाँ तक कि पदोन्नति के लिए अपने काम को अच्छी तरह से करने की बजाय किसी शक्तिशाली गॉडफादर की ख़ुशामद करे, उसका सहारा ले। इससे काम के प्रति प्रतिबद्धता कम होगी क्योंकि प्रोत्साहन की मौजूदा संरचना अच्छे काम को बढ़ावा नहीं देती है। काम करने की प्रक्रिया पदानुक्रम और केन्द्रीकरण पर आधारित है और ज़मीनी आवश्यकताओं के अनुकूल रणनीतियों को उभरने से रोकती है। सरकार के सबसे शीर्ष स्तरों पर भी विचार-विमर्श और विवेचना करना एक विकल्प ही है। परिणाम स्वरूप वे कार्यक्रम और नीतियाँ अपरीक्षित ही रह जाती हैं जिन पर भली-भाँति विचार नहीं किया गया हो, ख़ासकर यदि उनसे कोई राजनीतिक लाभ मिलता हो। यहाँ तक कि बेहतर रूप से तैयार किए गए कार्यक्रमों को भी महत्त्व नहीं दिया जाता क्योंकि वे संस्थागत संरचनाओं के माध्यम से क्रियान्वित किए जाते हैं जिसमें तकनीकी क्षमता का अभाव होता है और जो एक कठोर और पदानुक्रमित तरीक़े से कार्य करते हैं।

ये लक्षण हर सरकारी पहल को प्रभावित करते हैं। सभी कार्यक्रमों को इस साँचे में रूपान्तरित और ढाला गया है। डीपीईपी ने परियोजना संरचनाओं को बनाकर इन समस्याओं से निपटने का प्रयास किया लेकिन मौजूदा संस्थागत दोषों को सम्बोधित करने में विफल रहा और सम्भवतः उन्हें बढ़ा दिया। एसएसए उन्हें साथ लेकर चला और डीपीईपी के परियोजना से प्राप्त लाभों को समाप्त कर दिया।

सबक़ साफ़ है। आज बढ़ते सरकारी राजस्व ने अच्छी गुणवत्ता वाली प्रारम्भिक शिक्षा को काफ़ी हद तक एक वास्तविक सम्भावना बना दिया है। लेकिन सरकार के काम करने का तरीक़ा एक बहुत बड़ी बाधा है। जब तक गहन और वास्तविक संस्थागत सुधार नहीं होगा, एक वास्तविक उच्च गुणवत्ता वाली स्कूल प्रणाली के निर्माण की सफलता दूर ही रहेगी।

रश्मि शर्मा पूर्व भारतीय प्रशासनिक सेवा अधिकारी हैं। उन्होंने भारत में प्राथमिक शिक्षा और स्थानीय स्वशासन के क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर काम किया है। उनकी दो पुस्तकें- 'लोकल गवर्नमेंट इन इंडिया : पॉलिसी एंड प्रैक्टिस' तथा 'दि एलिमेंटरी एजुकेशन सिस्टम इन इंडिया' प्रकाशित भी हुई हैं। सम्प्रति वे ज़मीनी स्तर पर सरकार की संरचना और काम के बारे में शोध और लेखन में लगी हुई है। उनसे *rashmishuklasharma@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

गुरु चेतना : शिक्षक पेशेवर विकास-कर्नाटक सरकार की एक पहल

रुद्रेश एस.



'शिक्षक की स्थिति समाज की सामाजिक-सांस्कृतिक प्रकृति को दर्शाती है; कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता है' - इस तरह के उद्बोधन सही भी हैं क्योंकि शिक्षक मानव में ज्ञान की शाश्वत खोज करने के लिए एक प्रेषक, प्रेरक और समर्थक की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हम सभी एक ऐसे अच्छे समाज की आकांक्षा करते हैं जो मानवीय, न्यायसंगत और टिकाऊ हो। यह माना जाता है कि स्कूल शिक्षा इसके लिए आधार प्रदान करती है। शिक्षा वाकई अहिंसक और अनवरत तरीक़े से ऐसे समाज का निर्माण कर सकती है। भारत में मौलिक अधिकारों में संशोधन करके यह प्रयास किया गया है कि हर व्यक्ति को शिक्षा मिले और निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार सुनिश्चित किया गया है। इसके परिणामस्वरूप यह कोशिश भी की जा रही है कि प्रत्येक बच्चे को एक ऐसी स्कूली शिक्षा मिले जो गुणवत्तापूर्ण हो। निजी स्कूलों में कमजोर परिवार के बच्चों के लिए सीटों का आरक्षण उसी का हिस्सा है। इसके माध्यम से प्रत्येक बच्चे की शिक्षा सरकार का एक जनादेश बन गई। केन्द्र और राज्य, दोनों सरकारें अपने सभी बच्चों के लिए स्कूल की आसान पहुँच सुनिश्चित करने और विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से नियमित उपस्थिति को बढ़ावा देने के लिए सर्वोत्तम प्रयास कर रही हैं। भारत ने नामांकन के मामले में बहुत कुछ हासिल किया है और प्राथमिक स्कूलों में विद्यार्थियों की उपस्थिति के उद्देश्य को काफ़ी हद तक पूरा किया है। जिस मुद्दे को सम्बोधित नहीं किया गया है वह है शिक्षा की गुणवत्ता। एएसईआर, एनएएस जैसी कई रिपोर्टों ने विभिन्न विषयों में विद्यार्थियों के सीखने के स्तर में कमियों की पहचान की। यह बात इन दिनों स्कूली शिक्षा में गम्भीर मुद्दा बन गई है और इसे स्कूली शिक्षा में एक महत्त्वपूर्ण सरोकार के रूप में पहचाना गया है। शिक्षा की गुणवत्ता काफ़ी हद तक शिक्षकों और कक्षा के साथ उनकी संलग्नता से निर्धारित होती है। शिक्षक की पेशेवर क्षमताएँ स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में योगदान करती हैं और साथ में अन्य चीज़ों की भी आवश्यकता होती है जैसे बुनियादी ढाँचा, विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात स्कूल नेतृत्व आदि।

भारत के सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों में समस्याएँ हैं। दोनों कार्यक्रम अल्पकालिक अवधि वाले हैं, अतः विषयों के शिक्षण पर ध्यान केन्द्रित करके विद्यार्थियों के विविध प्रकार और स्कूलों के सन्दर्भ के लिए शिक्षकों को तैयार करने में असमर्थ हैं। यह स्पष्ट है कि शिक्षकों को स्कूल के सन्दर्भ में उत्पन्न होने वाली ज़रूरतों और माँगों के सम्बन्ध में तैयार किया जाना चाहिए जिससे वे स्कूल के ज्ञान, शिक्षार्थियों एवं अधिगम की प्रक्रिया के सवालों के साथ जुड़ सकें। समाज में होने वाले व्यापक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तनों के हिसाब से, समय-समय पर स्कूल प्रणाली और शिक्षकों की अपेक्षाएँ बदलती रहती हैं। यह बात शिक्षक समुदाय में व्यावसायिक क्षमताओं को बढ़ाने के लिए शिक्षक-शिक्षा का पुनर्निर्माण करने पर ज़ोर देती है।

शिक्षक-शिक्षा को फिर से डिज़ाइन करने के पक्ष में कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

1. लघु अवधि के सेवा-पूर्व कार्यक्रम केवल कुछ ऐसे बुनियादी परिप्रेक्ष्यों का निर्माण कर पाएँगे जिनका सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा से बहुत कम सम्बन्ध होगा और जिससे स्कूल के शिक्षकों की महत्त्वपूर्ण पेशेवर ज़रूरतें पूरी नहीं होंगी।
2. सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा के संरेखन को आज तक पर्याप्त रूप से सम्बोधित नहीं किया गया है।
3. सेवा-पूर्व और सेवाकालीन कार्यक्रम दोनों में सिद्धान्त और व्यवहार के बीच का परस्पर सम्बन्ध कमज़ोर है।
4. आज के शिक्षकों को निरन्तर बदलती रहने वाली शिक्षा प्रणाली में होने वाले प्रतिमान के बदलावों से परिचित होना चाहिए। इसके लिए बुनियादी अवधारणाओं और शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में ज्ञान और समझ को बढ़ाने की आवश्यकता है और सेवा-पूर्व प्रशिक्षण में यह इस बात का पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं रखा जाता है तथा साथ ही सेवाकालीन प्रशिक्षण का समय कम होने के कारण अन्तराल बना रहता है।

5. एक प्रभावी शिक्षक बनने के लिए व्यक्ति को शिक्षण सम्बन्धी जिस समझ या क्षमताओं और प्रवृत्ति की आवश्यकता होती है, वर्तमान सेवाकालीन पेशेवर विकास कार्यक्रम अक्सर उन्हें विकसित करने के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं होते हैं।

6. शिक्षक-शिक्षा की प्रक्रियाएँ शिक्षक को एक चिन्तनशील पेशेवर बनाने में विफल होती हैं।

7. सेवाकालीन कार्यक्रम अधिकतर पाठ्यपुस्तक सम्बन्धी मुद्दों जैसे विषय के कठिन बिन्दु आदि पर ध्यान केन्द्रित करते हैं और शिक्षकों में रचनात्मक शिक्षण के साथ संकल्पनात्मक और गहन समझ का निर्माण नहीं करते।

8. कई मामलों में, विशेष रूप से सेवाकालीन कार्यक्रमों में वर्तमान वर्ष के कार्यक्रमों/प्रशिक्षण का पिछले और आने वाले वर्षों के कार्यक्रमों/प्रशिक्षण के साथ तालमेल नहीं होता है। कार्यक्रमों को अलग-अलग टुकड़ों में आयोजित किया जाता है।

9. एक कमी यह भी है कि ज़िला और ब्लॉक स्तरों में पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और अपेक्षित गुणवत्ता वाले संसाधक नहीं मिल पाते।

10. सोपानी रणनीति के कई स्तर होने से संचरण में भारी हानि होती है।

11. कार्यक्रम/मॉड्यूल केन्द्रीय रूप से डिज़ाइन किए गए हैं जिनमें शिक्षकों की ज़रूरतों और रुचियों का ध्यान नहीं रखा गया है।

इस स्थिति में पाठ्यक्रम के प्रभावी संचालन और इन अन्तरालों को पाटने के लिए शिक्षक का निरन्तर पेशेवर विकास बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। आज इसी प्रक्रिया के माध्यम से हज़ारों बच्चे निकल रहे हैं और ऐसे संसाधनों की कमी है जो इस कमी को दूर करने के लिए कारगर सिद्ध हों। इसके लिए दीर्घकालिक दृष्टि और एक ऐसी रूपरेखा की आवश्यकता है जो सेवाकालीन कार्यक्रम के उपरोक्त मुद्दों को प्रभावित करने वाले हर सम्भव कारक पर विचार करे और शिक्षकों को एक सार्थक अनुभव प्रदान करने का प्रयास करे।

सार्वजनिक शिक्षण विभाग, कर्नाटक सरकार ने गुरु चेतना के नाम से राज्य में सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम को सुधारने का चुनौतीपूर्ण कार्य किया है। इस पहल का उद्देश्य सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों से सम्बन्धित सरोकारों को दूर करना और शिक्षक विकास के प्रयासों को सार्थक और प्रासंगिक बनाना है। दृष्टिकोण, सामग्री और साथ ही कार्यक्रम के संचालन को फिर से तैयार करने के इस व्यापक कार्य के साथ ही शिक्षक-ट्रैकिंग और प्रबन्धन प्रणाली को प्रारम्भ करने का कार्य अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के सहयोग से क्रियान्वित किया जा रहा है।

राज्य ने सेवाकालीन शिक्षकों के लिए एक पेशेवर विकास योजना की कल्पना की है। इस योजना में पिछले दशक की अन्तर्दृष्टि और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 और शिक्षक-शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2009 जैसे राष्ट्रीय दस्तावेज़ों को ध्यान में रखा गया है जिससे कि शिक्षक चिन्तनशील बनें, पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, और पाठ्यपुस्तकों पर सवाल उठाने में सक्षम हों, सामुदायिक ज्ञान को शामिल करके स्कूल पाठ्यक्रम का संवर्धन कर सकें और सिद्धान्त तथा व्यवहार के बीच सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

कार्यक्रम में अपनाए गए प्रमुख सिद्धान्तों पर नीचे चर्चा की गई है।

1. योजना दीर्घकालिक होनी चाहिए और शिक्षकों के पेशेवर विकास में सहायक होनी चाहिए। सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है जो सुसंगत होनी चाहिए न कि छिटपुट 'एक-बार' होने वाले सत्र; शिक्षक विकास की दीर्घकालिक योजना शिक्षकों को समग्र रूप से विकसित होने का मौक़ा देती है।

2. इसमें सीखने के तरीक़ों के बीच एक संयोजन होना चाहिए जिसमें विशेषज्ञों द्वारा संचालन हो, सहकर्मी-अधिगम और आत्म-अधिगम हो और एक विकेन्द्रीकृत आत्मनिर्भर अधिगम का अवसर प्रदान किया जाए जो आत्म-अधिगम और सहकर्मी-अधिगम को बढ़ावा दे क्योंकि ये बातें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

3. शिक्षक अपने स्कूलों में जिन समस्याओं का सामना करते हैं और जो सभी कक्षाओं और विषयों के लिए प्रासंगिक हैं, उनका जवाब इन कार्यक्रमों में दिया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम में इस प्रकार की व्यापकता हो तो लम्बी अवधि तक शिक्षकों का जुड़ाव बना रहेगा और जिससे निरन्तर व सम्बद्ध अधिगम के अवसरों का निर्माण हो सकेगा।

4. इसमें शिक्षकों को चुनने का विकल्प होना चाहिए ताकि वे कई मंचों के माध्यम से अपने लिए प्रासंगिक चीज़ों का उपयोग कर सकें, उदाहरण के लिए कार्यशालाएँ, सेमिनार, अध्ययन समूह आदि।

5. शिक्षक के विकास के लिए इस्तेमाल की जाने वाली सामग्री को शिक्षा के दृष्टिकोण, विषय के परिप्रेक्ष्य,

विषय सामग्री और शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से व्यापक होना चाहिए।

6. सभी कार्य शैक्षिक विचारों के एक सुसंगत समूह द्वारा निर्देशित किए जाने चाहिए, उदाहरण के लिए भारतीय समाज में स्कूल की भूमिका, बच्चे कैसे सीखते हैं, प्रत्येक विषय की प्रकृति और शिक्षण विधि, बच्चे का शारीरिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक विकास क्यों आवश्यक है और ये सारी बातें शिक्षक-शिक्षा के सभी कार्यक्रमों के सभी रूपों में झलकनी चाहिए।

शिक्षा विभाग के वरिष्ठ अधिकारी शिक्षक-शिक्षा से सम्बन्धित कमियों को सम्बोधित करने के लिए प्रतिबद्ध थे। कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि इसमें प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा विभाग के अतिरिक्त मुख्य सचिव के अधिकारियों से लेकर प्रत्येक स्कूल के शिक्षकों की भागीदारी थी। प्रथम वर्ष के कार्यक्रम को लागू करने के लिए यह प्रयास दो साल तक जारी रहा। योजना की दीर्घकालिकता और शिक्षकों को अपने पेशेवर विकास के लिए अपनी आवश्यकता और रुचि के अनुसार मॉड्यूल चुनने की अनुमति देने के मार्ग को पाँच साल के लिए निर्धारित किया गया।

अवधारण से लेकर निष्पादन तक इस कार्यक्रम को चार चरणों में तैयार किया गया था – (क) पाठ्यक्रम विकास, (ख) मॉड्यूल विकास, (ग) संसाधक विकास, (घ) कार्यक्रम का शुभारम्भ।

(क) पाठ्यक्रम विकास

यह पाठ्यक्रम पूरे कर्नाटक के चुने हुए शिक्षकों, शिक्षक-शिक्षकों व विषय के विशेषज्ञों और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के कुछ सदस्यों द्वारा सहयोगात्मक रूप से विकसित किया गया है। इस समूह ने शिक्षकों की ज़रूरतों के साथ-साथ राष्ट्रीय दस्तावेज़ों में व्यक्त की गई शिक्षकों की अपेक्षाओं पर विचार किया और बड़ी सावधानी के साथ इस पाठ्यक्रम को तैयार किया। पाठ्यक्रम की इस रूपरेखा का विकास शिक्षकों के पेशेवर विकास के लिए एक दीर्घकालिक दृष्टिकोण की योजना बनाने की दिशा में पहला क़दम था जिससे कि शिक्षकों के लिए एक मज़बूत और निरन्तर चलने वाले पेशेवर विकास कार्यक्रम को सक्षम किया जा सके। पाठ्यक्रम में शिक्षकों के विकास के सन्दर्भ, सिद्धान्त, दृष्टिकोण, विषय, व्यावहारिकता, कक्षा अनुप्रयोग, शिक्षक संलग्नता के तरीक़ों और आकलन का वर्णन है। पाठ्यक्रमों और मॉड्यूल को विकसित करने के लिए शिक्षकों की अनेक व विविध आवश्यकताओं की संकल्पना करने का काफ़ी प्रयास किया गया है। यह एक व्यापक पाठ्यक्रम है जिसमें बाल विकास (उदाहरण के लिए बच्चे भाषा कैसे सीखते हैं, सीखने का सामाजिक सन्दर्भ), स्कूल के विषयों और शिक्षण के तरीक़ों में प्रमुख अवधारणाओं को समझने का प्रयास भी शामिल है। यह शिक्षकों के विकास के लिए लगभग 250 थीमों का सुझाव देता है और प्रत्येक विषय पर शिक्षक के जुड़ाव एवं मॉड्यूलर अभिविन्यास के विभिन्न तरीक़ों का प्रस्ताव रखता है। एक मॉड्यूल/अवधारणा/विषय को रुचि और आवश्यकता के अनुसार 1-5 दिनों में लिया जा सकता है।

(ख) मॉड्यूल विकास

पाठ्यक्रम के सिद्धान्तों को अपनाकर मॉड्यूल विकसित किए गए। परामर्शदाताओं के मार्गदर्शन में शिक्षा विभाग के चुने हुए राज्य संसाधकों और अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के एक समूह ने लगभग पाँच महीने तक एक कठोर प्रक्रिया के माध्यम से मॉड्यूल विकसित किए। इन मॉड्यूलों को श्रेणीबद्ध किया गया है ताकि वे शिक्षकों की समझ के विभिन्न स्तरों पर प्रतिक्रिया दे सकें। दीर्घावधि योजना यह है कि शिक्षकों को चुनने के लिए 200-250 मॉड्यूल उपलब्ध कराए जाएँ। इन मॉड्यूलों में शिक्षा परिप्रेक्ष्य, विषय परिप्रेक्ष्य, प्रमुख अवधारणाएँ, शिक्षाशास्त्र और मूल्यांकन सम्बन्धी बातें शामिल हैं जो एक-दूसरे के साथ एकीकृत हैं, अलग-थलग नहीं। वर्ष 2017-18 में शिक्षकों को विज्ञान, गणित, सामाजिक विज्ञान और शिक्षा के परिप्रेक्ष्य (हिन्दी व कन्नड़ा दोनों में) से सम्बन्धित 28 मॉड्यूल दिए गए। बाक़ी को बाद के वर्षों में दिया जाएगा। प्रत्येक मॉड्यूल को समीक्षा समिति की भागीदारी के साथ संचालित किया गया और उसकी समीक्षा की गई व उसमें सुधार किए गए।

(ग) स्रोत व्यक्ति विकास

कार्यक्रम को बड़े पैमाने पर निष्पादित करने के लिए और ज़िलों में प्रशिक्षित स्रोत व्यक्तियों की अनुपलब्धता के मुद्दे को हल करने के लिए, प्रत्येक ज़िले के प्रत्येक मॉड्यूल के लिए चार मुख्य स्रोत व्यक्ति (मास्टर रिसोर्स पर्सन या एमआरपी) को लिखित और मौखिक परीक्षाओं के माध्यम से चुना गया था। प्रत्येक ज़िले में कुल 112 एमआरपी चुने गए। प्रत्येक एमआरपी को परिप्रेक्ष्य, सामग्री और शिक्षाशास्त्र के बारे में 10 दिनों का प्रशिक्षण दिया जाता है जिनमें से पाँच दिन मॉड्यूल सामग्री के लिए और पाँच दिन अतिरिक्त इनपुट के लिए होते हैं ताकि एमआरपी शिक्षकों के साथ पाँच दिनों तक जुड़ने में सक्षम हो सकें। कार्यक्रम में विकासशील शिक्षा परिप्रेक्ष्य (समाज, शिक्षा, बच्चों और शिक्षण को समझना), मॉड्यूल सामग्री से परे गहरी समझ और सत्रों के उदाहरणात्मक शिक्षण का प्रस्ताव दिया गया जिसमें प्रत्येक एमआरपी को प्रस्तुति के

अवसर दिए गए। इस प्रक्रिया में कई बैचों के माध्यम से एक महीने में लगभग 3500 एमआरपी को प्रशिक्षित किया गया।

(घ) कार्यक्रम का शुभारम्भ

कार्यक्रम का शुभारम्भ 5 सितम्बर 2017 को शिक्षक दिवस पर कर्नाटक के मुख्यमन्त्री द्वारा किया गया। शिक्षकों ने शिक्षक प्रशिक्षण प्रबन्धन प्रणाली (टीटीएमएस) में लॉग-इन करके वर्ष 2017-18 के लिए उपलब्ध 28 मॉड्यूलों के बारे में अपने विकल्प दिए। यह प्रणाली डेस्कटॉप और मोबाइल में उपलब्ध थी, जहाँ अधिकतर शिक्षक अपने विकल्प और कार्यशाला अनुसूची के ट्रैकिंग का प्रबन्धन करने के लिए मोबाइल ऐप का इस्तेमाल करते थे। टीटीएमएस के माध्यम से शिक्षकों के विकल्प, बैच बनाने, शिक्षकों को आमन्त्रित करने, प्रशिक्षण की योजना बनाने और शिक्षकों से फीडबैक लेने की पूरी प्रक्रिया की गई। राज्य स्तर की प्रक्रियाओं का प्रबन्धन राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण विभाग द्वारा किया गया था और इसका क्रियान्वयन सम्बन्धित डाइट (ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान) द्वारा किया गया था। तीन से चार महीने की अवधि में 34 ज़िलों में 28 मॉड्यूल वाला प्रशिक्षण लगभग 2000 बैचों में आयोजित किया गया। इस प्रक्रिया में 75000 शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया।

इससे सोपानी प्रणाली घटी क्योंकि प्रशिक्षित एमआरपी ज़िले में जाकर शिक्षकों को सीधे ही प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। संचालन और क्रियान्वयन की बुनियादी सुविधाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करना भी महत्त्वपूर्ण था। जैसे साफ़-सुथरे व काम में लाए जा सकने वाले शौचालय, सुरक्षित पेयजल, गुणवत्तापूर्ण भोजन, पर्याप्त रोशनी वाले हवादार स्थान, निर्बाध बिजली की आपूर्ति आदि। ये चीज़ें सम्बन्धित ज़िलों के डाइट द्वारा सुनिश्चित की गईं जिन्होंने मॉड्यूल की गुणवत्ता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत में ऐसा पहली बार हुआ कि शिक्षकों को इस तरह के बड़े पैमाने पर उनकी रुचि और ज़रूरतों के अनुसार मॉड्यूल चुनने की अनुमति दी गई थी।

ऐसा इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि पूरे वर्ष इसे दृढ़ता के साथ चलाने में सरकार ने रुचि दिखाई और निरन्तर प्रयास किया। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा विभाग के अतिरिक्त मुख्य सचिव द्वारा एक विशेष मासिक बैठक आयोजित की गई थी जिसने प्रारम्भ से लेकर निष्पादन तक एक प्रमुख भूमिका निभाई थी। डीएसईआरटी ने भी इस कार्यक्रम को पूरे मन से अपनाया जिसकी वज़ह से पूरे साल और सारी गतिविधियों के दौरान यह कार्यक्रम निर्बाध गति से चलता रहा। राज्य स्तर पर गठित कोर टीम ने प्रक्रियाओं की योजना बनाने, निगरानी और समीक्षा करने में मदद की और साथ ही समय सीमा का पालन करके कार्यक्रम को दृढ़ता दी तथा सभी स्तरों पर गुणवत्ता बढ़ाने में सहायता की। शिक्षकों ने चयन पर आधारित शिक्षक विकास की अवधारणा और एमआरपी की तैयारी की सराहना की, यह बात निष्पादन के बाद किए गए एक डिपस्टिक अध्ययन के बाद सामने आई। उन्होंने कार्यक्रम के सुचारु क्रियान्वयन और लम्बी अवधि के लिए शिक्षक विकास पर नज़र रखने के लिए टीटीएमएस की भूमिका को भी महत्त्वपूर्ण माना। मुख्यमन्त्री और शिक्षा मंत्री ने राज्य सरकार के बजट में और कई अन्य मंचों पर एक कार्यक्रम के रूप में गुरु चेतना का उल्लेख किया। इससे उसे अधिक वैधता मिली।

कार्यक्रम की संचार रणनीति ने इसे लोगों तक पहुँचाने में बहुत योगदान दिया। संचार रणनीति के अन्तर्गत एक माइक्रोसाइट विकसित किया गया था जहाँ शिक्षक कार्यक्रम और मॉड्यूल के बारे में सभी जानकारी प्राप्त कर सकते थे। शिक्षक बहुत पहले ही मॉड्यूल को डाउनलोड करके प्रशिक्षण सत्रों के लिए तैयार हो सकते थे। राज्य स्तर पर इसके शुभारम्भ का विशाल कार्यक्रम और शिक्षकों के पेशेवर विकास पर राज्य और ज़िला स्तर पर हुए कई सेमिनारों के बाद एक कार्यक्रम के रूप में गुरु चेतना के बारे में शिक्षकों की रुचि बढ़ी। इस सारी प्रक्रिया के माध्यम से 1.4 लाख शिक्षकों ने नामांकन किया और टीटीएमएस के माध्यम से चार प्राथमिकताओं में अपनी पसन्द व्यक्त की। इन संख्याओं को देखते हुए यह बात स्पष्ट हो गई कि शिक्षक गुणवत्तापूर्ण साहित्य और गुणवत्तापूर्ण प्रक्रियाएँ चाहते थे जिसने हितधारकों को आश्वस्त किया और पेशेवर विकास में रुचि को बढ़ाया।

चूँकि चुनौतियाँ थीं इसलिए सावधानीपूर्वक यह कोशिश की गई कि पाठ्यक्रम विकास से लेकर कार्यक्रम के निष्पादन तक की गुणवत्ता सुनिश्चित की जाए। यद्यपि आयोजन स्थल, भोजन आदि की गुणवत्ता पर स्पष्ट निर्देश दिए गए थे लेकिन शिक्षकों के फीडबैक को ध्यान में रखते हुए भविष्य में इनमें और अधिक सुधार करने पर ध्यान दिया गया। मॉड्यूल विकास और एमआरपी के विकास की प्रक्रियाओं में दो साल तक राज्य स्रोत व्यक्तियों में रुचि और धैर्य बनाए रखना मुश्किल था जो समूह के भीतर अस्थिरता का कारण बनी। हितधारकों के स्तर पर कार्यक्रम की अवधारणा की एक साझा समझ विकसित करना और सरकारी प्रणाली के स्तर पर समान गति बनाए रखना एक और चुनौती थी। चूँकि कार्यक्रम का पैमाना बहुत बड़ा था इसलिए सम्बन्धित ज़िलों को सम्बन्धित मुद्रित मॉड्यूल वितरित करना कठिन था, जिसके परिणामस्वरूप देरी हुई।

शुरुआत में यह चुनौती भी सामने आई कि कार्यक्रम में शामिल लोगों को इसकी सामग्री और प्रक्रियाओं की प्रकृति में किए गए प्रतिमान सम्बन्धी बदलाव के बारे में कैसे समझाया जाए उनके मन कई दशकों की धारणाएँ जड़ फैलाए बैठी हुई थीं। प्रारम्भ में उनसे खुलकर बात करवाने में कठिनाई हुई लेकिन अब 90 एसआरपी और राज्य के अधिकारी शिक्षक-शिक्षा के नए प्रतिमान के दूत बन चुके हैं।

कर्नाटक के लिए शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में गुरु चेतना एक अनूठा अनुभव था और अन्य राज्य कर्नाटक के इस अनुभव को समझने के लिए उत्सुक हैं। शिक्षकों के पेशेवर विकास में गुणवत्ता और सार्थकता के साथ संचालित चयन आधारित शिक्षक विकास का यह कार्यक्रम दीर्घकालिक, निरन्तर और संयोजित संलग्नता की अवधारणा पर आधारित है जिसे पूरे देश में फैलाने की ज़रूरत है। सबसे अधिक वांछनीय बात यह है कि सभी शिक्षकों को चिन्तनशील होना चाहिए और भारतीय संविधान में व्यक्त समाज बनाने में योगदान देना चाहिए।

रुद्रेश एस. अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के कलबुर्गी और यादगीर जिला संस्थानों के प्रमुख हैं। वे 2003 से फ़ाउंडेशन में कार्यरत हैं। वे शिक्षक पेशेवर विकास में रुचि रखते हैं। वे शिक्षक पेशेवर विकास पर अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन और कर्नाटक सरकार की संयुक्त पहल में योगदान करते रहे हैं। उनसे *rudresh@azimpremjifoundation.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

अभ्यास के माध्यम से शिक्षा : प्रारम्भिक शिक्षा में डिप्लोमा के पाठ्यक्रम का विहंगावलोकन

शालिनी झा



प्रारम्भिक शिक्षा में डिप्लोमा का कोर्स दो साल का होता है, जो राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा तैयार किया गया है ताकि नामांकित विद्यार्थियों को कौशल वृद्धि का अवसर मिल सके और उनकी विशेषज्ञता के स्तर को प्रखर किया जा सके। पाठ्यक्रम को इस तरह से डिज़ाइन किया गया कि यह नियमित पाठ्यक्रम के माध्यम से दिए जाने वाले प्रशिक्षण के स्तर के बराबर हो।

कोर्स की संरचना भले ही अलग थी लेकिन डिप्लोमा विद्यार्थियों को जो प्रशिक्षण प्रदान किया गया था वह उनके कौशल का उतना ही प्रतिपादन करता है जितना कि एक नियमित पाठ्यक्रम में नामांकित विद्यार्थियों का। प्रशिक्षुओं को सप्ताह में एक बार कक्षा में पढ़ने के लिए आना होता था, या तो शनिवार को या रविवार को, जहाँ वे पाठ्यक्रम में बताए अनुसार किसी स्कूल में पढ़ाते थे। इस प्रकार प्रशिक्षुओं को न केवल प्रशिक्षित किया गया और उनके कौशल को उन्नत किया गया, बल्कि उन्हें व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने का अवसर भी प्रदान किया गया। शिक्षण, प्रशिक्षण और व्यावहारिक भागीदारी, जो एक अति आवश्यक घटक था, के इस सन्तुलित संश्लेषण के कारण प्रशिक्षु अपनी प्रतिभा निखारने तथा तकनीकी और व्यावहारिक रूप से एक सुयोग्य प्रशिक्षक बनने में सक्षम हुए।

पाठ्यक्रम

गहन विचार-मन्थन और संशोधन के कई चक्रों के बाद जो अन्तिम पाठ्यक्रम बनाया गया उसकी तुलना नियमित प्रणाली के साथ की जा सकती थी। कोर्स की सभी आवश्यक सामग्रियों को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया था और इसे विशेष रूप से इस समूह की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया गया था। शिक्षण-अधिगम सामग्री ऐसी थी जिसे शिक्षक आसानी से समझ सकें और अपने मन-मस्तिष्क में बिठा सकें। गुणवत्ता को सर्वोच्च प्रमुखता दी गई।

परस्पर-विभागीय सहयोग

प्रशासनिक कार्यों की एक समेकित शृंखला बनाई गई थी जो प्रशिक्षुओं को कोर्स के प्रशिक्षकों, स्रोत व्यक्तियों, एससीईआरटी और केन्द्र के साथ जोड़ती थी। इसने एक मजबूत संरचना बनाने में मदद की जिसके कारण प्रशिक्षुओं को सारी पाठ्यक्रम सामग्री, कार्यशालाएँ और कक्षाएँ समय पर प्राप्त हो पाईं। कोर्स की संरचना और पाठ्यक्रम सामग्री को सभी लिंक पर अपडेट किया गया था और विभागीय अन्त:सम्बन्धन और संचार के परिणामस्वरूप पाठ्यक्रम सामग्री पाने में प्रशिक्षुओं कोई देरी नहीं हुई।

डिजिटलीकरण और उपयोग में आसानी

प्रशिक्षुओं को कोर्स की सभी सामग्री हार्ड कॉपी के रूप में दी गई और साथ ही कोर्स का कार्यक्रम और संरचना के सभी विवरणों को ऑनलाइन भी उपलब्ध कराया गया। शिक्षण-अधिगम सामग्री के पूरक के रूप में आईसीटी सामग्री का उपयोग किया गया। कोर्स के दौरान प्रौद्योगिकी का सर्वोत्कृष्ट उपयोग किया गया और प्रशिक्षुओं को शिक्षण के लिए लैपटॉप और स्मार्टफोन के उचित उपयोग के बारे में भी बताया गया। प्रशिक्षण कार्यशालाओं के दौरान प्रशिक्षुओं को सीडी का उपयोग करके लगातार वीडियो आदि दिखाए गए। पूरी प्रक्रिया और कार्यक्रम को नियमित रूप से ऑनलाइन अपडेट किया गया था।

पंजीकरण

विद्यार्थियों का एक छोटा समूह पंजीकृत किया गया। स्रोत व्यक्तियों (आरपी) ने क्षमता निर्माण के लिए प्रशिक्षण कार्यशालाओं का आयोजन किया। ये आरपी मूल सलाहकारों से जुड़े हुए थे।

मूल्यांकन

प्रशिक्षुओं को जो असाइनमेंट दिए गए थे, उनमें कक्षा-आधारित व्यावहारिक प्रश्न पूछे गए थे। इन उत्तरों का गम्भीर रूप से विश्लेषण और परीक्षण किया जाना था। प्रशिक्षुओं के व्यावहारिक अनुभव के आधार पर असाइनमेंट दिए गए थे जो अधिगम-प्रक्रिया का महत्वपूर्ण हिस्सा थे। इन्हें शिक्षण-अनुभव में प्रशिक्षुओं को होने वाले अनुभव को ध्यान में रखते हुए तैयार किया गया था और इसलिए प्रशिक्षुओं को असाइनमेंट करते समय अपने मानसिक संकायों का पूरा उपयोग करना होता था। असाइनमेंट के प्रश्नों का विश्लेषण

अधिगम की प्रक्रिया के बारे में विद्यार्थियों की समझ का परीक्षण था और उनके व्यावहारिक अनुभवों का व्यक्तिनिष्ठ आलोचनात्मक मूल्यांकन था ताकि विद्यार्थी अनुचित तरीक़ों से असाइनमेंट के प्रश्नों का उत्तर न दे पाएँ।

इसके अलावा कैम्पस में यह सुनिश्चित करने के लिए अक्सर स्पॉट-चेकिंग की जाती थी कि मॉड्यूल ठीक तरीक़े से और योजना के अनुसार समझाया जा रहा है।

अधिगम की योजना

शिक्षण विधि या ज्ञान की गहराई को पूरी तरह से बाल-केन्द्रित होना था। इसका उद्देश्य यह था कि इसे इतना लचीला बनाया जाए कि आसानी से बच्चे के स्तर तक पहुँचा जा सके। सीखने की योजनाओं पर भी विशेष ध्यान दिया गया, जिसमें स्कूल पर आधारित बहुत सारी गतिविधियाँ शामिल थीं। इसके लिए एक अलग पोर्टफ़ोलियो और रजिस्टर रखा गया था। इसके अलावा प्रशिक्षुओं को निर्देश दिया गया था कि वे सारी गतिविधियों की एक डायरी बनाएँ जिससे कि उनके स्वयं के प्रदर्शन की रिकॉर्डिंग हो सके। ये सभी कक्षा-आधारित समस्याओं के लिए स्कूल-आधारित क्रियात्मक शोध योजना का हिस्सा थे। सूक्ष्म अवलोकन और मूल्यांकन इस पूरी प्रक्रिया के प्रमुख कार्य थे।

SCS स्क्रीनिंग टीम में 40-50 सदस्य शामिल थे। उनका कार्य प्रशिक्षुओं की सहायता करना, उनकी निगरानी करना और उसके बारे में एक विस्तृत रिपोर्ट प्रदान करना था।

प्रशिक्षुओं के लिए नियमित रूप से उनकी कार्यशालाओं में भाग लेना आवश्यक था।

समापन टिप्पणी

इन सभी अलग-अलग और पूरक अभ्यासों के एक संयोजन के परिणामस्वरूप डिप्लोमा कोर्स प्रशिक्षण कार्यक्रम को बहुत सफलता मिली जिसे डीएलएड के तहत नए शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के इरादे से बनाया गया था और नियमित कोर्स के मॉड्यूल की बराबरी पर रखा गया। यह स्पष्ट था कि इस कार्यक्रम के अन्त में इसमें शामिल सभी लोगों की मेहनत रंग लाई और प्रशिक्षुओं की तकनीक, कौशल और ज्ञान का संवर्धन हुआ और वे अपने क्षेत्र में आगे बढ़े। पुनरावलोकन करें तो यह कहा जा सकता है कि डिप्लोमा कोर्स एक सफल प्रयोग रहा और इसे जारी रखना चाहिए।

शालिनी झा वर्तमान में पूर्णिया, बिहार में एक सरकारी माध्यमिक विद्यालय की शिक्षिका हैं। उन्होंने शिक्षा में स्नातक और अँग्रेज़ी में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की है। वे बिहार के पूर्णिया जिले में ODEAL में एक स्रोत व्यक्ति, मास्टर ट्रेनर और आपदा प्रबन्धन समन्वयक हैं। उनसे *shalinijha443@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

सर्व शिक्षा अभियान के प्रशिक्षण कार्यक्रम के अनुभव

शहनाज़ ज़ाकिर

सर्व शिक्षा अभियान (SSA) द्वारा सरकारी विद्यालय में पढ़ाने वाले शिक्षकों को हर वर्ष छह दिन का प्रशिक्षण दिया जाता है। जिससे शिक्षा में हो रहे बदलाव जैसे सीसीई, परीक्षा परिणाम में सुधार और कक्षा में प्रभावी शिक्षण जैसे मुद्दों को शिक्षकों तक पहुँचाया जा सके। अनुदान प्राप्त संस्थाओं के समायोजन से सरकारी सेवा में आने के बाद मुझे भी पहली बार सर्व शिक्षा अभियान के प्रशिक्षण में जाने का मौक़ा मिला। विद्या भवन में 14 वर्ष के कार्यकाल में कई बार प्रशिक्षण के अवसर मिले थे। वही छवि मन में लेकर मैं उत्साह से सर्व शिक्षा अभियान के प्रशिक्षण में पहुँची।

प्रशिक्षण छह दिन का था जिसमें तीन-तीन दिन दो विषय गणित व अँग्रेज़ी पर प्रतिभागियों को कार्य करना था। पहले दिन प्रशिक्षण स्थल पर पहुँचने में और रजिस्ट्रेशन कराने जैसे कामों में ही आधा समय निकल गया। इसके पश्चात जब बात गणित विषय पर प्रारम्भ हुई तो मास्टर ट्रेनर ने सबसे पहले समस्याएँ पूछी। जब सभी शिक्षकों ने समस्याएँ बतानी शुरू की तो वे भिन्न संख्या से लेकर इबारती सवाल और गिनती लिखने तक पहुँच गईं। परन्तु इन समस्याओं का हल तो किसी के पास नहीं था। ये समस्याएँ तो हर साल प्रशिक्षण में बताई जाती हैं और निराकरण कुछ नहीं होता। पढ़ाया और सिखाया कैसे जाए ये शिक्षकों को समझ में नहीं आता। सभी शिक्षक चाह रहे थे कि मास्टर ट्रेनर चर्चा को आगे बढ़ाएँ तो समस्याओं के कोई समाधान निकलें। परन्तु मास्टर ट्रेनर ऐसा नहीं कर पाए। उनके पास इन कक्षाओं का कोई अनुभव नहीं था और न ही कक्षा 1 से 5 की पाठ्यपुस्तकें ही उन्होंने देखी थीं। सो वे तो किसी प्रकार की चर्चा कर नहीं सके। उन्होंने फिर शिक्षकों से ही पूछा कि आप अपने अनुभव बताएँ कि जिनकी कक्षा में बच्चे ठीक-ठीक सवाल कर लेते हैं वे कैसे सिखाते हैं? अब गेंद फिर शिक्षकों के पाले में थी। शिक्षकों ने जो अनुभव बताए उनमें अधिकांश बातें बच्चों को किसी-न-किसी तरीक़े से रटाना था जिसे वे कुछ समय याद रख लेंगे लेकिन अगले वर्ष फिर सिखाना पड़ेगा। यानी पूरी बातचीत का कोई फ़ायदा नहीं मिल पा रहा था और मास्टर ट्रेनर पूरी प्रक्रिया में कोई सहयोग नहीं कर पा रहे थे।

अगले दो दिन में भी गणित विषय पर कोई ठोस कार्य नहीं हो सका क्योंकि समूह-कार्य में कोई एक-दो लोगों ने मिलकर चार्ट तैयार करके अपने विचार लिख दिए। अधिकतर साथी वार्तालाप में लगे रहे या अपने अन्य कार्य निपटाते रहे। समूह-कार्य में बने चार्ट रख दिए गए न कोई प्रस्तुतीकरण हुआ, न कोई सवाल-जवाब और न ही कोई चर्चा। क्योंकि मास्टर ट्रेनर तो लगता था ऐसी कोई तैयारी करके नहीं आए थे।

ऐसा ही समय पूरा हुआ सीसीई की डायरी भरने का। सीसीई की डायरी मास्टर ट्रेनर ने तो कभी देखी भी नहीं है ऐसा लगा। क्योंकि जो शिक्षक पिछले वर्ष से उस डायरी को भर रहे थे, उन्हीं से सारी बात पूछी गईं। जिनमें कई प्रश्नों के जवाब उनके पास भी नहीं थे। जैसे – डायरी में आप समूह की योजना कैसे लिखेंगे जो समूह आपने कक्षा में बनाए हैं, या अलग-अलग समूह के बच्चों का मूल्यांकन कैसे करेंगे, दो-तीन प्रश्न-पत्र बनाएँगे या एक ही तरह के प्रश्न-पत्र में सभी स्तर के सवाल होंगे आदि। इस डायरी से तो शिक्षक बेहद परेशान नज़र आए और प्रशिक्षण में भी कोई बात समझ में न आने से सभी बेहद नाराज़ थे। इस तरह गणित के शिक्षकों को अपनी कक्षा में बदलाव लाने और बच्चों को सिखाने के लिए कुछ नया हासिल नहीं हुआ।

अगले तीन दिन अँग्रेज़ी विषय के लिए थे। यह विषय मेरे लिए भी नया था। मेरे मन में भी बहुत सारे सवाल थे जिनके जवाब मुझे जानने थे। यहाँ जब मास्टर ट्रेनर ने परिचय सत्र के बाद बात प्रारम्भ की तो अँग्रेज़ी की समस्या और भी विकराल थी। अधिकांश शिक्षकों का मानना था कि बच्चों को पढ़ाएँ कैसे, उन्हें तो अँग्रेज़ी पढ़ना-लिखना आता ही नहीं? इसका जवाब भी मास्टर ट्रेनर ने शिक्षकों से ही माँगा। सभी का पूरा ज़ोर शब्दों की स्पेलिंग याद करवाने पर था। मैंने पूछा सर स्पेलिंग याद करने के बाद वे फटाफट अँग्रेज़ी पढ़ लेते हैं। वे चुप थे, कुछ शिक्षकों ने ना में सिर हिला दिए, कुछ शिक्षक कहने लगे यही तो समस्या है वे स्पेलिंग याद करते ही नहीं। मेरे मन में फिर सवाल उछल रहे थे। मैंने मास्टर ट्रेनर से पूछा कि पढ़ना-लिखना सिखाने से पहले भी तो कुछ

क्रियाएँ होती हैं जो भाषा सिखाने में मदद करती हैं। इस पर एक शिक्षक ने कहा जी सर भाषा सीखने में बोलना और सुनना एक ज़रूरी क्रिया है जो हमें बच्चों के साथ करनी चाहिए। इस पर सहमति जताते हुए शिक्षकों से मास्टर ट्रेनर ने चर्चा की कि उन्हें भी कक्षा में बच्चों के साथ अँग्रेज़ी में सरल वाक्य बोलने का प्रयास करना चाहिए जिससे पढ़ना सीखने में भी मदद मिल सकेगी।

अँग्रेज़ी विषय के समूह-कार्य में भी शिक्षकों ने कोई रुचि नहीं दिखाई। शिक्षकों ने पुस्तक से नकल कर कुछ चार्ट बना दिए जिस पर गम्भीरता से न कोई प्रस्तुति हुई और न ही चर्चा। ऐसा ही हाल सीसीई डायरी का भी हुआ। क्योंकि अँग्रेज़ी विषय में तो शिक्षक अलग-अलग समूहों की योजना समझ ही नहीं सके। इसलिए उन्होंने एक शिक्षक की भरी हुई डायरी की फोटो कॉपी ही करवा ली।

इस तरह शिक्षक पूरे प्रशिक्षण के दौरान वे तरीके ढूँढ़ते रहे जिसे अपनाकर वे स्कूल जाकर वापस अपने काम को आसानी से कर सकें।

अन्त में सुझाव माँगे जाने पर भी उनका कहना था कि कोई फ़ायदा नहीं ऐसे सुझाव देने से, इन पर कोई ध्यान देता नहीं, प्रशिक्षण में कोई सुधार तो होता नहीं। उनका कहना था कि हम तीन-चार साल से प्रशिक्षण में आ रहे हैं और छह दिन ख़राब होते हैं कोई लाभ नहीं होता जिसे अपनाकर हम अपने शिक्षण में सुधार कर सकें। इस प्रकार आरोप-प्रत्यारोप के साथ प्रशिक्षण समाप्त हुआ।

मैंने विद्यालय में (II ग्रेड) विज्ञान की अध्यापिका से पूछा आपका प्रशिक्षण कैसा रहा। उन्होंने कहा वैसे तो ठीक था। लेकिन हमें ये बात अच्छी सीखने को मिली कि कक्षा में पढ़ाते समय बच्चों की भागीदारी कैसे बढ़ाई जाए। मैंने पूछा आपका प्रशिक्षण कहाँ था, तो पता चला विद्या भवन में था। कुछ मास्टर ट्रेनर सरकारी विद्यालय से और कुछ विद्या भवन से यानी सरकारी और प्राइवेट साथ-साथ। उन्होंने कहा विद्या भवन के मास्टर ट्रेनर ने तो पाठ्यपुस्तक के पाठ तक हमें पढ़ाकर सिखाया।

अब मैं कुछ महत्त्वपूर्ण बातें ग़ैर-सरकारी शिक्षण संस्था में करवाई जाने वाली ट्रेनिंग के बारे में बताना चाहती हूँ। वहाँ प्रशिक्षण देने से पहले प्रशिक्षण देने वाले पूरी योजना बनाते थे कि कितने सत्र होंगे और उनमें किन-किन बिन्दुओं पर चर्चा की जाएगी। पूरे प्रशिक्षण के दौरान सभी सत्रों में खुली चर्चा होती थी जिसमें शिक्षक अपनी समस्याओं, अनुभवों व मतों को भी रखते। इसी तरह पूरी गम्भीरता से समूह-कार्य भी करवाया जाता था। समूह-कार्य का प्रस्तुतीकरण किया जाता जिसमें सभी समूह अपने-अपने विचार रखते। साथ ही अच्छे लेखकों के शिक्षा सम्बन्धी लेख भी पढ़ने को दिए जाते थे। जो शिक्षण के कई आयाम को समझने में मदद करते। ग्रीष्मावकाश में प्रशिक्षण में आना तो वहाँ भी शिक्षकों को बुरा लगता परन्तु प्रशिक्षण के बाद ऐसा नहीं लगा था कि कुछ नहीं हुआ, और समय बर्बाद हुआ। यानी प्रशिक्षण की सार्थकता तो थी।

मुझे सर्व शिक्षा अभियान के ग़ैर-सरकारी और सरकारी प्रशिक्षण में जो अन्तर समझ आया कि उसमें प्रशिक्षण देने वाले ज़्यादा गम्भीर थे, शिक्षकों की बात सुनते थे व ज़्यादा तैयारी करते थे। तो क्यों न सरकारी मास्टर ट्रेनर भी ज़्यादा गम्भीरता एवं तैयारी के साथ प्रशिक्षण दें।

shenazakir@gmail.com

शिक्षा में अभिनव कार्यक्रमों से प्राप्त सबक़ : लोक जुम्बिश - सभी की शिक्षा के लिए जन आन्दोलन[1]

शोभिता राजगोपाल



परिचय

राजस्थान राज्य में शिक्षा के क्षेत्र में कई नवाचार हुए हैं, जिनका उद्देश्य शिक्षा प्रणाली के भीतर समावेशन न करने की प्रथाओं और अन्तरालों को सम्बोधित करना है। इन नवाचारों से यह प्रमाणित होता है कि वंचित बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने के साथ-साथ शैक्षिक योजना और उसे प्रदान करने के तरीक़ों में सुधार लाने के लिए सार्थक रणनीति विकसित की जा सकती है।

लोक जुम्बिश या पीपल्स मूवमेंट फॉर एजुकेशन फॉर ऑल को जून 1992 में भारत सरकार और राजस्थान सरकार द्वारा स्वीडिश इंटरनेशनल डेवलपमेंट एजेंसी (SIDA) के सहयोग से शुरू किया गया था। इसकी शुरुआत राजस्थान में प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के मूल उद्देश्य से हुई थी। 1990 की परियोजना के दस्तावेज़ के अनुसार इसका मुख्य उद्देश्य यह था कि 'मुख्यधारा की शिक्षा प्रणाली को यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से विकसित, निरूपित, उत्प्रेरित और बदला जाए ताकि हर बच्चे को बुनियादी शिक्षा (कक्षा I से VIII तक) मिल सके।'

लोक एक हिन्दी शब्द है जिसका अर्थ है 'लोग' और जुम्बिश एक उर्दू शब्द है जिसका अर्थ है 'हरकत'। दोनों शब्द मिलकर 'लोगों की हरकत' और 'लोगों के लिए हरकत' के विचार को व्यक्त करते हैं। लोक जुम्बिश ने यह प्रयास किया है कि शिक्षा के हर स्तर पर लोगों की सक्रिय और निरन्तर भागीदारी सुनिश्चित की जाए (चौधरी, 2003)।

लोक जुम्बिश समुदाय और शिक्षा सेवा प्रदाताओं को जुटाने, प्रेरित करने और सक्रिय करने के ध्येय के साथ शुरू हुई। यह परियोजना इस विश्वास पर आधारित थी कि जो राज्य प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वभौमिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए संघर्षरत था, वहाँ वर्तमान शिक्षा प्रणाली का कायाकल्प करने के लिए शिक्षा का सार्वभौमीकरण एक महत्त्वपूर्ण कारक है। इसलिए इसमें बच्चों की शिक्षा तक पहुँच, प्रतिधारण और उपलब्धि से सम्बन्धित मुद्दों की फिर से जाँच करने पर बल दिया गया है। परियोजना का पहला चरण 1992-1994 तक दो साल की अवधि के लिए था। इस चरण में लोक जुम्बिश ने 25 ब्लॉकों में काम किया। परियोजना के दूसरे चरण (1995-1998)[2] में, पहले चरण के दौरान प्राप्त उपलब्धियों को मज़बूत करने और समेकित करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था। 1999 के बाद लोक जुम्बिश को अनिश्चितता के दौर का सामना करना पड़ा और कार्यक्रम में धीरे-धीरे गिरावट आई तथा 2003 में कार्यक्रम समाप्त हो गया।

इस लेख में राजस्थान के विभिन्न ज़िलों में बच्चों को शिक्षा दिलाने के प्रयास में लोक जुम्बिश द्वारा अपनाए गए तरीक़ों और प्रमुख रणनीतियों की चर्चा की गई है। इसमें इस बात पर भी चर्चा की गई है कि इस हस्तक्षेप से कौन-कौन-सी प्रमुख बातें सीखने को मिलीं।

दृष्टिकोण

लोक जुम्बिश द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण एक गहन मिशन वाले तरीक़े के माध्यम से विकेन्द्रीकरण, सर्वसम्मति निर्माण व साझेदारी, भागीदारी योजना व मूल्यांकन और गुणवत्ता के प्रति प्रतिबद्धता के सिद्धान्तों पर आधारित था।

चूँकि लोक जुम्बिश एक प्रक्रिया संचालित परियोजना थी, इसलिए इस बात को लेकर एक स्पष्ट समझ थी कि इसके परिणाम सीधे क्षेत्र में की गई शुरुआत और वितरित की गई प्रक्रियाओं पर निर्भर होंगे। इसलिए प्रबन्धन की संरचना इस मान्यता पर आधारित थी कि वास्तविक समस्या केवल आपूर्ति की नहीं थी, बल्कि अप्रयुक्त क्षमताओं की भी थी और यह बात विद्यालय द्वारा की गई भागीदारी की निम्न दरों से स्पष्ट हुई।

परियोजना को लोक जुम्बिश परिषद के माध्यम से लागू किया गया था, जो एक स्वतंत्र स्वायत्त निकाय था और जिसे राज्य स्तर पर स्थापित किया गया था। लोक जुम्बिश कर्मियों और टीम को ध्यान से चुना गया था और उनमें शिक्षा विभाग के भीतर के व्यक्तियों को भी लिया गया था, जिनमें से कइयों को राजस्थान में महिला विकास परियोजना और शिक्षाकर्मी

[1]लेख के ड्राफ्ट पर टिप्पणियाँ देने के लिए शोभा लोकनाथन कवूरी की आभारी हूँ।

[2]1998 में भारत के परमाणु परीक्षण के मद्देनज़र SIDA ने परियोजना को दिया जाने वाला अपना समर्थन वापस ले लिया।

परियोजना जैसे अन्य अभिनव कार्यक्रमों में काम करने का अनुभव था। इसमें ऐसे व्यक्तियों को भी लिया गया जिन्हें विकास के क्षेत्र में काम करने का अच्छा अनुभव था।

एक प्रक्रिया-उन्मुख कार्यक्रम होने के नाते परिचालन की रणनीतियों में समुदाय की अधिकतम क्षमता पर ध्यान केन्द्रित किया गया। जिन क्षेत्रों पर ध्यान दिया गया, उनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

- शिक्षा का प्रबन्धन
- सामाजिक सहभाग
- शिक्षा की गुणवत्ता
- जेंडर समानता सुनिश्चित करना

शिक्षा का प्रबन्धन

लोक जुम्बिश के प्रबन्धन का सिद्धान्त काफ़ी गम्भीर था, जो एक विकेन्द्रीकृत प्रणाली की ओर बदलाव का प्रतीक था। शिक्षा के प्रबन्धन के लिए निचले स्तर के प्रबन्धन वाली कई संरचनाएँ स्थापित की गई थीं। लोक जुम्बिश में विकेन्द्रीकृत योजना की इकाई गाँव और विकेन्द्रीकृत प्रबन्धन की इकाई विकास खण्ड था। एक संकुल/क्लस्टर बनाने के लिए 25-30 गाँवों को एक साथ जोड़ा गया। प्रत्येक विकास खण्ड को पाँच से सात सुसम्बद्ध संकुलों में विभाजित किया गया था। संकुल स्तर के कर्मचारियों की यह ज़िम्मेदारी थी कि वे ग्रामीण स्तर पर लोक जुम्बिश के लक्ष्यों को पूरा करें।

प्रारम्भ में पाँच विकास खण्डों की पहचान की गई थी, जिसमें एक ऐसी ऊर्ध्वगामी नियोजन प्रणाली बनाने का प्रयास किया गया जो समुदाय की विविध शैक्षिक आवश्यकताओं को सम्बोधित कर सके। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रेरक दल (कोर टीम जिसमें एक तिहाई से आधी संख्या महिला सदस्यों की थी) बनाया गया, भवन निर्माण समिति का गठन हुआ और फिर जुटाव और शैक्षिक सहायता के लिए ग्राम शिक्षा समितियों (VECs) और संकुल स्तर के समूहों की शुरुआत हुई। विकास खण्ड स्तर पर विकास खण्ड स्तरीय शिक्षा प्रबन्धन समिति ने सहायता प्रदान की और परियोजना की निगरानी की। राज्य स्तर पर अधिकार प्राप्त कार्यकारी समिति ने तिमाही आधार पर प्रगति की समीक्षा की (रामचन्द्रन, 2016)।

गोविन्दा (1997) का कहना है कि 'लोक जुम्बिश की प्रबन्धन प्रणाली केन्द्रीकृत, पदानुक्रमित ढंग से कार्य करने के तरीक़े की विरोधी थी।' शैक्षिक योजना न केवल विकेन्द्रीकृत थी, बल्कि यह एक ऊर्ध्वगामी प्रक्रिया भी थी। ज़मीनी स्तर पर हुए अनुभवों ने लोक जुम्बिश के कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और/या संशोधन में मदद की।

सामुदायिक जुटाव

लोक जुम्बिश का एक प्रमुख पहलू शिक्षा के लिए समुदाय को जुटाना और एक ऐसा वातावरण तैयार करना था जहाँ माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजने के लिए खुद भी प्रेरित हों। परियोजना के दस्तावेज़ में काम करने वाले बच्चों, औपचारिक स्कूलों में न जा सकने वाली बालिकाओं, प्रवासी/ख़ानाबदोश परिवारों के बच्चों, आदिवासी बच्चों और विकलांग बच्चों के लिए विशेष व्यवस्था करने की आवश्यकता को स्वीकार किया गया। जो बच्चे मुख्य धारा में शामिल नहीं हो पाए थे, उनको सक्षम बनाने पर भी ज़ोर दिया गया।

समुदायों को जुटाने का प्रयास करने के लिए कुछ प्रमुख रणनीतियाँ विकसित की गईं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

शाला मानचित्रण और माइक्रो-प्लानिंग

लोक जुम्बिश ने प्राथमिक विद्यालयों के लिए केन्द्रीकृत योजना की ऐसी कुछ कमियों पर काबू पाने के एक प्रभावी साधन के रूप में शाला मानचित्रण को चुना जिनकी वज़ह से राजस्थान में सार्वभौमिक पहुँच और भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो पाई थी (गोविन्दा, 1998)।

शाला मानचित्रण एक महत्त्वपूर्ण साधन था। इसका उपयोग सामाजिक जुटाव के लिए और समुदाय को अपने गाँवों में शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण करने और प्राथमिक स्कूली शिक्षा के लिए बच्चों की पहुँच की योजना बनाने में शामिल करने के लिए किया जाता था। इस प्रक्रिया से क्षेत्र में बच्चों के लिए उपलब्ध शैक्षिक सुविधाओं का व्यापक मूल्यांकन किया जा सका। इस अभ्यास के दौरान गाँव के प्रत्येक घर को एक मानचित्र पर दृष्टिगत रूप से चित्रित किया गया था। स्कूल जाने वाली उम्र के बच्चों और उनके नामांकन की स्थिति का विवरण एकत्र किया गया और उसका मानचित्रण किया गया। स्कूलों की अवस्थिति और मौजूदा सुविधाओं को भी मानचित्र पर दर्शाया गया था।

शाला मानचित्रण की गतिविधियों जैसे सर्वेक्षण, स्कूल का नक़्शा और स्कूल सुधार कार्यक्रमों की तैयारी में शामिल होने से समुदाय के सदस्यों की भागीदारी को सुदृढ़ करने में मदद मिली। सामूहिक विश्लेषण से समुदाय को गाँव में मौजूदा शैक्षिक स्थिति को समझने में मदद मिली। शाला मानचित्रण में बालिकाओं की स्थिति को समझने के लिए प्रमुख रूप से ध्यान केन्द्रित किया गया था। प्रारम्भ में तो बालिकाओं की बेहद कम संख्या की सूचना मिली थी; तब यह निर्णय लिया गया कि 'अनदेखी' और 'छिपाई गई' बालिकाओं की तलाश के लिए एक सचेत प्रयास किया जाए।

लोक जुम्बिश कार्यक्रम यह सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्ध

था कि बस्ती के सभी बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध हो, इसलिए स्कूल और ग़ैर-औपचारिक केन्द्रों में बच्चों की नियमित भागीदारी की योजना बनाने और उसे सुनिश्चित करने के लिए माइक्रो-प्लानिंग (सूक्ष्म नियोजन) की गई। आमतौर पर गाँव में आवश्यक शैक्षिक अवसंरचना उपलब्ध कराने के बाद माइक्रो-प्लानिंग शुरू की जाती थी। लोक जुम्बिश में माइक्रो-प्लानिंग परिवार-वार थी, जबकि मूल रूप से ग्राम शिक्षा समितियों (VEC) के सदस्यों और ग्राम समुदाय की मदद से लोक जुम्बिश के संकुल कर्मियों द्वारा बच्चा-वार योजना और निगरानी की गई। ग्राम शिक्षा समितियों ने गैर-नामांकित बच्चों की पहचान की, सम्बन्धित परिवारों से सम्पर्क किया और स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति और स्कूल में रुकने की नियमितता सुनिश्चित करने के लिए गतिविधियाँ शुरू कीं।

माइक्रो-प्लानिंग के दो साधन, जो धीरे-धीरे प्राथमिक शिक्षा के प्रभावी सार्वभौमीकरण के साधन बन गए, इस प्रकार हैं :

(i) ग्राम शिक्षा रजिस्टर (ii) प्रत्येक स्कूल और ग़ैर-औपचारिक शिक्षण केन्द्र द्वारा बनाया गया प्रतिधारण/रिटेंशन रजिस्टर।

माइक्रो-प्लानिंग पर ज़ोर देने के कारण विभिन्न विकास खण्डों में विभिन्न पहलें हुईं जैसे प्रवासी परिवारों के बच्चों के लिए कम लागत वाले छात्रावास की योजना बनाना, बीकानेर के लूणकरणसर में बालिकाओं के लिए बालशिविरों व आवासीय शिविरों की स्थापना और भरतपुर के कामां में मुस्लिम अल्पसंख्यक बच्चों को सुविधाएँ प्रदान करना (राजगोपाल, 2003)।

शिक्षा की गुणवत्ता

शिक्षा की गुणवत्ता पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए शिक्षकों और शिक्षक-शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया गया ताकि उस समय शुरू किए गए न्यूनतम अधिगम स्तर (एमएलएल) के आधार पर एक पाठ्यक्रम और शैक्षणिक पैकेज के सुधारों को आरम्भ करने और उन्हें बढ़ावा देने में मदद मिल सके।

न्यूनतम अधिगम स्तर

लोक जुम्बिश ने प्रत्येक चरण के लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 द्वारा निर्धारित अधिगम के न्यूनतम स्तर को हासिल करने की आवश्यकता पर जोर दिया। तेरह पाठ्यपुस्तकों सहित कार्यपुस्तिकाओं को विकसित किया गया और उन्हें कक्षा 1 से 5 में उपयोग में लाया गया। पूरक शिक्षण-अधिगम सामग्री भी विकसित की गई और शिक्षकों को प्रशिक्षित किया गया। एमएलएल आधारित पाठ्यपुस्तकों और शिक्षण विधियों को पहले 1992 में केवल 45 स्कूलों में शुरू किया गया।

शिक्षक प्रशिक्षण

लोक जुम्बिश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के मुद्दों को सम्बोधित करने के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण एक महत्त्वपूर्ण रणनीति थी। शिक्षक की सकारात्मक सामाजिक छवि बनाने और निरन्तर प्रशिक्षण देने पर ज़ोर दिया गया। प्रशिक्षण से पहले शिक्षकों के साथ एक संवाद शुरू किया गया। प्रशिक्षण में शिक्षकों को प्रेरित करने और संवेदनशील बनाने के साथ-साथ उनके शैक्षणिक कौशल को तेज़ करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। एमएलएल पर क्षमता आधारित प्रशिक्षण भी आयोजित किए गए थे। इन प्रशिक्षणों में सन्धान प्रशिक्षण और अनुसन्धान संस्था[3] की भूमिका प्रमुख थी।

सहज शिक्षा केन्द्र (ग़ैर-औपचारिक शिक्षण केन्द्र)

मुख्यधारा की शिक्षा से वंचित रह गए बच्चों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए सहज शिक्षा केन्द्रों (एसएसके) की स्थापना की गई। एसएसके पहल इस बात पर आधारित थी कि शिक्षा और काम के बीच परस्पर विरोधी प्राथमिकताएँ तभी हल हो सकती हैं जब कुछ यथार्थवादी विकल्प उपलब्ध हों। एसएसके को शुरू में सरकार द्वारा संचालित एनएफई केन्द्रों की तर्ज पर डिज़ाइन किया गया था। बाद में इन केन्द्रों का ध्यान ऐसी शिक्षा प्रदान करने पर था जो प्रासंगिक और आसानी से अनुकूलनशील हो तथा समग्र और रचनात्मक अधिगम को बढ़ावा दे।

शिक्षा बच्चों के दैनिक जीवन से सम्बन्धित थी। एसएसके में प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण में अधिक निवेश और बुनियादी सुविधाओं को सुनिश्चित करने के प्रयास किए गए। प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण में बहु-कक्षीय शिक्षण के सन्दर्भ में विषय सम्बन्धी ज्ञान और शैक्षणिक कौशल बढ़ाने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। बाल केन्द्रित दृष्टिकोण, समय में लचीलापन, बच्चों की ज़रूरतों के हिसाब से पाठ्यक्रम का अनुकूलन और उनके अनुभव को नए ज्ञान के साथ जोड़ने में समुदाय की व्यापक भागीदारी ने बड़ी संख्या में बच्चों, ख़ासकर बालिकाओं को सन्दर्भ के अनुरूप संगत शिक्षा प्रदान करने में मदद की (राजगोपाल, 2003)।

साम्यता सुनिश्चित करना

शैक्षिक पहुँच और परिणामों में जेंडर समानता सुनिश्चित करना लोक जुम्बिश की प्राथमिकता थी। इस बात को लेकर एक स्पष्ट मान्यता थी कि जब तक जेंडर समानता, महिलाओं की गरिमा और स्थिति के मुद्दों को सम्बोधित नहीं किया जाता

[3] सन्धान शोध और प्रशिक्षण की एक एजेंसी थी जिसे मूलभूत रूप से लोक जुम्बिश में शिक्षक प्रशिक्षण के लिए शामिल किया गया था।

तब तक समान शिक्षा की ओर बढ़ना सम्भव नहीं है। प्रमुख रणनीतियों में निम्नलिखित बातें शामिल थीं :

महिला समूहों को बढ़ावा देना

ग्रामीण स्तर पर गठित महिला समूहों ने महिलाओं की इस बात में मदद की कि वे गम्भीर रूप से समाज में महिलाओं की अवस्था और स्थिति का विश्लेषण कर सकें और उसे शैक्षिक अवसरों और अभाव के मुद्दों से जोड़ सकें। ऐसे कई उदाहरण थे जहाँ महिला-समूहों की सदस्याओं ने स्कूलों के कामकाज और शिक्षक की उपस्थिति पर सख़्त नज़र रखी।

अध्यापिका मंच

एमएलएल प्रशिक्षणों में अध्यापिकाओं की कम भागीदारी ने अध्यापिका मंच का निर्माण किया, जहाँ अध्यापिकाओं ने अपनी आवश्यकताओं और समस्याओं पर चर्चा की। अध्यापिकाओं को ये मंच अलगाव से बाहर आने और सशक्त महसूस करने का एक प्रभावी माध्यम लगे। ये मंच अध्यापिकाओं की आत्म-छवि बनाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन बन गए और इसके परिणामस्वरूप गाँवों में महिलाओं के समूहों की आत्म-छवि भी विकसित हुई।

संवादिका

महिलाओं के विकास से सम्बन्धित मुद्दों पर चर्चा करने के लिए एक और मंच की स्थापना की गई जिसे संवादिका कहा गया। इस मंच की कार्यसूची में से एक कार्य यह था कि जेंडर की दृष्टि से सभी क्षेत्र स्तर की गतिविधियों की समीक्षा की जाए।

बालिका शिक्षण शिविर

बालिका शिक्षण शिविर स्कूल न जाने वाली बालिकाओं के लिए शुरू किए गए थे, जो स्कूली शिक्षा के अवसर से चूक गई थीं। इसने बालिकाओं को मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा में फिर से प्रवेश दिलाने के लिए एक पुल बनाने के कार्यक्रम के रूप में कार्य किया। राज्य के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को देखते हुए इन आवासीय शिविरों में बालिकाओं को भेजने के लिए माता-पिता को समझाना और उन्हें इन शिविरों में बनाए रखना एक साहसिक क़दम था।

लोक जुम्बिश से प्राप्त सबक़

लोक जुम्बिश परियोजना को राजस्थान में सार्वभौमिक शिक्षा के स्पष्ट इरादे के साथ लागू किया गया था। एकल बिन्दु प्रविष्टि के विपरीत इस परियोजना का उद्देश्य कई स्तरों पर मुद्दों को सम्बोधित करना था। एक विकास खण्ड के सभी औपचारिक और ग़ैर-औपचारिक शिक्षण केन्द्र इस हस्तक्षेप के दायरे में आए।

विकेन्द्रीकृत स्थानीय स्तर की योजना और निर्णय लेने में लचीलेपन ने बड़ी संख्या में बच्चों को शैक्षिक धारा तक पहुँचने में सक्षम बनाया। इसके अलावा जेंडर को प्रमुखता देने वाली बात ने विभिन्न स्तरों पर उपयुक्त संस्थागत प्रणाली को स्थापित करने का नेतृत्व किया।

परियोजना ने शैक्षिक प्रक्रियाओं के स्थानीय स्तर के प्रबन्धन को लागू करके समुदाय और शैक्षिक वितरण प्रणाली के बीच की खाई को पाटने की कोशिश की। शिक्षा की आपूर्ति और माँग दोनों पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करने से यह स्थापित करने में भी मदद मिली कि किसी भी शैक्षिक प्रयास को टुकड़ों में करने की बजाय निरन्तरता के साथ करना चाहिए।

इस परियोजना ने प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य की दिशा में काम किया और ऐसा करने के लिए सरकारी एजेंसियों, शिक्षकों, ग़ैर-सरकारी संगठनों, निर्वाचित प्रतिनिधियों और समुदायों को सहभागी बनाया तथा एक समूह के रूप में सबके साथ मिलकर कार्य किया।

निष्कर्ष

हालाँकि लोक जुम्बिश 2003 के बाद समाप्त हो गया लेकिन इसने बच्चों को शिक्षा देने के विचार की गति बढ़ाई और यह कार्यक्रम उन बच्चों तक पहुँचा जो मुख्यधारा की शिक्षा से बाहर रखे गए थे। यह एक ऐसी पहल थी जो धीरे-धीरे विकसित हुई और जिसने समुदाय-आधारित प्रक्रियाओं के माध्यम से शिक्षा मुहैया कराने से सम्बन्धित दीर्घकालिक मुद्दों को सम्बोधित किया।

References:

1 Chaudhary, S.(2000) *Universal Elementary Education in Rajasthan, A study with focus on Innovative Strategies*, MHRD, GoI and NIEPA, New Delhi

2. Govinda, R.(1998) 'Reaching the Unreached through Participatory Planning'-Study of School Mapping in LokJumbish, IIEP, Paris and NIEPA, New Delhi sourced http//: www.unesco.org/iiep

3. .....(1997) LokJumbish: An Innovation in Grassroots level Management of Primary education, UNICEF, New York Sourced unesdoc.unesco.org

4. Rajagopal, S .(2003) 'Operationalising the Right to Education: The LokJumbish Experience in Rajasthan: N.Kabeer, G.B Nambissan and R. Subramanian (eds) *Child Labour and Right to Education in South Asia, Needs versus Rights*, Sage, New Delhi

5. Ramachandran, V.(2016) 'Legacy of Three Innovative Programmes' in Singh, A.K (ed) *Education and Empowerment in India*: Policies and Practices, Routledge, South Asia Edition , New Delhi

---

शोभिता राजगोपाल इंस्टीट्यूट ऑफ़ डेवलपमेंट स्टडीज़, जयपुर में एसोसिएट प्रोफ़ेसर हैं। उन्हें जेंडर सम्बन्धी दृष्टिकोण को मुख्यधारा में लाने, महिलाओं के अधिकार व सशक्तिकरण और जेंडर व शिक्षा तथा प्रजनन स्वास्थ्य से सम्बन्धित मुद्दों पर शोध, नीति पक्ष समर्थन और प्रशिक्षण का व्यापक अनुभव है। इन मुद्दों पर उनके कई राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। वे राजस्थान और भारत के महिला-आन्दोलनों, ग़ैर-सरकारी संगठनों और नागरिक समाज के आन्दोलनों में सक्रिय रूप से शामिल रही हैं। उनसे *shobhita@idsj.org* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा : दिल्ली सरकार की पहलें

मोहम्मद सुहैल और वसीम अहमद खान



शिक्षा सफल जीवन की आधारशिला है : यह शिक्षार्थियों को ज्ञान और कौशल देकर सशक्त बनाती है ताकि उनका समग्र विकास हो सके। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा उसे कहते हैं जो ज्ञान, कौशल, अभिवृत्तियों और मूल्यों के बेहतर अधिग्रहण पर ज़ोर दे ताकि व्यक्ति को मानवीय, सामाजिक, राष्ट्रीय और सार्वभौमिक लक्ष्यों के साथ सही तरीक़े से पेश आने में मदद मिले।

स्कूलों में विकसित किए गए संज्ञानात्मक और ग़ैर-संज्ञानात्मक कौशल आर्थिक और सामाजिक विकास में योगदान देते हैं। इससे शिक्षार्थियों को सामाजिक रूप से अधिक स्वीकार्य व्यक्ति बनने में मदद मिलती है और साथ ही यह शान्तिपूर्ण, आनन्दपूर्ण और न्यायोचित समाज के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अगर देश के संसाधन के रूप में एक कुशल मानव का विकास करना है तो स्कूलों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना बहुत महत्त्वपूर्ण है। गुणवत्ता के मानकों की दृष्टि से देखें तो वर्तमान समय में देश के विभिन्न हिस्सों में बच्चे असमान शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं, जबकि उनकी सफलता पूरी तरह से गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के उस स्तर से जुड़ी है जिसे वे प्राप्त कर रहे हैं। यह एक तथ्य है कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त व्यक्ति कुशलतापूर्वक ऐसे नवाचार करने में सक्षम होता है जिनसे आर्थिक विकास उन्नत होता है।

दिल्ली के सरकारी के स्कूलों का वर्तमान परिदृश्य

दिल्ली भारत की राजधानी और एक मेट्रो शहर है जहाँ गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था का प्रावधान है। दिल्ली में शिक्षा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार के स्कूल हैं जैसे निजी स्कूल,सरकारी सहायता प्राप्त स्कूल, दिल्ली नगर निगम (एमसीडी) द्वारा संचालित स्कूल और शिक्षा निदेशालय द्वारा संचालित स्कूल। इनके अलावा कई ग़ैर-मान्यता प्राप्त स्कूल भी हैं जो व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूह द्वारा संचालित किए जाते हैं।

दिल्ली के स्कूलों में चालीस लाख से अधिक विद्यार्थी हैं और उनमें से अधिकांश एमसीडी और दिल्ली सरकार द्वारा संचालित स्कूलों में पढ़ते हैं। हाल के अध्ययन और सर्वेक्षणों में पाया गया है कि दुर्भाग्य से बच्चों के अधिगम का स्तर बहुत कम है : यह पाया गया कि दिल्ली में 14 से 18 वर्ष की आयु के युवा अपनी मातृभाषा को धाराप्रवाह रूप से नहीं पढ़ सकते हैं और 50 प्रतिशत से अधिक या आधे विद्यार्थी भाग के सरल सवाल हल नहीं कर सकते तथा अँग्रेज़ी नहीं पढ़ सकते हैं। उच्च प्राथमिक स्तर के विद्यार्थियों में भी अधिगम की यही स्थिति पाई गई है। दिल्ली सरकार द्वारा किए गए सर्वेक्षण में बताया गया है कि कक्षा छह में केवल 25 प्रतिशत विद्यार्थी ही हिन्दी की पाठ्यपुस्तकें और दूसरी कक्षा की अँग्रेज़ी की पाठ्यपुस्तकों को पढ़ सकते हैं।

अधिगम के स्तरों का यह परिदृश्य हमें दूरदराज़ के ऐसे अन्य स्थानों के बारे में सोचने के लिए मजबूर करता है, जहाँ शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करना मुश्किल होता है। विद्यार्थियों के अच्छे भविष्य के लिए उन्हें गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देना महत्त्वपूर्ण है। यूनेस्को (2014) ने सिफ़ारिश की थी कि शिक्षा की गुणवत्ता के सभी पहलुओं में सुधार होना चाहिए और सभी की उत्कृष्टता सुनिश्चित की जानी चाहिए ताकि सभी को मान्यता प्राप्त और औसत दर्जे के अधिगम परिणाम प्राप्त हों, विशेष रूप से साक्षरता, गणना और आवश्यक जीवन कौशल में।

नवाचारों की आवश्यकता

2009 में शिक्षा का अधिकार अधिनियम इस महान उद्देश्य के साथ लागू किया गया था कि 6 से 14 वर्ष की आयु के प्रत्येक बच्चे को शिक्षा मिले (1 से 8वीं तक की कक्षाओं को ध्यान में रखते हुए) और उसके लिए शिक्षा सुलभ हो। यह अधिकार केवल शिक्षा पाने का अधिकार नहीं है, बल्कि यह प्रत्येक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार देता है।

विद्यार्थियों में अधिगम के स्तर की वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस बात पर ज़ोर देना ज़रूरी हो जाता है कि अधिगम की कठिनाइयों को दूर करने के लिए कुछ नई और अभिनव शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाओं को अपनाया जाए। शिक्षा की गुणवत्ता में नवाचार बहुत ज़रूरी है ताकि एक ऐसी पीढ़ी का निर्माण हो सके जो प्रभावी ढंग से संवाद कर सके, आलोचनात्मक और तर्कसंगत रूप से सोच सके, सहयोग के साथ काम कर सके और अपनी योग्यता के आधार पर निर्णय ले सके। इसलिए अब वक़्त आ गया है कि पाठ्यचर्या की समीक्षा की जाए और

नवीन पद्धतियों पर ज़ोर दिया जाए ताकि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सके।

दिल्ली सरकार द्वारा की गई पहलें

लुक बियॉन्ड बेसिक्स, शिक्षा रिपोर्ट की वार्षिक स्थिति (एएसईआर, 2017) में बताया गया है कि 14-18 आयु वर्ग के 86 प्रतिशत युवा, चाहे वे स्कूल में हों या कॉलेज में, अभी भी औपचारिक शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत हैं और यह दावा किया गया है कि इस आयु वर्ग का लगभग 25 प्रतिशत अभी भी अपनी ही भाषा के मूल पाठों को धाराप्रवाह रूप नहीं पढ़ सकता। उनमें से केवल 43 प्रतिशत ही तीन अंकीय संख्या में एक अंकीय संख्या का सही तरीक़े से भाग देने में सक्षम हैं।

कमोबेश यही स्थिति दिल्ली में भी है, लेकिन दिल्ली सरकार ने कठिनाइयों को दूर करके गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के तरीक़े खोजने की कोशिश की है। सरकार ने शिक्षकों, विद्यार्थियों और शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया की गुणवत्ता बढ़ाने के लिए कुछ प्रमुख कार्यक्रम शुरू किए।

जून 2016 में 'चुनौती' नामक एक कार्यक्रम शुरू किया गया जिसका उद्देश्य कक्षा 6 से 8 के बीच अधिगम के अन्तराल को समाप्त करना और यह सुनिश्चित करना था कि कक्षा 9 में कोई ड्रॉपआउट न हो। कक्षा 6 से 8 के विद्यार्थियों को दो समूहों (प्रतिभा और निष्ठा) में और कक्षा 9 के विद्यार्थियों को तीन समूहों (प्रतिभा, निष्ठा और विश्वास) में, उनके सीखने के स्तर के अनुसार, विभाजित किया गया था। शिक्षकों से कहा गया कि वे पढ़ाने के लिए पाठ्यपुस्तक और व्याख्यान पद्धति का पालन करने की बजाय उपयुक्त तरीक़े अपनाएँ। शिक्षकों के लिए विशेष प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए गए और उनके लिए विशेष सामग्री को डिज़ाइन और विकसित किया गया ताकि अधिगम के बुनियादी कौशल यानी पढ़ना, लिखना और बुनियादी गणितीय क्षमता मज़बूत की जा सके।

दिल्ली सरकार की एक और पहल मेंटर शिक्षकों की नियुक्ति है। स्कूलों में शिक्षकों को ऑनसाइट शैक्षणिक और अकादमिक सहायता प्रदान करने के लिए शिक्षा निदेशालय के स्कूलों से लगभग 200 शिक्षकों का चयन किया गया है। एक मेंटर शिक्षक को हर हफ़्ते पाँच या छह स्कूलों का दौरा करना होता है और जहाँ आवश्यक हो वहाँ अध्यापन और शिक्षण का निरीक्षण करना होता है तथा शिक्षकों की सहायता करनी होती है।

इसके अलावा सरकार ने स्कूल में शिक्षकों की सहायता करने के लिए शिक्षक विकास समन्वयक की एक और योजना शुरू की। इन समन्वयकों का काम शिक्षकों का कौशल बढ़ाने में मदद करना, शिक्षकों और स्कूल प्रशासन को फीडबैक प्रदान करना, मेंटर शिक्षकों के सम्पर्क में रहकर उनके ख़ुद कौशल में सुधार करने में मदद करना आदि; और ऐसा करने के लिए वे गहन विचार-मन्थन करते और ऐसे समाधान खोजते जिनसे उनके स्कूलों के विद्यार्थियों और शिक्षकों की मदद हो सके।

दिल्ली सरकार द्वारा हाल ही में शुरू की गई एक और योजना 'मिशन बुनियाद' है, यह योजना 11 मई 2018 को शुरू हुई और 30 जून 2018 को समाप्त हुई। मूल रूप से यह योजना पहले शुरू की गई योजना का ही विस्तार है जिसे 'रीडिंग कैम्पेन' के रूप में जाना जाता है, जिसे कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों के पठन कौशल से सम्बन्धित मुद्दों को हल करने और सम्बोधित करने के लिए शुरू किया गया था। इस अभियान के लिए बुनियादी अवधारणाओं पर ध्यान केन्द्रित करने वाली शिक्षण-अधिगम सामग्री (टीएलएम) को विकसित और संचालित किया गया था। सरकार द्वारा यह दावा किया गया कि 'रीडिंग कैम्पेन' की पहल के अच्छे परिणाम आए और लगभग 75,000 विद्यार्थियों ने धाराप्रवाह रूप से पढ़ना सीखा और 90,000 विद्यार्थियों ने बुनियादी गणितीय संक्रियाओं को हल करना सीखा। हालाँकि यह भी बताया गया है कि लगभग 2.5 लाख विद्यार्थी अभी भी वांछित स्तर से नीचे हैं। इसलिए लेखन और बुनियादी संख्यात्मक क्षमता से जुड़े मुद्दों के समाधान के लिए मिशन बुनियाद का शुभारम्भ किया गया।

यहाँ दिल्ली सरकार द्वारा शुरू की गई अन्य पहलों जैसे 'प्रगति शृंखला' का उल्लेख किया जाना चाहिए। यह 'बिना बोझ के शिक्षा' के सिद्धान्त पर आधारित है। कक्षा 6 से 8 के लिए अँग्रेज़ी, हिन्दी, गणित, विज्ञान और सामाजिक विज्ञान विषयों के लिए बुनियादी शिक्षण सामग्री का एक सेट विकसित किया गया था। इस सामग्री को छापकर सरकारी स्कूलों के प्रत्येक विद्यार्थी को मुफ़्त में दिया गया जिससे उनके सीखने के अनुभवों का संवर्धन हो। सरकारी स्कूलों में कक्षा 6 के लिए ग्रीष्मकालीन शिविरों का आयोजन दिल्ली सरकार की एक और उल्लेखनीय पहल है। यह अभियान इस विचार पर आधारित है कि विद्यार्थियों को स्कूल के माहौल से परिचित कराया जाए और एनसीएफ़ 2005 द्वारा बताए गए अधिगम के गतिविधि-आधारित अनुभवों पर ज़ोर दिया जाए। ग्रीष्मकालीन शिविर में कला और शिल्प, पढ़ना और लिखना, खेल, नृत्य तथा संगीत जैसी विभिन्न गतिविधियाँ आयोजित की जाती हैं जिनमें भाग लेकर विद्यार्थी सीख पाएँ और विभिन्न कौशल हासिल कर पाएँ।

दिल्ली सरकार की एक और पहल कला उत्सव है। इसे अन्य राज्यों के सौन्दर्यशास्त्र, विरासत, रीति-रिवाजों, संस्कृति और

परम्पराओं के बारे में विद्यार्थियों को बताने और जागरूक करने के उद्देश्य से शुरू किया गया था। यह पहल शिक्षा में कला को और संगीत, रंगमंच, दृश्य कला और शिल्प के माध्यम से विभिन्न स्तरों पर विद्यार्थियों की कलात्मक प्रतिभा को बढ़ावा देती है।

दिल्ली सरकार का एक और महत्त्वपूर्ण क़दम मेगा पेरेंट टीचर मीटिंग्स (MPTMs) की स्थापना है। इसकी वजह से शिक्षकों और अभिभावकों को हर महीने मिलने का अवसर मिला और उनके बीच संचार सम्बन्धी अन्तराल को पाटने में मदद मिली। इसके अलावा विद्यार्थियों के अधिगम और विकास के बारे में उचित फीडबैक प्रदान करने का मौक़ा भी मिला। ऐसा होने से शिक्षक और माता-पिता के बीच सामंजस्यपूर्ण और सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध भी विकसित होता है।

योजनाओं का SWOC विश्लेषण

योजनाओं के गुण

- सरकार द्वारा शुरू की गई योजनाएँ यह दर्शाती हैं कि सरकारी स्कूलों के विद्यार्थियों के अधिगम के माहौल की बेहतरी के लिए सरकार स्पष्ट इरादा और इच्छा रखती है।
- दिल्ली सरकार ने अपने कुल बजट का 25 प्रतिशत विद्यार्थियों और शिक्षकों के शैक्षिक वातावरण के संवर्धन और बेहतरी के लिए ख़र्च किया है।
- पूरक और उपचारात्मक शिक्षण अधिगम सामग्री प्रदान की जाती है।
- नियमित रूप से शिक्षक-प्रशिक्षण आयोजित करके शिक्षकों को शैक्षिक जानकारी दी जाती है।
- शिक्षक विकास समन्वयकों द्वारा शैक्षणिक हस्तक्षेप करके फीडबैक दिया जाता है।
- विद्यार्थियों के अधिगम को बढ़ाने के लिए सामुदायिक भागीदारी।
- शिक्षक इस तरह के कार्यों का लगातार समर्थन करते हैं, हालाँकि इसके लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है।

योजनाओं की कमियाँ

- विद्यार्थियों की भागीदारी अपेक्षा के अनुसार नहीं है : केवल 25 प्रतिशत विद्यार्थी गर्मी की छुट्टियों में इन कक्षाओं में भाग लेते हैं, क्योंकि वे गर्मियों की छुट्टियों में अपने गाँव/शहर जाना पसन्द करते हैं और ऐसी कक्षाओं में नहीं जाना चाहते हैं।
- सरकारी स्कूल पहले से ही शिक्षकों की संख्या को लेकर कठिनाई का सामना कर रहे हैं। इसके अलावा लगभग 200 शिक्षकों को मेंटर शिक्षकों के रूप में प्रतिनियुक्त किया गया है और पहले से नियुक्त शिक्षकों में से 1029 शिक्षक, शिक्षक विकास समन्वयकों के रूप में काम कर रहे हैं, इस प्रकार शिक्षकों से सम्बन्धित कठिनाई और बढ़ जाती है।
- अधिकतर अतिथि शिक्षक मिशन बुनियाद में शामिल हैं।
- शिक्षकों को कोई अतिरिक्त प्रशंसा या प्रोत्साहन नहीं दिया जाता जिससे प्रेरित होकर वे स्थिति में सुधार लाने के लिए अतिरिक्त प्रयास करें।
- सरकार वास्तविक अधिगम पर ज़ोर देने की बजाय विद्यार्थियों की उपस्थिति, शिक्षक की डायरी, जलपान के वितरण जैसी चीज़ों के आँकड़े माँगती है।

अवसर

- सरकार, स्कूल प्रशासन के साथ-साथ विद्यार्थियों को भी सीखने के माहौल को बेहतर बनाने का अवसर मिलता है ताकि विद्यार्थी पढ़ने, लिखने तथा बुनियादी अंकगणितीय समस्याओं को हल करने पर विशेष ध्यान देते हुए बेहतर तरीक़े से सीख सकें।
- इसके अलावा ये पहलें सरकारी स्कूलों के अकादमिक वातावरण में सुधार के लिए अनुवर्ती कार्यक्रमों को लागू करने के अवसर प्रदान करती हैं।
- सेवाकालीन प्रशिक्षण में भाग लेने से शिक्षकों को वर्तमान समय की आवश्यकताओं के अनुसार अपने मौजूदा ज्ञान और कौशल में सुधार करने का मौक़ा मिलता है।
- इसी तरह विद्यार्थियों को अपनी अकादमिक कमजोरियों को दूर करने का भी मौक़ा मिलता है, विशेष रूप से पढ़ने, लिखने और बुनियादी अंकगणितीय समस्याओं के सम्बन्ध में।

चुनौतियाँ

- अधिक संख्या में विद्यार्थियों की उपस्थिति सुनिश्चित करना प्रशासन के साथ-साथ शिक्षकों के लिए भी सबसे चुनौतीपूर्ण काम है।
- अलग-अलग कार्यक्रमों को एक के बाद एक करना और दिए गए दिशानिर्देशों के अनुसार नियमित पाठ्यक्रम बनाए रखना मुश्किल है।
- शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों को गर्मी की चिलचिलाती धूप में आने के लिए प्रेरित करना भी एक कठिन काम है।
- ऐसी योजनाओं और पहल का वास्तविक मूल्यांकन करना एक बड़ी चुनौती है।

निष्कर्ष

विगत समय में यह देखा गया है कि सरकारों ने केवल बुनियादी ढाँचे को बेहतर बनाने के लिए अलग-अलग प्रमुखों को धन आवंटित करने में असावधानी बरती जिसके परिणामस्वरूप प्रति बच्चे के खर्च में वृद्धि हुई लेकिन स्कूलों के प्रदर्शन में कोई सुधार नहीं हुआ। इस बार दिल्ली सरकार ने शिक्षा प्रणाली को प्राथमिकता दी है और विद्यार्थियों के साथ-साथ शिक्षकों के लिए शैक्षिक अवस्था और शैक्षिक वातावरण को संवर्धित करने और बेहतर बनाने के लिए अपने बजट का बहुत बड़ा भाग ख़र्च किया है। सरकार ने समझदारी के साथ क़दम उठाया और बुनियादी ढाँचे में सुधार के अलावा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न योजनाएँ शुरू कीं। इसने विद्यार्थियों को बिना बोझ के शिक्षा दिलाने के अवसर प्रदान किए और 'आनन्दपूर्ण शिक्षण-अधिगम' दृष्टिकोण की सहायता से उनके अधिगम सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर किया। हालाँकि शिक्षकों और प्रशासन के लिए अलग-अलग कार्यक्रमों को एक के बाद एक करना और दिए गए दिशानिर्देशों के अनुसार नियमित पाठ्यक्रम बनाए रखना चुनौतीपूर्ण है।

इस सबके बावजूद शिक्षकों को इतनी ईमानदारी से काम करते देखना और ऐसे बदलावों का समर्थन करते हुए देखना बहुत उत्साहजनक है जिसके लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है।

References:

1 Circular No. DE.23 (612)/ Sch. Br./ 2018/265 dated 05.03.2018 issued by DOE, GNCT of Delhi.

2 Circular No. DE.23 (632)/ Sch. Br./ 2018/443 dated 05.04.2018 issued by DOE, GNCT of Delhi.

3 Circular No. DE.23 (632)/ Sch. Br./ 2018/444 dated 05.04.2018 issued by DOE, GNCT of Delhi.

4 Key Learning Indicators of Performance (2015), The Centre for Learning Excellence, Lancashire County Council, United Kingdom.

5 Look Beyond Basics (2017), Annual Status Education Report, ASER centre, Safdarjung, New Delhi

6 Quality Education for All: Initiatives and Innovations Transforming Delhi Education, Published by Government of NCT, Delhi.

7 Quality in School Education, Quality Council of India, New Delhi.

मोहम्मद सुहैल एक शिक्षक हैं। उन्होंने जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली से शिक्षा में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की है। उन्होंने आउटडोर शिक्षा, प्रयोगात्मक शिक्षा, शिक्षक शिक्षा और आईसीटी में विविध और बहुआयामी रुचि दिखाई है। उन्होंने कार्यरत शिक्षकों के सतत पेशेवर विकास के लिए आउटडोर शिक्षा पर आधारित एक प्रशिक्षण मॉडल तैयार किया है। उनसे *msuhall.edu@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है।

वसीम अहमद खान शिक्षक प्रशिक्षण और ग़ैर-औपचारिक शिक्षा विभाग (IASE), शिक्षा संकाय, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली में प्रोफ़ेसर हैं। उन्हें 30 से भी अधिक वर्षों का कार्यानुभव है और वे सामाजिक विज्ञान, शिक्षा, शिक्षक-शिक्षा, मार्गदर्शन व परामर्श, पर्यावरण शिक्षा, शैक्षिक प्रशासन व पर्यवेक्षण, अल्पसंख्यक शिक्षा, सामाजिक-आर्थिक मुद्दों और उच्च शिक्षा के विशेषज्ञ हैं। उनसे *wak.jmi@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल

Earlier Issues of the Learning Curve may be downloaded from **http://teachersofndia.org/en/periodicals/learning-curve** or **http://www.azimpremjifounda on.org/Foundation_Publications** or **http://azimpremjiuniversity.edu.in/SitePages/resources-learning-curve.aspx**

For suggestions or comments and to share your views or personal experiences, do write to us at **learningcurve@apu.edu.in**

Printed and Published by Manoj P on behalf of Azim Premji Foundation for Development; Printed at Suprabha Colorgrafix (P) Ltd., No. 10, 11, 11-A, J.C. Industrial Area, Yelachenahalli, Kanakapura Road, Bangalore 560062.

Published at Azim Premji University Pixel B Block, PES College of Engineering Campus, Electronics City, Bangalore 560100; Editor: Prema Raghunath

अगला अंक

शिक्षण अधिगम सामग्री

Azim Premji University
Pixel Park, PES Campus, Electronic City, Hosur Road
Bangalore - 560100

080-6614 5136
www.azimpremjiuniversity.edu.in

Facebook: /azimpremjiuniversity
Instagram: @azimpremjiuniv
Twitter: @azimpremjiuniv